दो दुनियां

भगवतशरण उपाध्याय

●

जुलाई '५२ : मूल्य ४)

लेखक : भगवतशरण उपाध्याय,
४ ए, थार्नहिल रोड,
इलाहाबाद ।

प्रकाशक : चम्पालाल रांका,
प्रबन्धक, आलोक प्रकाशन,
खजांची बिल्डिंग,
के. ई. एस. रोड,
बीकानेर ।

चित्रकार : कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव,
इलाहाबाद ।

मुद्रक : बालकृष्ण एम. ए.,
युगान्तर प्रेस,
मोरी गेट,
दिल्ली ।

आलोक प्रकाशन

मोरी गेट, दिल्ली • के. ई. एस. रोड, बीकानेर

अपने पाठकों को—

दो शब्द

ये रेखाचित्र मेरे पिछले अमेरिका और यूरोप-भ्रमण के हैं। १९ सितम्बर १९५० के दिन मैंने समुद्र की राह हिन्दुस्तान छोड़ा था और भ्रमण के क्रम में इस्रायल, कनाडा, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, इंग्लैंड, नार्वे, स्विडन, डेन्मार्क, हालैंड, बेल्जियम, फ्रांस, स्विट्ज़रलैंड, इटली, यूगोस्लाविया, ग्रीस, मिस्र आदि में प्रायः साल भर रहा। ज़ाहिर है कि ये रेखाचित्र केवल सांकेतिक स्केच हैं, मेरे भ्रमण के विस्तृत वृत्तान्त नहीं। विस्तृत वृत्तान्त ६ खण्डों में जल्द ही प्रकाशित होंगे। आशा करता हूँ, ये चित्र पाठकों का कुछ मनोरंजन करेंगे। यदि साथ ही उनसे उनको स्थितिबोध भी हुआ तो मैं अपने प्रयास को सफल मानूंगा।

पुस्तक की पाण्डुलिपि मेरे मित्र श्री जयदत्त पन्त ने प्रस्तुत की है। आभार मानता हूँ।

इलाहाबाद,
२-७-'५२

विषय-सूची

: १ :

अंकिल सैम हँसता है!

मैं हँसता हूँ क्योंकि दुनिया रो रही है। दुनिया रो रही है क्योंकि मुझे हँसना है। दूर से मुझे देखकर सान्ता क्लाउज़ का धोखा हो सकता है पर मैं सान्ता-क्लाउज़ नहीं हूँ, मैं अंकिल सैम हूँ।

मैं कारख़ाने में हूँ, पूँजीपतियों के ख़ाली दिमाग़ को भर रहा हूँ, प्रेसों में अपने तरीके से समाचार छाप रहा हूँ, दिलों को हिला देने वाली ख़बरें छाप रहा हूँ; भर्ती के दफ्तरों में सजग हूँ; गोले बारूद के कारख़ानों में रम रहा हूँ; अर्थ-शास्त्रियों की योजनाओं में हूँ; राजनीतिज्ञों के दाँव-पेंचों में हूँ। उधर मैदान में हूं जहाँ तोपें दग रही हैं, बम फट रहे हैं, छातियों में संगीनें घुसी जा रही हैं। मरने वाले दम तोड़ रहे हैं, घायल तड़प रहे हैं, उन सब में मैं हूं—मरने वालों में भी, घायलों में भी, मारने

वालों में भी, घायल करनेवालों में भी। मैं युद्ध हूँ क्योंकि मैं अंकिल सैम हूँ।

मैं अपने हमले दूर से करता हूं। मैंने इतने तरह के हरबे हथियार ईजाद किये हैं कि मुझे अपने शिकार के लिए पास जाने की ज़रूरत नहीं। मारने के लिए भी मुझे बिल्कुल पास जाने की ज़रूरत नहीं। मैं दूर से ही नगर के नगर बरबाद कर सकता हूं, गाँव के गाँव, जनपद के जनपद। मैं सार्वभौम समर हूं—टोटल-वार। और इस टोटल-वार में मैं लड़ाकू और नागरिकों में भेद नहीं कर सकता। भेद क्यों करूँ, कर भी कैसे सकता हूँ क्योंकि युद्ध तो केवल राजनीति का प्रसार है और राजनीति अर्थ की चेरी।

दूर से ही मैं सब को बरबाद करता हूँ अपनी इस ऊँचाई से, आसमानी महलों से जहाँ कोई पहुँच नहीं सकता, जहाँ मुझे कोई छू नहीं सकता। मनहैटन की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं में मेरे दफ्तर हैं और वहीं शान ओ शौकत में बैठा मैं अपनी संहारक योजनाएँ बनाता हूँ। कौन कहता है कि दुनिया बड़ी है, दूर तक फैली हुई? यहाँ तो सब इसी मुट्ठी में समेटे हुए हूं, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड, अफ्रीका और यूरोप, सातों समुन्दर।

सत्तर-सत्तर मील से हमारी तोपें नगरों और जनपदों पर गोलों की मार करती हैं, हज़ारों फ़ीट की ऊँचाई से हमारे आसमानी बमबाज़ नगरों को बरबाद कर देते हैं, हमारे टैंक चर्चों, मन्दिरों, मस्जिदों, सिनागागों को धूल में मिला देते हैं। अस्पताल, मातृ-भवन, अनाथालय और स्कूल सब एक साथ ज़मींदोज़ हो जाते हैं जब मैं अपना हाथ उनकी ओर उठा लेता हूं, जब मेरी उँगली इशारे में उनकी ओर उठ जाती है।

नगर, सभ्यता, मानव। मानव, वह रेंगता हुआ मानव जो बढ़ता है, मज़बूत होता है, चट्टानों से टकराता है। मानव जिसके नाखून नहीं, दाढ़

नहीं, सींग नहीं, वह जो अपना आहार फिर भी शिकार से लेता था। उसने एक दिन जंगल की आग से खाना पकाना सीखा और गोल पहिया ज़मीन पर दौड़ा कर उन खोजों की नींव डाली जिनकी परम्परा में न्यूटन है, पैस्चर है, लीस्टर है, एडीसन है, आइन्स्टाइन है, जिनकी परम्परा में जहाज़ हैं, मोटर-रेलगाड़ियां हैं, बमबाज़ हैं, एटम बम हैं; और जिनकी एक दूसरी परम्परा में बुद्ध है, ईसा है, फ्लोरेन्स नाइटिंगेल है, गाँधी है।

नगर, गाँव और जनपद—कितनी कठिनाई से, कितने तप और श्रम से ये बनते हैं, बने हैं। नगर के निर्माण की कहानी मानव के विकास की कहानी है। रोमश, नग्न, विक्रान्त मानव जंगलों में फिरता है, मारता है, मरता है। सदियाँ गुज़र जाती हैं, कबीले बाँधता है, कबीले बिखर जाते हैं, गाँव में बँट जाते हैं, राष्ट्र बनता है—राष्ट्र जो दूसरे राष्ट्रों की ओर घूरता है, उन पर लालच और हसरत भरी नज़र डालता है; फिर उनकी विजय को निकलता है। लांछित, प्रताड़ित मानव-धारा विजयी राष्ट्र की राजधानी में फूट पड़ती है। मानव संघर्ष करता है, घर भी, बाहर भी, विजयी जाति की नींव के नीचे भी, विजित जाति की इकाइयों में भी। शृङ्खलित मानवों की अटूट पंक्ति गुलाम बनती है, एक नई दुनिया उठ खड़ी होती है, चाबुकों से हाँके जाते गुलामों की, जिनका न कुछ मूल्य है, न जिनकी वेदना का कुछ असर है। मानव संघर्ष करता है गुलामी की ज़ंजीरें तोड़ देता है पर अपनी ऊँचाई फिर भी नहीं पहुँच पाता, खेतों का मजूर हो जाता है। खेतों की मजूरी गुलामी से कुछ कम नहीं चाहे वह हिन्दुस्तान की जागीरदारी की हो, चाहे जर्मनी और फ्रान्स के सामन्तों की हो। फिर मानव उठते हुए कारखानों में अपने पसीने का योग देता है, कच्चे माल की शक्ल बदल देता है, दुनिया बढ़ चलती है, रेलों, कारों, जहाज़ों पर डग भरते। नगर खड़े हो जाते हैं। नगर जो संघर्ष के उस श्रम और तप के प्रतीक हैं जो मनुष्य ने अपनी आदिम अवस्था से

लगातार चलते हुए सहस्त्राब्दियों बाद खड़ा किया है।

नगर बनता है, कितनी योजनाएँ सामने आती हैं, एक-एक को देख-परख कर उसका निर्माण शुरू होता है। अट्टालिकाएँ, गगनचुम्बी भवन खड़े होते हैं, ज़मीन के नीचे पाताल में रेल बिछाई जाती है, ऊपर ज़मीन पर सड़कें बनती हैं। कितना श्रम, कितना धन, कितनी बुद्धि का उसमें व्यय होता है, कितना समय उसमें लगता है। पर एक दिन जब मैं उठता हूं नींद की खुमारी भरी आँखें खोलता अंगड़ाता हूँ, सब तोड़ देता हूँ—सब बरबाद कर देता हूं, एक दिन में नहीं घण्टे भर में।

हिरोशिमा और नागासाकी से पूछो मेरा ताण्डव। हिरोशिमा जिसके चार लाख निवासियों में से एक भी साबुत न बचा, जो बचा वह अपाहिज, निकम्मा, पागल। और नागासाकी, उसके खण्डहरों से पूछो जिनकी नींव में आज भी आग है और जिसकी राख के नीचे घायलों की कराह है। मुझे बिस्मार्क चाहिए था, मैंने प्रशा की ज़मीन पर उसे उगल दिया, मुझे कैसर चाहिए था, मैंने बिस्मार्क का गला घोंट उसके रक्त से कैसर खड़ा किया और कैसर की नींव पर हिटलर। पहला महासमर, फिर दूसरा और उसके अन्त में हिरोशिमा और नागासाकी।

और अब यह कोरिया है, उत्तर और दक्खिन कोरिया। मुझे उत्तर दक्खिन से क्या काम? मैं तो यहाँ बैठा इस ऊँचाई से संकेत करता हूं और दूर पैसिफ़िक पार बम फटने लगते हैं, विशाल भवन सहसा मलबे बन जाते हैं, मानव चीत्कार कर उठता है। मैं युद्ध हूं—अंकिल सैम।

देखो मेरे बनाए खण्डहरों को उस कोरिया में जहाँ कभी अहिंसा की संस्कृति ने अपना आडम्बर खड़ा किया था, उसके बर्फ़ के मैदानों में आज आग जल रही है, तीखी हवा आँधी बनकर आग की ज्वाला आसमान में उठा ले जाती है और उसे थपकी दे दे उसे नगर के इस कोने से उस कोने तक फैला देती है। लोग सर्दी से अकड़े जा रहे हैं, अपने-पराये नहीं

सूझ रहे, फिर भी वे दुश्मन पर चोट करते हैं। कौन किसका दुश्मन है. वह जो घर में है या वह जो समुन्दर पार से आया है ? इंसान की इस बेवकूफ़ी पर मैं हँसता हूँ। संयुक्त-राष्ट्र-संघ का मेरा स्वाँग मूढ़ मनुष्य नहीं समझ पाता, यही मेरी ताक़त है, क्योंकि आलम मेरे साथ है, क्योंकि आलम संयुक्त-राष्ट्र-संघ के साथ है, क्योंकि संयुक्त-राष्ट्र-संघ सरकारों का है, क्योंकि सरकारें मेरी हैं, मेरे क़र्ज़ से ख़रीदी।

और इन्सान कोरिया में लड़ रहा है अपने दुश्मन से ! दुश्मनी कैसी? दुश्मन ने क्या दुश्मन को देखा है ? दुश्मन ने क्या दुश्मन को गाली दी है ? उसके क्रोध का कारण बना है ? यह भर्ती के अड्डे जो इन्सान को रोटी के लालच से अपनी ओर खींचते हैं उसे बन्दूक और बम देते हैं, यह बैरक जो उसे लड़ाई के बीच साँस लेने की पनाह हैं, यह मैदान जो क़वायदों से उसे दैत्य बनाते हैं और यह दूसरे मैदान जहाँ वह दुश्मन की छाती में अपनी संगीन भोंक देता है। क्या इनमें से किसी ने उसके दुश्मन को उसकी आज़ादी छीनते देखा है ? दुश्मन तो उसका उसके घर पर है जो मिलों से कपड़े निकाल कर भी उसे लँगोट भर का कपड़ा नहीं देता, खेतों में अन्नों की राशि उगा कर भी उसे एक दाना नहीं देता, महल खड़े करके भी उसे खड़े होने की सरन नहीं देता। इस दुश्मन को जिसे वह अनजाने, अकारण अपनी गोलियों का शिकार बना रहा है उसने कब देखा, कब जाना ? पर वे दुश्मन तो मेरे हैं क्योंकि इन्सान हैं, दोनों ही मारने वाले भी, मरने वाले भी, क्योंकि मैं युद्ध हूँ—मैं अंकिल सैम हूँ।

मेरी मिलें दिन-रात काम कर रही हैं। कपड़ा निकलता जा रहा है, लड़ाई के मैदानों के लिए, दुनिया के बाज़ारों के लिए, पर वह इन्सान के लिए नहीं है। जितनी माँग होगी कीमत के अन्दाज़ से, कीमत को बनाए रखने के लिए मुझे उतना ही कपड़ा बाज़ार में भेजना होगा और जो बच

रहेगा वह भट्ठियों में जायगा, आग की लपटों में। खेत लहलहा रहे हैं, अन्न पक रहे हैं, फसलें कट रही हैं, यह नाज की राशि है, यह भी जायगी 'फ्रन्ट' पर और उन बाज़ारों में जहाँ इसकी राह देखी जा रही है पर उसी औसत में कि कीमत पर कोई असर न हो, दाम का वज़न बढ़ता रहे और जो बच रहा वह उसी राह जाएगा जिस राह बचा कपड़ा जा चुका है, उसी भट्ठी की राह आग की लपटों में, क्योंकि मैं अंकिल सैम हूं; यह दुनियाँ मेरी है, मिलों की, .खूनी मैदानों की।

मिलें कपड़ा उगल रही हैं, खेत अन्न उगल रहे हैं, कारखाने गोले बारूद, वैज्ञानिकों की प्रयोगशालाएँ एटम और हाईड्रोजन बम—क्योंकि मुझे उनकी ज़रूरत है, क्योंकि मुझे यह सभ्यता जो तिल-तिल जोड़ी गई है, जो सदियों-सहस्राब्दियों में खड़ी की गई है, जो इन्सान के तप और कुर्बानी से बनी है मुझे बरबाद कर देनी है, क्योंकि मैं अंकिल सैम हूं।

तुम कहते हो मेरा अमेरिका उन बलिदानी, साहसी, तपस्वियों की बुनियाद है जिन्होंने छिछली नावों पर, बहती तीखी हवा में, बरसती बर्फ़ में अतलान्तिक पार कर इस ज़मीन पर खेत उगाए थे। ना, मैं उनकी औलाद नहीं, मैं औलाद उस जॉन बुल की हूं जिसका तेज अब खो चुका है और जिसकी बुनियाद पर मेरा नूर रोशन है। उसके दिमाग़ की सारी शैतानी योजनाएँ, उसके सारे छल-कपट, उसकी सारी बेरहमी आज मेरी है और उन्हें मैंने बेइन्तहा बढ़ा लिया है। आज वह जॉन बुल भी मेरे चक्के की धुरी में पिसा जा रहा है।

वह कौन है कोरिया के उस मैदान में पसीने से तरबतर? बरसती बर्फ़ के बीच, तीखी सर्द हवा के झोंकों के बीच पसीने से तरबतर? पसीने से तरबतर वह क्यों है? इसलिए कि वह निरन्तर बग़ैर पलक गिराये, कानों में रुई डाले दिन-रात अपनी तोप दागता रहा है। यह वह है जिसने न्यूयार्क की सेमिनरी में पिता के प्यारे पुत्र ईसा की पवित्र बाइबिल के पाठ

पढ़े थे, पदक जीते थे और अंत में अस्पताल में बीमारों की सेवा करता था। आज वह अपने दुश्मनों की उस कतार पर गोलाबारी कर रहा है जिसे उसने कभी नहीं जाना। और वह कौन है, उधर, जो लगातार मशीन-गन चलाए जा रहा है, जिसे दम मारने की फुरसत नहीं, जिसे यह देखना है कि दुश्मन की कतार का एक आदमी भी खड़ा न रह जाये ? और यह वही है जिसने आयु के कारण सरकती बुढ़िया को मनहैटन की भीड़ में सहारा दिया था। उधर वह देखो पाइलट के पीछे जहाज़ की मोड़ में जहां से यह तीसरा बम पर बम बरसाये जा रहा है। आख़िर उस कङ्गाल देश के कङ्गालों की झोंपड़ियाँ उसके वाशिङ्गटन की बुर्जियों से होड़ तो नहीं करतीं ! यह वह है जिसने अभी उस दिन अपने यहां से काले-गोरे का भेद मिटा देने का प्रण किया था, अभी उस दिन जिसने अपने पत्र के कालमों में वर्ण भेद के ऊपर अपनी लेखनी से आग बरसाई थी, वही जिसने हारलेम के नरक को मनहैटन के नागरिकों के जघन्य पाप का मूर्तिमान स्वरूप कहा था। यह क्या हो गया, कैसे हो गया कि लोगों के स्वभाव बदल गये ? आख़िर इस लड़ाई से इनका क्या लाभ है ! इनकी तनख़ाह से एक से अधिक इन्सान का भला नहीं हो सकता। यह ट्रूमन नहीं हो सकते, एचेसन नहीं हो सकते, डलस नहीं हो सकते, तब आख़िर क्यों ये अपनी इन्सानियत भूल गये ! जो बराबर इन्सानियत की कसमें खाते थे आज उसका ख़ून करने पर यकायक आमादा कैसे हो गए ? इसलिए कि मैंने उनका स्वभाव बदल दिया है, उनके मन फेर दिये हैं, उन पर जादू डाल दिया है। आज वह नीयमान अन्धे की नाईं अपने नाश की ओर आप ही बढ़ते जा रहे हैं। कल उनकी माँएँ डकरेंगी, उनकी प्रेयसियाँ तड़प उठेंगी, उनके बच्चे बिलबिलायेंगे जब उनकी मौत की ख़बर मैं अपने अख़बारों में छाप दूँगा। मैं अंकिल सैम हूँ।

मृत्यु नाच रही है, कोरिया के मैदानों में, कोरिया के मैदान जो

जापान के पास ही हैं, हिरोशिमा और नागासाकी से बहुत दूर नहीं। मृत्यु नाच रही है और मैं ताल दे रहा हूँ, और उसी ताल में हमारे गिर्जे, हमारे स्कूल, हमारी दानशालाएँ, हमारे अस्पताल मस्ती में झूम रहे हैं। मेरी मिलों से इतना कपड़ा निकल रहा है कि अगर मैं चाहूँ तो दुनियाँ को उससे सात परत में लपेट दूँ पर मैं उसका एक धागा किसी को नहीं दे सकता क्योंकि मैं दुनियाँ को नंगी देखना चाहता हूँ। मैं अंकिल सैम हूँ। मेरी कोठारों में अन्न भरा है, बीज भरे हैं। मेरे जहाज़ बेकार हैं, बन्दरगाहों में लंगर डाले, पर मैं उनका इस्तेमाल न करूंगा क्योंकि अन्न का एक दाना मुझे कहीं भेजना मंजूर नहीं। वह कहते हैं यहां अकाल पड़ा है, वहाँ भूख पेंतरे बदल रही है, पर मुझे उससे क्या ? उनको क्या तमीज़ कि इन्हीं साधनों से, इन्हीं मौकों से मेरी दुनियाँ बसती है, मेरे प्रासाद खड़े होते हैं, मेरे आसमान से सोना बरसता है। मुझे उजड़ती दुनियाँ से कोई मतलब नहीं, मेरी दुनियाँ उस दुनियाँ के बसते ही उजड़ जायेगी और मैं अपनी दुनियाँ का क़ायल हूँ उनकी दुनियाँ का नहीं। मेरी दुनियाँ इन्सानियत की लाश पर खड़ी है, इन्सानियत की लाशें मेरी इमारत की ईंटें हैं, उसका रक्त उसका गारा है और इसी दुनियाँ में इस पार्क-स्ट्रीट की ऊंचाइयों पर, फ्लोरिडा के गरम आवासों में, बैले और ओपरा के भवनों में मेरी आज़ादी उछलती है, मेरे अरमान हंसते हैं। मैं अंकिल सैम हूँ।

: २ :

वह पिछली रात

वह पिछली सन् पचास की रात, ३१ दिसम्बर की न्यूयार्क की रक्त भरी रात !

शाम को ही निकल गया था, सात ही बजे। साढ़े सात बजे खाना था इण्डियन चेम्बर आफ़ कामर्स के प्रधान श्री मगन दवे के घर। पाँचवीं सड़क की बस पकड़ी। सड़क खाली थी, ऐसी जैसी कभी न देखी थी। जब तब इक्के-दुक्के आदमी औरत दीख जाते, एकाध टैक्सी या कारें पास से निकल जातीं, बसें प्रायः खाली दौड़ रही थीं। क्या हो गए आदमी यहाँ के, वे नाज़भरी अधनंगी औरतें और वे सुन्दर सुकुमार बच्चे ? आज की रात रोज़ जैसी शायद न हो क्योंकि शाम कुछ अजब है। रास्ते सूने क्यों हैं ? ४९वीं स्ट्रीट में बस से उतर पड़ा।

भगवतशरण

आज सन् पचास की आखिरी रात है, सन् इक्यावन की सुबह की पिछली अंधेरी रात। रक्तिम सूर्यास्त के बाद मौसिम सुहावना हो गया था, ठंड बढ़ चली थी, पानी जमा देने वाली सर्दी की घोषणा पहले से ही कर दी गई थी। टाइम्स स्क्वेयर (४२वीं स्ट्रीट) और ५२वीं स्ट्रीट के बीच शाम से ही भीड़ भर चली थी और शहर की सारी सड़कें जैसे नदियों की तरह एक उसी टाइम्स स्क्वेयर में अपना जन-जल उगलती जा रही थीं। इसी से वे स्वयं रिक्त हो चली थीं और टाइम्स स्क्वेयर में तिल धरने को जगह न थी।

मुझ अजनबी के लिए वह दृश्य निश्चय नया था पर जो वहां अपना यह वार्षिक त्यौहार मनाने आए थे उनके लिए निश्चय वह भीड़ समारोह थी, पर भीड़ जो चीखती-चिल्लाती थी, हंसती-रोती थी, गाती-कूदती थी। भीड़ एक-एक सड़क, एक-एक स्ट्रीट में दस-दस हज़ार की; कुल कोई दस लाख की भीड़ वहां इकट्ठी थी नए वर्ष के स्वागत के लिए। उस भीड़ की रक्षा और सम्हाल के लिए डेढ़ हज़ार पलिस के जवान तत्पर थे। पर उन्हें विशेष कुछ करना नहीं पड़ा क्योंकि सर्द हवा लोगों को तेज़ चलते रहने को विवश कर रही थी।

पटाखे छूट रहे थे, लोग कुत्तों, घोड़ों, चिड़ियों की बोली बोल रहे थे, गालियाँ दे रहे थे, कुवाच्य गाने गा रहे थे, घूंसे-बाज़ी कर रहे थे। भीड़ में हाथ निकालने की गुंजायश न थी, पर हाथ ऊपर ही टांगे, ऊपर ही ऊपर मुंह उठाए हाथ की बोतल मुंह में लगाए शराब पिए जा रहे थे। अनेक शराब के कुल्ले कर देते थे, अनेक वमन के, और भीड़ बहती धारा की तरह कभी इधर कभी उधर हिल रही थी। उसमें बूढ़े-बूढ़ियां किनारों पर थे, हाशिए पर, और पीछे पर बीच में और आगे तरुण और तरुणियां थीं, जवान मर्द और जवान औरतें, अधिकतर एक में एक गूंथे-कसे-सिमटे। बाहों में बाँहें कसी थीं, कन्धों पर सिर टिके थे, गहरे देर तक चिपके चुम्बन

चल रहे थे। जोड़े जैसे विभोर थे। कभी-कभी जब भीड़ उन्हें ठेल कर उठा देती तब कहीं उन्हें गुमान होता कि वे सड़क पर हैं।

जैसे कबूतरी खेलती-खेलती अपना सिर कबूतर की गरदन में, उसके पार्श्व और कोख में घुसा देती है, तरुणियां तरुणों की गरदन में, उनके पार्श्व और कोख में अपना सिर घुमाए जा रही थीं। आधी रात समाप्त होते ही नया दिन शुरू हो जाएगा, नए साल का जिसके आसरे तरुणों-तरुणियों ने अनेक लालच भरी रातें काटी हैं, और आज वही साध की रात है जब कुछ भी हो सकता है और जब वह 'कुछ' भी न हो पाया तो कम्बख्ती।

बिगुल बज रहे हैं, सीटियां बज रही हैं, चिल्लपों मच रही है, कान बहरे हुए जाते हैं। इस भीड़ में बालक हैं, किशोर हैं, युवा हैं, अधेड़ हैं, बूढ़े हैं, उनकी अधिरानियां हैं। शान्ति और विनय का वहां कुछ काम नहीं। यदि आप चुप हैं, हंसते नहीं, चीख़ते नहीं तो आने वाले नए दिन का, नए वर्ष का आप अपमान करते हैं और नए दिन का अपमान करने वाले मनहूस पर यदि केवल चपत पड़ कर रह जाए तो बड़े भाग! क्योंकि ऐसे पिटते को कोई बचाने वाला भी नहीं, ऐसे पीटने वालों का कोई हाथ रोकने वाला नहीं। क़हक़हे लगते जाएंगे और 'मनहूस' अभागे की जान देखते ही देखते खेल ही खेल में निकल जाएगी और कल पुलिस एलान कर देगी—नए साल की पिछली रात में 'ऐक्सिडेन्ट!'

और इस प्रकार के 'ऐक्सिडेन्टों' की भीड़ में खुशी की चोट से, दबाव से मरने वालों की संख्या कुछ कम नहीं। अभी पांच दिन पहले क्रिस्मस (बड़ा दिन) की पिछली रात और अगले दिन कुचल कर मरने वाले अभागों की, 'ऐक्सिडेन्टों' की संख्या सरकार ने ६-७ सौ छापी थी, इस रात के 'ऐक्सिडेन्टों' की संख्या भी कल सुबह ६-७ सौ छप जाएगी। मनुष्य को मारने वाले साधन अनेक हैं, हज़ारों, उसे बचाने का एक

नहीं। और आज के न्यूयार्क में तो शान्ति की बात करना असंभव है, खतरनाक है, क्योंकि अमेरिका आज़ादी की रक्षा के लिये, जनसत्ता के बचाव के लिए कोरिया में लड़ रहा है, अत्यन्त मात्रा में बलिदान कर रहा है, नए रक्त को वहां बहा रहा है, अरबों डालर खर्च कर रहा है, डालर जो अमेरिका की दुनियां में उस ताजे खून से, उसके युवकों से भी क़ीमती है। यह लड़ाई डालर की ही तो लड़ाई है, डालर की, जिसकी रक्षा में आज की रात इस भीड़ के बीचोंबीच भी भर्ती का दफ्तर काम कर रहा है।

हां भर्ती का दफ्तर, इस दस लाख आदिमियों की भीड़ के बीच काम कर रहा है। टाइम्स स्क्वेयर के बीचोंबीच, चमकते हज़ारों प्रकाशों के नीचे अपने काले घेरे के भीतर जिसके भीतरी-बाहरी कालेपन को ये प्रकाश चमका रहे हैं। और इस रेक्रूटिंग केन्द्र के चारों ओर गहरा घेरा है। उस घेरे का वह काला धब्बा चमकते चेहरों पर बादलों की छाया सी फिरा देता है। अगला साल जिसका नया दिन कुछ घंटों बाद ही शुरू होने वाला है जिसकी यह पिछली रात है कितना भयानक होगा, कितना खूनी, कितना वीभत्स !

उधर जब निगाह जाती है अनेक चेहरों पर मुर्दनी छा जाती है, अनेक दिल बैठ जाते हैं, क्योंकि इस उत्सव की रात भी वह रेक्रूटिंग-बूथ मरघट की छाया की तरह उनके बीच डोल रहा है। इस भीड़ में कोरिया से लौटे हुए वे 'वेटरन' हैं जिन्होंने उस दूर देश में सर्दी और तोप दोनों की चोट खाई है, और जब सच्चे गरीब कोरियनों से वे मिले हैं तो हैरत में आ गए हैं। पूछा है—यह लड़ाई क्यों ? और किसके साथ यह लड़ाई ? इन गरीबों का लड़ाई तो किसी के साथ हो ही नहीं सकती, फिर देश से इतनी दूर समुन्दर पार यह कौन उन्हें भेज रहा है ? किस लिए ? किस दुश्मन के खिलाफ़ जिसे उन्होंने देखा नहीं, जिस पर गुस्सा करने का उसे

कोई कारण नहीं, कोई मौका नहीं आया।

और उस भीड़ में हैं वे भोले लाल जो किशोर और युवा का सन्धिकाल पार कर रहे हैं, वे नौनिहाल जिन्हें मौत घूर रही है, कान्स्क्रिप्शन (लाज़मी भर्ती) के जो जल्द ही शिकार हो जाने वाले हैं। इन में से अनेक बूढ़े मां-बाप की इकलौती औलाद हैं, अकेले सहारे, पर जिन पर मौत अपना साया डाल चुकी है, जिन के ऊपर गिद्ध मण्डरा रहे हैं, पर जिनको आज रात की इस हलचल में उल्लू की अशुभ आवाज़ नहीं सुन पड़ती। आज की यह आने वाले कल की पिछली रात पिछले साल की आख़िरी है और कुछ घंटों में वह अतीत के अनन्त विस्तार का अंग बन जाएगी। पर पता नहीं यह उस बीते साल की खुशी है या आने वाले साल की।

मुझे भीड़ वैसे भी माफ़िक नहीं पड़ती। इसी से कुछ दिनों के लिए न्यूयार्क से बाहर चला गया था। पर अमेरिका में हिन्दुस्तानी भावभंगी से तो काम चलने का नहीं इससे न्यूयार्क लौटना ही पड़ा और आज इस रात इस खौलती भीड़ के सामने खड़ा हूँ। ४६ वीं स्ट्रीट में हूँ, ब्राडवे (चौड़ी सड़क) के सामने जो अपनी चमक और सफ़ेदी से, अपने अनगिनत प्रकाशों से, आकाश-गंगा बन गया है, जहाँ अरबों-खरबों, वास्तव में गणनातीत, बिजली के प्रकाश उस चौड़ी सड़क को दिन की आभा दे रहे हैं। लाखों-करोड़ों बल्ब एक साथ बलते-बुझते हैं, विज्ञापनों के अनन्त-अनन्त अक्षर लिखते हैं परन्तु न तो उनके बुझने से उस बहते प्रकाश में कुछ कमी होती है न उनके बल उठने से कोई प्रगट अन्तर पड़ता है।

भीड़ वैसे ही चल-विचल है, कन्धों-गरदनों से लटकती-झूमती चूमती पीती-गाती। जब और न खड़ा रह सका तब पीछे लौटा क्योंकि आगे जाया न जा सकता था। उसी स्ट्रीट में लौट पड़ा और लौट कर दूसरी बस पर जा बैठा। श्री दवे के घर पहुँचा। अनेक अमेरिकन और भारतीय बैठे थे, आधी रात की इन्तज़ार में। मैं भी शिष्टाचार के बाद

उन्हीं में जा बैठा। पर मेरी निगाह 'टेलीविज़न' पर थी।। आखिर वह अचरज भी अमेरिका की सम्हाल में आ ही गया। जैसे आप रेडियो सुनते हैं, अब टेलीविज़न देखेंगे। अमेरिका देख रहा है। रेडियो पर जो बोलते हैं देखे नहीं जा सकते पर इसके ज़रिए देखे भी जा सकते हैं। जैसे रेडियो के स्टूडियो से गाने, व्याख्यान आदि प्रसारित किए जाते रहे हैं वैसे ही अब टेलीविज़न भी दृष्टिपथ में परोक्ष की घटनायें ला खड़ा करता है। जिन श्रीमानों के घर टेलीविज़न है वे बग़ैर सिनेमा गए वहां के फ़िल्म घर बैठे अपने ड्राइंगरूम से ही देख सकते हैं।

मैं भी प्रायः डेढ़ मील दूर के उस कमरे में बैठा टाइम्स स्क्वेयर की वह अपार भीड़ उस छोटे फुट भर के वृत्त वाले टेलीविज़न से देखने लगा भीड़ अब भी वैसे ही उछल-कूद रही थी, पहले से भी अधिक, क्योंकि अब धीरे-धीरे आधी रात निकट आती जा रही थी। टेलीविज़न में भीड़ का केवल एक छोटा भाग ही देखा जा सकता था परन्तु चूँकि मूवी के रूप में बराबर दृश्य घूमता जा रहा था, समग्र भीड़ आंखों के आगे सरकती जा रही थी। वही शोर—चौड़ी सड़क और टाइम्स स्क्वेयर वाला—टेलीविज़न के प्रक्षेपण से हमारे ड्राइंगरूम को भी भर रहा था। कान नहीं दिया जाता था। आपस की बातों को सुन सकना कठिन हो रहा था।

वैयक्तिक और सार्वजनिक गृहों में सर्वत्र नगर में नए साल की पिछली या पिछले साल की अन्तिम सांझ के प्रीतिभोज चल रहे थे। होटलों और रेस्ट्रां में काफ़ी भीड़ थी। इस साल पहले की भांति होटलों और रेस्ट्रां में पहले से ही स्थान कम रिज़र्व हुए थे परन्तु आधी रात से कुछ पहले यकायक वहां भीड़ बढ़ती जा रही है, कल का भय मूर्तिमान हो उठा है, दिल में घबराहट है पर यह कैसे हो सकता है कि नए दिन की पिछली आधी रात जो ब्राडवे में जशन की रात है वह भूल जायें और घर बैठे

रहें ! कुछ लमहे उन्होंने निश्चय शंका और विकल्प में विताए फिर आधी रात का घंटा लगते वे अपने कमरे में और न रुक सके, सड़कों होटलों में दौड़ पड़े।

टाइम्स स्क्वेयर का यह 'कार्निवल' जो आज पिछले सालों को मात कर रहा था, इस अमर्यादित रूप में एक विशेष कारण-वश उबल रहा था। उसका कारण था किशोरों और विशेषतया बीस साल से कम आयु वाले तरुणों का उत्साह। स्पष्टत: उन्हें सन्देह था कि यह समारोह युद्ध की इस भर्ती के सामने और पश्चिम कोरिया की ओर एक बार चल पड़ने के बाद शायद जीवन में फिर देखने को न मिले, और सब प्रकार से वे अपने को तृप्त कर लेना चाहते थे, आलिंगनों से, चुम्बनों से, शर्मीली हरकतों से।

सिंघे और बिगुल सबसे अधिक वे ही बजा रहे थे, सबसे अधिक वे ही चीख-चिल्ला रहे थे, चिड़ियों-जानवरों की बोली बोल रहे थे, लड़कियों के साथ गलबहियां डाले झूम रहे थे। आधी रात जैसे ही जैसे पास आती जा रही थी वैसे ही वैसे शोर बढ़ता जा रहा था। पुलिस का घेरा अनेक बार उन्होंने तोड़ दिया। ऊपर-नीचे से उसे लांघ जाने में उन्हें विशेष आनन्द मिलता था। वे पुलिस पर आवाजें कसते, कहकहे लगाते और झूम-झूम प्यार भरे, मद भरे, शरारत भरे गन्दे गाने गाते। उनकी भाषा में ऐसे शब्दों की भरमार होती जो विदेशियों के लिये तो अधिकतर अगम्य होते पर जिनका भार स्वयं उन्हें खिला देता।

अनेक इनमें से चार-चार पांच-पांच की कतार बनाए शराब की बोतलें लिए सड़कों पर गाते-चीखते फिरते। उनकी कतार में लड़के लड़कियां दोनों होतीं और नंगपन का बाज़ार गरम होता। अपने पर मुझे गर्व होता कि पश्चिम का अनेक रूप से भक्त होता हुआ भी, मैं सोचता, हम निश्चय इन से अधिक सभ्य हैं। वहशीपने से दूर, वन्य जीवन से दूर जिसे हम सब बहुत पीछे छोड़ चुके हैं। हमारी होली पर विदेशी व्यंग

करते हैं पर हमारे लिये वह दुःशील होली भी इस न्यूयार्क की साल की अन्तिम रात की अमर्यादित उच्छृङ्खलता से कहीं विनीत है।

न्यूयार्क में शायद ही कोई हो जो पीता न हो। फिर इस रात भला कौन ऐसा अभागा होगा जो पिये न हो। फिर अधिक पीकर उत्सव मनाने वालों की संख्या, आबाल वृद्धों की, हजारों में नहीं लाखों में है, बीस-तीस लाख में और इनमें से हजारों हर प्रकार की सीमा से बाहर चले जाते हैं, क्या मर्द क्या औरत, क्या बूढ़ा क्या जवान, क्या बालक क्या किशोर। कैथरिन मेयो और बेवरले निकल्स ने क्या ये दृश्य न देखे होंगे? दृश्य जो मैंने देखे और आंखें बन्द कर लीं। पर उनकी बात यथा-समय कहूंगा। अभी सामने की भीड़ देखिए और वह नीचे लटकता आता चमकता गोला।

यह गोला बिजली का एक बड़ा सा गेंद है जो टाइम्स-स्तंभ से नीचे उतरता है। यह आधी रात का सिगनल है, नए साल का सूचक जो उस स्तंभ के मस्तक से नीचे उतरता आ रहा है और मैं श्री दवे के कमरे से, जिसमें प्रायः पचीस जन दम साधे टेलीविज़न पर टक लगाए हुए हैं, उस गोले को देख रहा हूँ, और उस भीड़ को भी जो खौलती-उबलती स्तंभ की ओर स्वयं टक लगाए हुए है।

आधी रात के अभी चार मिनट हैं, अब तीन मिनट और अब दो, डेढ़, और भीड़ का शोर सहसा स्तब्ध हो गया। एक मातम सी चुप्पी भीड़ पर छा गई है। सारी आंखें, प्रायः बीस लाख आंखें, टाइम्स-स्तम्भ पर टिकी हैं जहां झंडे के सिरे से गेंद उतरता आ रहा है। हमारी आंखें भी इस कमरे में टेलीविज़न के टाइम्स-स्तभ के झंडे के सिरे से उतरते उसी गेंद पर लगी हैं। गिरा, गेंद गिर पड़ा और चार बिजली के प्रकाश '१९५१' का अभिलेख लिए सहसा एक साथ जल उठे। १९५१ का साल आरंभ हो गया। बधाइयों से दिशायें गूंज उठीं।

शोर फिर होने लगा। आकाश-पाताल गूंजने लगे। मनुष्य हंस रहा था, बर्बर मनुष्य, और उसका अट्टहास दिशाओं ने पश्चिम, दूर पश्चिम, सिंधु पार कोरिया के मैदानों में, जहां रात ठमकी हुई है, जहां नया सबेरा पिछली रात का मुंह नहीं देखना चाहता, पहुँचा दिया, जहां मैदान में बिछे मरते कोरियन और अमेरिकन दोनों ने वह आवाज़ सुनी। एक ने अचरज से अपने कान खड़े कर लिये दूसरे ने शरम से, और मौत ने दोनों पर एक साथ अपनी चादर डाल दी।

पौने ग्यारह बजे ही उत्तर-दखिन की गाड़ियों का यातायात ४० वीं और ५२ वीं स्ट्रीट के बीच रोक दिया गया था। और ग्यारह बजे आस-पास की गलियों और स्ट्रीटों में भी वह यातायात बिलकुल बंद कर दिया गया। तब पुलिस ने तमाशबीनों और खुशियां मनाने वालों को गलियों में बिखर जाने दिया, सरका दिया। भीड़ के डर से अनेक दूकानदारों ने अपनी रक्षा के लिए लकड़ी का ढांचा खड़ा कर लिया था। ब्राडवे और ४४ वीं स्ट्रीट के एक ड्रगस्टोर (भोजनालय) ने तो अपने चारों ओर लोहे की शहतीरें खड़ी कर ली थीं। मैंने अनुमान किया संभवतः पिछले साल उसपर बुरी बीती होगी। पैरामाउण्ट थियेटर ने अपना आफ़िस लकड़ी के पटरों से घेर दिया था और पीछे ४३ वीं स्ट्रीट में एक नया आफ़िस खोल लिया था।

आधी रात के पहले पुलिस ने भिखारी पकड़ने का अपना सालाना कार्य आरम्भ किया। उनकी गश्ती गाड़ियां स्ट्रीटों में खड़ी कर ली गई थीं और अब तक भिखारियों से भर चली थीं। भिखमंगों के विरुद्ध कानून बनाने वालों को भला यह सोचने की कहां फ़ुरसत कि भिखमंगे अपने कारणों से नहीं दूसरों के पाप से भिखमंगे हैं और बजाय उनको पकड़ने के उनके काम की फ़िक्र करनी सभी के लिये अधिक हितकर होगी।

आधी रात के पहले एक नई बात नगर में हुई। उसके घटयिता नेश-

नल मेरीटाइम और एयरोनाटिकल एसोसियेशन के कर्मचारी थे। उन्होंने बैटरी और गवर्नर्स आइलैंड के बीच दो अनलंकृत क्रिसमस वृक्षों में से एक के साथ मंत्रपूत शराब भरी बोतल और दूसरे से रोटी का एक टुकड़ा बांध कर समुद्र जल में प्रवाहित किया जिससे युद्ध में अन्यत्र लड़ने और मरने वाली आत्माओं को शांति मिले।

सेन्ट जान चर्च में आधी रात का उपदेश करते हुए बिपश राइट रेव-रेण्ड होरेस डोनेगन ने कहा—'कानून और समझौते कागज़ के टुकड़े मात्र हैं जिन्हें डिक्टेटर चाहे जब जेब में रख ले सकता है।'

'जब तक कि जनता में शांति पूर्वक साथ रहने की इच्छा और दृढ़ता न होगी कानून व्यर्थ सिद्ध होंगे।'

'इसका एक मात्र उपाय सबका ईसा के विचारों की शरण जाना है।'

शायद अब भी बिशप साहब का विचार है कि युद्ध करने वाले बर्बर पौर्वात्य हैं। कौन सी इधर की संसारव्यापी लड़ाई भला ऐसी लड़ी गई है जिसे ईसाई धर्म अनुयायियों ने नहीं लड़ा और जिसके आवर्त में दूर के एशियाइयों तक को उन्होंने न खींच लिया! आश्चर्य है आक्रमक और आक्रान्त दोनों उसी खुदा की ओर हाथ उठाते हैं जिसे शांति से कहीं अधिक युद्ध की लाल बर्बरता प्रिय है।

भोजन कब का समाप्त हो गया था। टाइम्स स्क्वेयर की भीड़ के करतब भी अधिकतर टेलीविज़न से देख ही लिये थे। भीड़ अब तक गलियों में भर चली थी और धीरे धीरे अब मैंने भी होटल लौटना तै किया। दवे जी ने कहा कि मिस्टर शाह (एक तरुण गुजराती व्यवसायी) की गाड़ी में चले जाइए, रास्ते में आपको छोड़ते जायेंगे। पर मैं और ठहरना मुना-सिब न समझ विदा ले यह कहता एलिवेटर (लिफ्ट) की ओर चला कि नीचे टैक्सी ले लूंगा। इसपर बाजपेई जी भागते हुए पहुँचे और उन्होंने मुझे सहसा रोक लिया।

बाजपेई जी इस देश के पुराने भारतीय हैं जो दिवंगत लाला लाजपत राय के साथ रह चुके हैं और जो उनके अन्तरंगों में से थे। उन्होंने आते ही कहा—'चलिए मैं आपके साथ ही चलता हूँ। मुझे भी उधर ही जाना है। और देखिए, टैक्सी तो भूलकर भी न लीजिएगा।' मैं जो कुछ उत्सुक हुआ तो उन्होंने कहा—'आपने सैकड़ों-हज़ारों की संख्या में यूनाइटेड स्टेट्स में आकस्मिक घटना की रिपोर्ट नहीं पढ़ी है? वे घटनाएँ इन्हीं उत्सवों पर तो इस तादाद में होती हैं। आपने देखा नहीं लोग किस क़दर पीकर बुत हैं। एक आदमी भी कहीं सही नज़र आता है? सबवे से चलिए।

मकान से बाहर निकलते ही भीड़ से पाला पड़ा। ७४वीं स्ट्रीट से कुछ सड़कें लांघकर ही सबवे जा सकते थे। बच-बचकर चलना था। कोई कहीं टकरा रहा था कोई कहीं। किसी तरह बचते हुए ब्राडवे पहुँचे तो देखा कि टैक्सी ड्राइवर न आगे देखते हैं न पीछे, पिए हुए गाड़ी उड़ाये चलते जाते हैं। और एक तो हमारे प्रायः देखते ही अपनी गाड़ी लिये दूसरी गाड़ी से जा भिड़ा। दोनों गाड़ियाँ एक साथ घोड़ों की अलफ़ की भाँति ऊपर उठीं और गिरीं। एक तो वहीं सुन्न हो रही और दूसरी पुल के नीचे जा रही। जो ऊपर थी उसका ड्राइवर सीट और ह्वील के बीच दम तोड़ चुका था। जिस स्वाभाविकता से वह मरा था उसी स्वाभाविकता से उसका मरण वृत्तांत टाइम्स में पढ़ते हुए श्री मुकर्जी ने कहा—यह उस व्यक्ति का भग्नावशेष है जो सड़क के विधानों का इतना क़ायल था!

सबवे का हाल और भी बुरा था। हज़ारों उधर से गुज़र रहे थे। उस के अनालोकित कोनों में कुछ ऐसे काण्ड देखे कि आंखें फिरा लेनी पड़ीं। अभी होली पर हंसने वालों की बात सोच ही रहा था कि यकायक शोर मचा—'हां! हां' बाजपेई जी ने मुझे एक ओर घसीट लिया। दो पियक्कड़ शोर मचाते लड़ते चले आ रहे थे। उनके कपड़े अस्तव्यस्त थे, एक का

सिर फटा हुआ था, रक्त बह रहा था। दोनों लड़ते-लड़ते जो ऊपर की सीढ़ियों से गिरे तो गिरते चले गए प्लैटफ़ार्म पर। कहीं प्लैटफ़ार्म के नीचे चले गए होते तो डा० मुकर्जी का वक्तव्य उनके संबंध में भी सार्थक हो गया होता।

ट्रेन में बैठे, पर वहां क्या कुछ कम घृणित दृश्य थे। हमारे आगे-पीछे दाहिने-बाएं लोग नारियों से इस प्रकार चिपटे हुए थे कि मन बग़ावत कर उठता था। चूमना-चाटना इतनी बदसूरती इतनी बेशर्मी से हो रहा था कि सिवा नीचे देखने के कोई चारा न था। देखने वाला शरमा जाय पर करने वाले न शरमाते थे। पूरवियों को असभ्य कहने वाले बर्बरों की अवश्य करतूतें देख स्वदेश की संस्कृति के अभिमान से नसें फूल उठीं।

अपने आप मुंह से निकल पड़ा—'तौबा, यह रात भी क्या है, और वह दिन भी क्या होगा जो इस घिनौनी माँ की कोख से जनमेगा!'

: ३ :

और वह अगला दिन !

और वह अगला दिन—लाल, रक्त-सा लाल।

यूरोप में सूरज निकला है, अभी निकल ही रहा है, क्षितिज से उठता, थाल-सा बड़ा, लहू-सा लाल, आग का दहकता गोला।

पिछली साँझ वह रक्ताभ प्रतीची के क्षितिज में खो गया था, अस्ताचल के पीछे, जहाँ सुनहरी लकीर भूम्याकाश की सन्धि संवारती है। और आज जो वह क्षितिज से उठा तो जैसे लहू के समुद्र से डुबकी लगाकर निकल रहा हो।

आज नए साल का नया दिन है। नए दिन को हिन्दू रंगों से होली खेलता है, ईरानी अल्बुर्ज की ऊंचाइयों पर बंधे झूलों पर पेंग मारता है। यूरोप की दुनियां और है, इन दोनों से परे। वहाँ जीवन और मरण का

सौदा चल रहा है, चलता रहा है। वह फटका खेलने वालों की दुनियां है। बम्बई के बुलियन-मार्केट में एक्सचेंज की टकसाल में चाँदी खनखनाती है, उस जूए में काल्पनिक सम्पत्ति के वास्तविक दाँव लगते हैं।

इस दूर की दुनियां का रवैया और है। यहां जीवन-मरण का जुआ खेला जाता है, राष्ट्र और जातियाँ दाँव पर रखी जाती हैं। जान बुल और अंकिल सैम अविराम चित्ती फेंकते हैं। और इस चित्त-पट्ट के दौरान में लाखों प्राणियों का वारा-न्यारा हो जाता है।

हल्के-फुल्के राष्ट्र एशिया और यूरोप में, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका में नए विधान, नए निर्माण, नई योजनाओं की सफलता के स्वप्न देखते हैं। इधर जान बुल और अंकिल सैम दाँव पर फेंकी कौड़ियाँ समेट लेते हैं। हथेलियों का वह विस्तार इस नन्हें राष्ट्र की साध की आकांक्षाओं पर पानी फेर देता है।

नया दिन ग़रीब और अमीर दोनों की आशाओं का अम्बार लेकर आया है। पूंजीपति अपने लाभ की आशा से उसका स्वागत कर रहे हैं, सर्वहारा अपनी आज़ादी के नाम पर उसका आह्वान। विजित-शोषित राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता का जाग्रत-स्वप्न देख रहे हैं, शोषक राष्ट्र उन पर अपने शिकंजे और कस लेने की तैयारी में हैं। दोनों के दृष्टिकोणों में जीवन-मरण का अन्तर है, अमृत और ज़हर का। दोनों में प्रकृत्यमैत्री है, अन्न-अन्नाद का संबन्ध है।

इंग्लैंड बहुत कुछ खो चुका है, नित्य खोए जा रहा है। उसका दावा है कि उसने संसार को आज़ादी के नारे दिये हैं, पार्ल्यमैंट रवैये की थाती सौंपी है, वह जगत् का इस दिशा में गुरु है। उसने संसार को आज़ादी की क़तार में खड़ा करने का बीड़ा उठाया—अमेरिका, भारत, बर्मा, सीलोन, मिस्र, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, दखिन अफ्रीका, सभी उसकी इस कृपा के आभारी हैं। परन्तु उसके साम्राज्यवाद-पूँजीवाद का अन्तर्निहित

स्वाभाविक द्वन्द्व उसके अभिमान पर व्यंगमय अट्टहास कर उठता है— तुम साम्राज्यवाद के नाश के बीज को उसी के प्रांगण में फैलते और पुष्ट होते नहीं देख पाते।

यह लन्दन है, हजार वर्ष का सँवारा लन्दन, लन्दन जो अपने वैभव की सदियों के पार खड़ा ऊँचाइयों की चोटी से अब नीचे देख रहा है क्योंकि चोटी छू लेने के बाद और ऊपर नहीं जाना होता, नीचे ही देखना होता है। भूमि के उस अन्तस्तल में जहां गिर कर फिर धरातल का स्पर्श मानव नहीं कर पाता। परन्तु अभी उसमें देर है। जीवन की लालसा से गौरव की बची धूल को समेटता इंग्लैंड फिर भी चोटी पर जमे रहने के असफल प्रयास कर रहा है परन्तु धूल की न तो रस्सी बटी जा सकती है और न उसका सहारा ही लिया जा सकता है।

पिकेडली के बाजार में नर-नारी झूमते फिर रहे हैं क्योंकि आज साल का पहला दिन है। झूमते वे बराबर फिरते हैं पर आज विशेष क्योंकि आज का सूरज रोज का सूरज नहीं, अगले साल के पहले दिन का है और यह पहला दिन नई साधों, नई उम्मीदों के साथ आया है। एटली की सरकार अमेरिका के पृष्ठ भाग से चिपकी हुई है; मजूरवर्ग का नाम लेकर उसने श्रम पर काफी बोझ लादा है। परिणामतः उसके राष्ट्रीयकरण का लाभ मजूरों को न होकर सरकार को हुआ है और सरकार मजूरों की नहीं सरमायादारों की है। फिर भी पता नहीं इंग्लैंड के सरमायेदार मजूरों की उस व्यंग्य रूपिणी एटली की सरकार को भी वहां जमने देंगे या नहीं। कन्जरवेटिव दल अब भी चर्चिल की विस्तृत छाया में दम ले रहा है और छाया रूप से ही एटली की सरकार की खामियों और कमजोरियों की तालिका बनाये जा रहा है जिसे वह अगले निर्वाचन में निर्वाचकों के सामने खोलकर रख देगा। भारत की आजादी, पाकिस्तान की शरम के बावजूद भी साम्राज्य की हानि का सब से बड़ा सबूत है। चीन की वर्तमान सरकार

के स्वीकरण ने, कन्ज़रवेटिव विचारों ने, अमेरिका के प्रति एक नई लालसा उत्पन्न कर दी है, एक नया भय कि कहीं वह सहारा भी छूट न जाय। यह भय केवल कन्ज़रवेटिव दल का ही नहीं एटली के मजूर-दल का भी है और इसी से संयुक्त-राष्ट्र-संघ में बैठने वाले इंग्लैंड के प्रतिनिधि अब भी चीन के मसले पर चुपचाप वहां सच्चाई से कतरा जाते हैं।

अमेरिका ने अपने देश में स्वतन्त्र विचारकों के साथ भोंडी ज़्यादती की है। अगर उसे कम्यूनिज्म से डर था तो उसे चाहिए था कि मार्क्सिस्ट मान्यताओं के विरोध में वह, यदि उसके यह बस की बात होती, एक नया दर्शन खड़ा करता और दर्शन को दर्शन से जीतने की कोशिश करता; परन्तु उस की भोंडी राजनीति ने विचारकों और साहित्यिकों को उसके बदले जेल भेज देना मुनासिब समझा। हावर्ड फास्ट ने शोफील्ड (इंग्लैंड) में होने वाली शान्ति सभा में शरीक होने के लिए सरकार से पासपोर्ट मांगा। सरकार ने उसे देने से इन्कार तो कर ही दिया उल्टे उस शेर को कटघरे में बन्द कर दिया और साथ ही एल्बर्ट माल्त्स, जान रावर्ट लॉसन और साथ ही अमेरिका के उस महान् बूढ़े सैमुएल ऑर्नित्स को भी जो आज के अमेरिकन साहित्य का प्रतिनिधि है, जो इतना बीमार है कि हिल नहीं सकता और जो अजब नहीं कि अब उस कठघरे से बाहर न निकल सके।

ऑर्नित्स की याद भारद्वाज की याद ताज़ा कर देती है, रुद्रदत्त भारद्वाज की। निरीह जन-सेवी रुद्रदत्त का शरीर प्रायः भुवाली के बिस्तर से उठा लिया गया था; उत्तर प्रदेश की सरकार को भय था कि उस बिस्तर पर पड़े-पड़े वह जन सेवक कहीं सरकार की बारूद में अपने तप की चिनगारी न फेंक दे और सरकार उसे जेल उठा ले गई। सरकारों पर हत्या का अभियोग नहीं लगा करता क्योंकि हत्या का अभियोग मज़बूत लगाता है कमज़ोर पर।

डाल्टन ट्रम्बो, महान् जनवादी कवि, भी आज जनतन्त्र के नाम पर नित्य गला फाड़ने वाले ट्रूमन के जेल में बन्द है और वैसे ही रिंग लार्डनर भी और साथ ही वह अलवा बेसी भी जिस ने कभी स्पेन के हत्यारों के विरुद्ध न केवल लेखनी बल्कि तलवार उठाई थी। सो, अमेरिका ने उन शान्तिवादियों को तो काठ में ठोंक दिया जिनकी आवाज़ उसकी मारू आवाज़ के ऊपर उठने की चेष्टा कर रही थी, साथ ही अपने अधिकारपूर्ण संकेत से शेफ़ील्ड की शान्ति सभा का अधिवेशन भी रोक दिया।

शेफ़ील्ड का अधिवेशन निश्चय अमेरिका ने रोका वर्ना एटली की क्या मजाल जो इंग्लैण्ड की सदियों की आज़ादी की परम्परा पर वह कुठाराघात कर सकता। जिस लन्दन में संसार के क्रान्तिकारियों ने समय-समय पर बराबर पनाह ली उसी लन्दन की सरकार ने शेफ़ील्ड की आज़ादी और शान्ति का मोर्चा तोड़ दिया। और उसी लन्दन में आज भी पार्लमैन्ट सक्रिय है, आज भी कामन्स के प्रतिनिधि अपनी मेज़ों पर विराजमान हैं; एक दूसरे को नए दिन की बधाइयाँ दे रहे हैं।

शान्ति का मोर्चा आज़ादी का मोर्चा है क्योंकि रूसी साम्राज्यवाद के नाम पर अमेरिका जो अपना साम्राज्य बढ़ाता जा रहा है और जिसके दायरे में, जिसकी नित्य खिंचती आती रस्सी के घेरे में, एक के बाद एक संसार के राष्ट्र निरन्तर खिंचते आ रहे हैं, वह शान्ति के नाम पर ही जीता जा सकता है। शान्ति के नाम पर शस्त्रीकरण की दौड़ अमेरिका को ही फब सकती है क्योंकि यही उसका मारक और तथ्य का द्वन्द्व चक्र है जो उसे ले बीतेगा। शान्ति के नाम पर शस्त्रीकरण और निरन्तर युद्ध की ललकार कुछ राष्ट्रों को निश्चय धोखे में डाल रही है, पर फिर भी वह उन्हें बराबर धोखे में नहीं रख सकती। अमेरिका कुछ लोगों को सदा धोखे में रख सकता है, सब को कुछ काल के लिए धोखे में रख सकता है पर

सदा सबको धोखे में नहीं रख सकता। फिर भी इंग्लैण्ड तो आज उसके बस का है, अपनी सदा की मान्यताओं, अपनी सदा की आज़ाद भावनाओं के बावजूद भी। और आज साल के इस पहले दिन जनता की खुशियों के बावजूद भी उसकी सरकार प्रायः मूर्छित पड़ी है। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान और चीन के प्रति अपनी बर्ती साम्राज्य की रक्षा के लिए ही। परन्तु साम्राज्य विरोधी नीति का उत्तरदायित्व उसका है और उसका जवाब उसे अगले निर्वाचनों में देना है। फिर मध्य-एशिया, मध्य-पूर्व आदि के देशों में जो आँधी के आसार नज़र आ रहे हैं वे क्या कर बैठें कुछ पता नहीं; पर वे कुछ भी कर सकते हैं कुछ अजब नहीं।

ईरान को इंग्लैण्ड ने एक ज़माने तक जोंक की तरह चूसा है और अब किसी दिन भी ईरान को लाचार हो कर उठना है और लाचार कुछ भी कर सकता है। फिर यह लाचारी ही उसका एकमात्र ज़ोर नहीं, उस की जनाभिमानी शक्तियाँ इसलिये साम्राज्यवाद से लोहा लेने को कटिबद्ध हो रही हैं। इराक़ और जार्डन के साथ कुछ दाँव-पेंच इधर उसी तेल के मसले पर चलते रहे हैं, पर यदि ईरान उठ कर हाथ से निकला तो इराक़ कब तक उसमें ठहर सकेगा। फिर मिस्र और सूदान भी जागरूक हैं और स्वेज़ नहर का मसला किसी दिन साम्राज्यवाद और जनवाद का मोर्चा बन सकता है।

पर आज का दिन तो पहली जनवरी का दिन है। पिछली शाम लोग पिछला साल भूल चुके हैं। आज नए साल के पहले दिन वे एक दूसरे को गले भेंट रहे हैं, चूम रहे हैं—पिकेडली में, नेलसन स्क्वायर में, हाइड पार्क में, सड़कों पर, गलियों में, सायबानों में, घरों में।

और सूरज पूरब से उठता आ रहा है, पूरब से जिधर रूस है, चीन है, इण्डोनेशिया है, मलाया और वियतनाम हैं, हिन्दुस्तान और बर्मा हैं। वही सूरज इन पूर्बियों के हौसले संवार चुका है, उनके अरमानों में आशा

का लाल चोखा रंग भर चुका है। उनके आज़ादी के स्वप्नों पर हल्के मुस्करा चुका है। और इन देशों की उठती हुई आज़ादी की भावनाएँ एक बार फिर पश्चिम की ओर बढ़ चली हैं। मध्य-एशिया, अफ्रीका, तुर्की और पूर्वी यूरोप की ओर, जिधर से, और जिधर-जिधर से, यह रात्रि की कालिमा को हरने वाला, आज़ादी की उम्मीदों को जगाने वाला सूरज गुज़रा है, ज़मीन लहलहाती गई है; क्योंकि यद्यपि उसकी हरियाली शान्ति और मानवता के दुश्मनों ने पिछली सदियों में जला डाली है, उसके अंकुर अपने पैने सिरों से ऊपर की मिट्टी कुरेद कर बाहर निकल आने की कोशिश कर रहे हैं।

यूरोप की ज़मीन पर कोई ऐसा देश नहीं जो फ्रान्स की तरह नए दिन का स्वागत कर सके। उसके सँवारे पेरिस के अस्वाल के प्राङ्गण में आज जश्न हो रहे होंगे, शाँज़ेलीज़े की फैली सड़क पर दोनों ओर झूमती कतारें चल रही होंगी, बाँहों में बाँहें गुथी होंगी, होठों पर होंठ टिके होंगे और जनप्रवाह अस्वाल से लुव्र की ओर लुव्र से अस्वाल की ओर आ जा रहा होगा। पेरिस क्रान्ति का नगर है। उस पर भी आज वही सूरज रोशन है जो पूरब को आज़ादी के अरमानों से भर चुका है, जिन अरमानों का आदि बिन्दु बहुत कुछ पेरिस में ही फ्रान्सीसी राज्य-क्रान्ति की मान्यताओं की चट्टान पर टिका है।

पेरिस की कहानी पुरानी है; उसका इतिहास गर्व और शर्म दोनों का है पर उन सबसे ऊँची उसकी वह उज्ज्वल क्रान्ति है जिस ने पहली बार मानव की स्वाभाविक आज़ादी की मान्यता दिशाओं में घोषित की, जहाँ मारात ने जनसत्ता को यथार्थ रूप से फ्रान्स में प्रतिष्ठित करने के लिए पेरिस की असेम्बली से निरन्तर लोहा लिया था और जहाँ उसके पहले देदेरो, वोल्तेयर और रूसो ने रूढ़िवादिता के विरोध में झंडा ऊँचा किया था। आज वहाँ आज़ादी की वह देवी मूर्ति निश्चय नंगी है और अपनी

शर्म किसी प्रकार ढक नहीं पाती जब वह अपनी छाया के नीचे शुमन को साँस लेते पाती है। उसने एक के बाद अनेक साल के नए दिन गुज़रते देखे हैं पर आज का दिन निश्चय जितना घिनौना है पहले कभी न था।

पेरिस अनेक बार आक्रमणकारियों द्वारा आक्रान्त हो चुका है—जूलियस सीज़र से एडोल्फ हिटलर तक—परन्तु बार-बार उसकी शान और क्रान्ति की अमर आत्मा सजग हुई है; बार-बार उसने अपने विजेता की पीठ देखी है और अनेक बार तो वह उसको सामने से ललकार चुकी है। अभी उस दिन पेरिस के नात्सियों के सामने आत्मसमर्पण के बाद अपने छोटे से स्टूडियो में पाब्लो पिकासो ने मुँह तोड़ जवाब देकर आज़ादी की आत्मा की रक्षा की थी। उसकी चित्रशाला में घुसते ही नात्सियों की नज़र उस ग़ज़ब के कार्टून पर पड़ी जिसमें गेरनिका के बलिदान की अनन्त रेखाएँ सहसा फूट पड़ी थीं। गेरनिका के त्याग और बलिदान की समता इधर के इतिहास में बस एक नगर कर सकता है, स्तालिनग्राद। गेरनिका ने बार-बार जो दुश्मन के खिलाफ बगावत की आवाज़ बुलन्द की तो नात्सियों के गुस्से की हद न रही और उन्होंने उस कस्बे की ईंट-ईंट बजा दीं, उसके प्राणी-प्राणी को तलवार के घाट उतार दिया। चंगेज़ और अत्तिला की गयी राह शायद अपनी मंजिलों पर कुछ खण्डहर छोड़ती गयी हों पर गेरनिका की तो नात्सियों ने बुनियाद ही मिटा दी। उसी गेरनिका की ध्वंस-लीला इस कार्टून में लाख लाख ज़ुबान से दुश्मनों को चुनौती दे रही थी। उसका कोना-कोना, उसकी लाइन-लाइन नात्सियों को ललकार रही थी, उनके जुल्म और बेहयापन पर लानत भेज रही थी। नात्सियों ने चित्रकार से पूछा, "वह क्या तुमने किया?" चित्रकार पिकासो की ज़ोरदार आवाज़ उत्तर में सहसा गूँज उठी, "नहीं, तुमने किया।" संगीनें जो चोट के लिए उठी थीं सहसा रुक गयीं, उनकी नोक जैसे मुड़ गयी; आहत नात्सी क्रूरता जैसे एक बार झुक गयी। हज़ारों,

लाखों, करोड़ों फ्रान्सीसी दिलों में पाब्लो पिकासो, उस निहत्थे चित्रकार, के चुनौती भरे जवाब की प्रतिध्वनि गूँजती रही, जो सदा आज़ादी के मोर्चे पर गूँजती रहेगी। उसी पेरिस पर आज इस साल के पहले दिन का सूरज चमक रहा है, उसकी चमक में जरूर स्वतन्त्रता की देवी शरमा गई है, पर पिकासो के से जवाँमर्दों को देख उसे फिर भी ढाढस होता है। आज उसकी उम्मीदें ऐसों पर ही लगी हैं जो निश्चय अमेरिका के ट्रूमन के से पिट्ठुओं की दाल अपनी ज़मीन पर गलने न देगी।

जिस साल का आज का यह नया दिन आरम्भ कर रहा है वह साल भयानक मोर्चे का साल होगा, आज़ादी और साम्राज्यवादी शक्तियाँ एक दूसरे पर इस वर्ष गहरी चोट करेंगी। ट्रूमन का दावा है कि वह चीन और रूस को बरबाद कर देगा, मध्य-एशिया में स्वरक्षा के नाम पर उन दोनों के विरुद्ध एक नयी सत्ता खड़ी कर देगा जो उसे दक्खिन की ओर से घेर लेगी। पर एशिया की मानवता अब मूर्छित नहीं, अब वह अपने अधिकारों का स्वरूप आँक चुकी है, उसी पश्चिम ने जिसने कभी अपने पेचों के जाल में उसे जकड़ लिया था उसे अपनी ही आज़ादी के सोत से अनजाने सींच दिया है। पूँजीवाद के जलते अम्बार ने सदियों एशिया को जलाया है पर वह स्वयं अपनी आग से बचा न रह सका और अब पूरब उस आँच से गर्मी लेता नींद की खुमारी तोड़ रहा है, ऊपर का उठता सूरज उसे अपनी गर्मी से सक्रिय कर रहा है। शीघ्र पूरब का प्रताप उठते सूर्य के साथ बढ़कर संसार पर छा जायगा पर निश्चय उसकी प्रवृत्ति शोषण की न होगी, भाई-चारे की होगी, क्योंकि उसने ज़ंज़ीरों की जकड़ जानी है और उसे वह तोड़ चुका है।

नया साल नये जीवन का साल है जो यद्यपि कठिनाइयों और संघर्ष का होगा परन्तु निःसन्देह अपने दौरान में उस नई दुनिया की नींव डालेगा जिसमें मनुष्य अपने कार्यों पर विश्वास और सन्तोष के साथ गर्व करेगा।

भगवतशरण

: ४ :

इण्डिया कान्सुलेट में एक सन्ध्या

यह सन्ध्या इण्डिया कान्सुलेट में बीत कर भी किसी प्रकार उसके कार्यों से सम्बन्धित न थी। वहीं अमेरिका के भारतीय छात्र-संघ का कल शाम (३०-१२-५०) वार्षिक अधिवेशन तथा प्रीति भोज था। मैं भी निमन्त्रित था। कार्यभार अत्यधिक था, मित्रों ने कहा भी 'कि क्या करोगे वहां जाकर, कुछ होगा थोड़ा ही वहां, सिवा भारतीयता के नाम पर कुछ ओछे-नंगे प्रदर्शनों के', पर गया, कि देखूं हमारे छात्र इन प्रगतिशील देशों में रह कर किस अंश तक कार्यचारुता अथवा कर्मठता सीख सके हैं।

कालेजों से अभी हाल तक सम्बद्ध रहने के कारण और इससे भी अधिक भारतीय भविष्य को उन्हीं पर अधिकतर अवलम्बित जान अधिकतर उन्हीं में रहा हूं, रहना चाहता हूं, इस कारण भी मेरा उस समारोह

में सम्मिलित होना स्वाभाविक और अनिवार्य था। फिर मैं आधुनिक अमरीकी साहित्य के इतिहासकार होरेस ग्रेगरी की उस संध्या की बात भी न भूल सका कि "देखें भारतीय छात्र-संघ शांति की दिशा में कैसा कदम उठाता है!" मुझे उस पक्षाघातग्रस्त सुघड़ अमेरिकन के आशोद्‌गार का एक-एक अक्षर याद था और भीतर ही भीतर आशंका साल रही थी। आशंका जिसे ऐसे अवसर पर भारतीय ही समझ सकता है। क्या वहां कुछ सचमुच होगा? क्या कतिपय अमेरिकनों की आशा उस दिशा में मरीचिका ही सिद्ध होगी?

सच, मैं कुछ डर चला था और भीतर ही भीतर एक प्रकार की लज्जा घर करने लगी थी। जाना ही निश्चय कर लिया, गया। जल्दी-जल्दी कपड़े पहने। अभी हाल तक काम करता रहा था, फिर अमेरिका में आज प्रायः तीस वर्ष से रहने वाले लिपि और मुद्रण के असाधारण ज्ञानी श्री हरि जी गोविल आ गये थे और उन्होंने भी जाने की ही बात कही। समय बहुत थोड़ा था, साढ़े तीन बजे अधिवेशन आरम्भ हो जाने वाला था, सवा तीन बज चुके थे। झट कपड़े पहन होटल के कमरे से नीचे सड़क पर उतर आया और पांचवीं एवेन्यू की बस पर जा बैठा। सड़क पर भीड़ बहुत थी, कारों, बसों और ट्रकों की उन्तीसवीं सड़क से चौसठवीं तक पहुँचते-पहुँचते पौन घंटा लग गया। कुल रास्ता प्रायः डेढ़ मील का था परन्तु बस को रेंगना पड़ा था प्रायः पैंतालीस मिनट।

समय से काम करता हूं, समय से ही पहुंचना चाहता था, विशेषकर विदेश में जहां प्रायः सभी वक्त से काम करते हैं और जहां सोचा था हमारे छात्र भी, मिनट भर की भी चूक न करेंगे। इससे कुछ घबड़ाया हुआ चौसठवीं स्ट्रीट की तीसरे नम्बर की भारतीय कान्सुलेट-जनरल की उस अट्टालिका के द्वार पर जा खड़ा हुआ। वाइस कान्सुल कोटदा—काठियावाड़—के ठाकुर साहब (स्टेट के राजा) प्रद्युम्न सिंह जी द्वार पर ही

मिले। स्वागत के लिये नहीं खड़े थे, शायद अभी आये थे, मुझे देखकर खड़े हो गये थे। हाथ मिलाया, और भीतर ले गये। वहां का हाल देख जान में जान आई। देखा सभी कुछ घर का सा ही है। लड़के अभी इधर-उधर घूम रहे हैं, लड़कियों को निहार रहे हैं, ठिठोलियाँ कर रहे हैं, आवाज़ें कर रहे हैं, बिल्ले लगाये बिल्ले बांट रहे हैं। मुझे भी एक बिल्ला लगाया गया। रजिस्ट्रेशन के लिये कुछ डालर मांगे गए, जेब में पांच डालर थे दे दिए।

अभी अधिवेशन में देर थी, सवा चार हो गये थे, पर अभी बहुत कम लोग आये थे। पता नहीं यह देर वक्त की पाबन्दी की उदासीनता के कारण थी या जैसा हम अक्सर स्वदेश में अधिवेशनों के अवसर पर करते हैं, *समय से एक घंटा पूर्व निमन्त्रणों में आरम्भ-काल लिख* देते हैं, इसलिये। जो भी हो अभी काफ़ी देर थी और सिंह जी मुझे अपने कमरे में लिये चले गये कि मैं अपना लबादा और टोपी वहां उतार कर रख दूं। उन्होंने कहा कि इतमिनान रखिये पौने पांच बजे से पहिले कुछ होने का नहीं। इतमिनान तो था पर ग्लानि से हृदय भर गया। साढ़े चार बजे नीचे हाल में पहुंचा। हाल भर चला था, सुन्दर काफी बड़ा हाल, चिकनी लकड़ी के फ़र्श वाला, वैसा जैसा अधिकतर विदेशों में नाचघरों में होता है। यह हाल इस विशाल अट्टालिका के उपयुक्त ही है जिसे भारतीय सरकार ने अपने अमरीकी कान्सुलेट के लिये खरीद लिया है, और सुना है, अमेरिका की कीमतों को देखते हुए शायद सस्ते दामों में। पर सस्ता कितना, वह लाखों की बात है, और वह भी लाखों डालरों की, उसका अनुमान ही क्या? और क्यों? जब कि अमेरिका में कंगाल देश भी अधिक द्रव्य खर्चता है। खर्च किस प्रकार चलता है, कौन जाने, पर चलता है बस। मुझे भी, जब होते हैं, डालर खर्चते इस देश में आहस नहीं होती यद्यपि प्रत्येक डालर अब पौने पांच रुपयों का है।

अस्तु, हाल भर चला था सामने संसार प्रसिद्ध एशिया इन्स्टिट्यूट के चैंस्लर और प्रख्यात पंडित डाक्टर आर्थर पोप सोफ़े पर बैठे थे, मुझे देखकर मुस्कराये और पास बुलाकर बिठा लिया। अधिवेशन का उद्घाटन उन्हीं को करना था। 'सिम्पोज़ियम' (विचार विनिमय) का विषय था—पीस इन एशिया—'एशिया में शांति की समस्या।' शांति की समस्या और एशिया में—निश्चय आवश्यक और हृदय को छूने वाला विषय है। कोरिया में तोपें दग रही हैं, बम फट रहे हैं, कोरियन अमेरिका की लाल तोपों का आहार हो रहे हैं। जीतने पर उन्हें न इहलोक का सुख प्राप्य है न मरने पर परलोक का स्वर्ग या वीर-गति! अभी-अभी एशिया पश्चिमी साम्राज्य के चंगुल से उबरा है, अभी उसका सबसे कनिष्ठ नवोदित राष्ट्र वियतनाम अपनी आज़ादी की लड़ाई लड़ ही रहा है और उधर उस एशिया के सब से महान् राष्ट्र चीन को जान के लाले पड़ गए। इसलिये ठीक है, विचार-विनिमय का यह विषय—एशिया में शांति की समस्या।

अभी उस दिन जब भारत के प्रतिनिधि युद्धावरोध और सुलह के लिए लेक-सक्सेस में जान लड़ा रहे थे, जब अरब लीग के सेक्रेटरी-जनरल और शांति के पुजारी अज़्ज़ामपाशा ने दोनों पक्षों में सुलह की अपील निकाली थी और सभी कान लगाये आहट सुनने की कोशिश कर रहे थे कि ट्रूमन ने सहसा शान्ति की कोख में अग्निभाण्ड उलट दिया था—उस ने जो वक्तव्य निकाला वह यह था कि "अब अमेरिका विशेष रूप से शीघ्र कोरिया पर एटम बम बरसाने का विचार कर रहा है और इस बम-वर्षण में वह राष्ट्र संघ की अपेक्षा नहीं करेगा"—और शान्ति के सिपाही लेक-सक्सेस की उस भरी 'लाबी' में जैसे कुचल कर बैठ गये थे। उन्होंने पूछा—फिर यह युद्ध किसका है—अमेरिका का अपना या राष्ट्र संघ का? कौन इसे लड़ रहा है? ह्वाइट हाउस से पहले वक्तव्य का स्पष्टीकरण दो घंटे बाद आया पर बेकार क्योंकि तब तक आशा भरे हृदयों पर तुषार-

पात हो चुका था, बम फट चुका था ।

नवोदित राष्ट्र चीन के प्रतिनिधियों के समवेदी किसी नीतिज्ञ ने मेरे सुनते कहा था—हूँ, ऐटम बम ऐसा आसान है जैसे ! आखिर कितने बम अमेरिका बरसा सकता है, अपने अनन्त डालर कोष के बावजूद भी आखिर कितने ? दस या अधिक से अधिक पन्द्रह—यानी पांच मिलियन चीनी, पचास लाख चीनी । पचास लाख चीनी एशिया की आज़ादी के लिये मिट जांय तो कोई बात नहीं । पर मैं पूछता हूँ, चीन और रूस की अभियान और रक्षा दोनों प्रकार की सन्धि को देखते चीन पर आक्रमण होते ही रूस ने यदि पश्चिमी यूरोप पर आक्रमण किया तब तो उसे पांच दिनों में वह रौंद डालेगा न, फिर कौन उसकी रक्षा करेगा ? और यदि पांच साधारण बम न्यूयार्क के मनहैटन पर गिर गये, केवल पांच, तो भला वहां के अभ्रंलिहाग्र (गगनचुम्बी) इमारतों की क्या गति होगी ?

उसी युद्ध के विरुद्ध एशिया में शांति की समस्या पर विचार निश्चय आवश्यक था और मुझे वहां पाकिस्तान, भारत, इण्डोनेशिया और वियतनाम के प्रतिनिधियों को बैठे देख खुशी हुई, यद्यपि कुछ शंका निश्चय हुई कि वियतनाम के प्रतिनिधि को छोड़ और तो अपनी-अपनी सरकारों के सदस्य या प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य हैं । वे क्या बिना किसी अवरोध के अपना विचार आज़ादी से प्रगट कर सकेंगे ?

पौने पांच बजे तक हाल भर गया था—भारतीय छात्र, अमरीकी-भारतीय, अमेरिकन छात्र-छात्रायें सभी थे । सभा की कार्रवाई शुरू हुई । डाक्टर पोप ने एशिया के मानव हितकर संघर्ष में भारत का नेतृत्व स्वीकार करते हुए एक अत्यंत सारगर्भित भाषण दिया । उससे प्रसंग की प्रखरता और भी चमक उठी । अपने वक्तव्य में वे मेरा नाम भी ले गये और भारतीय संस्कृति के शोधी के नाते मुझ पर भी शान्ति का भार ग्रहण करने वालों का अंशतः दायित्व रखा । पर मैं बोल कैसे सकता था जब

सारा रूप सरकारी था, बोलने वाले अपनी-अपनी सरकारों का प्रतिनिधित्व करने वाले थे !

राष्ट्र-संघ के भारतीय प्रतिनिधिमण्डल के सदस्य अमिय चक्रवर्ती ने एक सुन्दर भाषण दिया पर भाषण एशिया की शांतिसमस्या को दूर से भी न छू सका। भारत के प्राचीन शांतिमय आचरण का उत्तम सुन्दर अभिनय था। इण्डोनेशिया के प्रतिनिधिमण्डल के सेक्रेटरी ने पहले ही कह दिया कि मैं स्पष्ट नहीं बोल सकता क्योंकि इस समय भी राष्ट्र संघ में कुछ कमेटियों की बैठक चल रही है और मेरा मुंह बंधा है। इसी कारण मैं प्रश्नों के उत्तर देते भी अपनी स्वतन्त्रता रखूंगा, जिस प्रश्न का उत्तर अनुकूल होगा दूंगा, वरना नहीं दूंगा। पाकिस्तान के प्रतिनिधिमण्डल के सदस्य अनवर साहब ने जिना साहब का पुराना राग अलापा कि 'क़ायदे आज़म' ने लन्दन टाइम्स के सम्वाददाता से प्रेस कान्फ्रेंस में कहा था कि पाकिस्तानी दूत-मण्डलों का मन्तव्य और मक़सद होगा एकमात्र शान्ति, (आमीन) ! पर इस एशियाई भूमि पर एशियाइयों की छाती पर मूंग दलने वाले विदेशी राष्ट्रों के युद्ध का क्या होगा ?—उस पर कुछ कहना नहीं है !

उस पर कहना भला क्या हो ? वियतनाम के प्रतिनिधि ने उचित रीति से वियतनाम की आजादी की लड़ाई के सम्बन्ध में भारत के दृष्टिकोण की खरी आलोचना की पर सिम्पोज़ियम का विषय धरा रह गया। प्रश्नों के पूछने का समय आ गया। यहां के पुराने भारतीय निवासी श्री मगन जी दवे ने मुझसे अनुरोध किया, डा० पोप ने कुछ पूछने के लिये मुझे विवश किया। फिर मुझे पूछना पड़ा—कि आखिर "एशिया में शांति की समस्या" पर विचार क्यों नहीं हो रहा है ? मैंने कहा—"मैं मिस्र, इस्राइल, इटली और कनाडा होता आ रहा हूं। कहीं की जनता लड़ना नहीं चाहती। अभी कल 'सबवे' (पाताल गाड़ी) में साथ बैठी एक

अमेरिकन महिला ने मुझसे कहा था—मेरा बेटा 'फ्रंट' पर लड़ रहा है, पर मेरा मन उसमें नहीं है। पिछली लड़ाई में भी मेरा वही बेटा लड़ा था, उसका बड़ा भाई भी जो उसी में काम आया पर मुझे उसका कोई दुःख नहीं क्योंकि वह लड़ाई आज़ादी की थी, उसमें मेरा मन था। मैं अपने इस बचे लाल—इस आखिरी कोख—का भी बलिदान कर देती पर क्यों? इसमें मेरा मन नहीं है। यह लड़ाई हमारी नहीं, जाने कौन लड़ रहा है और जाने क्यों? मैंने पूछा—'फिर आखिर यह लड़ाई कौन लड़ रहा है? पेशेवर राजनीतिज्ञ? और पेशेवर लड़ाके?'

मैंने कहा कि 'मेरा विश्वास था कि यह एक ऐसा फ़ोरम होगा जहाँ विचार स्वतन्त्रता और निर्भीकता से प्रगट किए जा सकेंगे। मैं, स्वयं जैसा डा० पोप ने कहा है, संसार के मेधावियों, कलाकारों, साहित्यिकों और मानवतावादियों से देश-देश एक अन्तर्राष्ट्रीय समझ और संस्कृति के नाम पर मिल रहा हूँ और सर्वथा उनकी निष्पक्ष स्पष्टवादिता ने मेरा साहस बढ़ाया है। पर यहाँ, इस सिम्पोज़ियम में, मुझे बड़ी निराशा हुई है। क्यों नहीं इस पर विचार होता कि उत्तर-पूर्वी एशिया में जो आग धधक रही है उसका अन्त किस उपाय से होगा, कौन करेगा और क्या हम विद्याव्यसनी भी उस दिशा में कुछ कर सकेंगे?'

पर इसका उत्तर कुछ भी न मिला। सभा में इस कोने से उस कोने तक लहर उठी—इसका उत्तर? पर उत्तर न मिला। भारतीय कान्सुल जेनरल ने मुझसे धीरे से कहा—इसका उत्तर वे दे नहीं सकते, देना नहीं चाहेंगे, वे अपनी-अपनी सरकारों के आदमी हैं। बात भी यही थी। वे अपनी-अपनी सरकारों के आदमी थे। उतना ही कहते जितना उनकी सरकार कह पाती है। वे अपनी सरकारों के प्रतिनिधि हैं, जनता के नहीं इससे कुछ कह नहीं पाते! पर वे ही क्यों, क्या अमेरिकन पब्लिक मैन न

थे जो आज यहां इस सिम्पोज़ियम में होते ! पर पुराना ढर्रा जो है कि इतने बड़े-बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधि इस सिम्पोज़ियम में बोल रहे हैं !

शरीर की गुलामी ज़ोर लगाने से जा सकती है, पर दिमाग़ी जल्दी नहीं जाती। मैंने देखा कि हमारे छात्रों में वही बेबसी है, वही जी-हुज़ूर की लत जो पहले हम में थी और आज भी नहीं गई। सोचा था कि इन में स्वतन्त्र राष्ट्रों में रहने के कारण कुछ व्यक्तित्व आया होगा पर बिल्कुल नहीं। इनसे तो लखनऊ, इलाहाबाद और बनारस के वे छात्र हज़ार गुना जागरूक हैं, जो अपने अधिकारों पर आक्षेप होते ही आग की भांति भड़क उठते हैं। इनमें सिवा दिखावे के और कुछ नहीं था। किसी ने कहा भी, अजी साहब यह कोई सीरियस बात थोड़े ही है, एक फार्म की बात है—एक सिम्पोज़ियम की। मुझे याद आई उस आक्सफोर्ड छात्र-संघ के बैठक की जहां तब शक्ति और दृढ़ता के साथ प्रस्ताव रखा जा रहा था कि इंग्लैण्ड से राजतन्त्र उठ जाना चाहिये जब उधर सेन्टजेम्स पैलेस में जार्ज षष्ठम् का राज्याभिषेक हो रहा था।

हमारे छात्रों के लिये यह 'सिम्पोज़ियम' केवल एक 'फार्म' की बात थी। मेरी शंका सच सिद्ध हुई। इस सिम्पोज़ियम में भाग लेने वाले सही व्यक्ति न थे। राष्ट्र-संघ लड़ाई लड़ रहा है, कहते हैं, शांति के लिये उस की बैठक हो रही है, संरक्षण भी, फिर जब वह कुछ नहीं कर पाता तो उसके असफल राष्ट्रों के ये छुटभइये इस झूठे सिम्पोज़ियम में भला कैसे सफल होंगे ? अगर स्वतन्त्र विचार व्यक्त करें तो कल इनका नाम दफ्तर से न कट जाय, रोटी के लाले न पड़ जायं !

और इन विद्यार्थियों को भारतीय सरकार विदेशों से ज्ञान और शक्ति-मेधावी स्वतन्त्रता अर्जित करने करोड़ों के खर्च से भेजती है ! और इनके माता-पिता अपना पेट काट इनका 'मूवियों' का खर्च चलाते हैं। वही चुहलबाज़ी उनमें देखी, वही सस्ती दिल्लगियां उनकी सुनी, लखनऊ आदि

की बैठकबाजियों और काफ़ी हाउसों की तफ़रीहों की, यद्यपि इनमें न तो उनकी जिन्दादिली पाई न भड़क उठने वाली वह चिनगारी जो भारत के छात्रों में फिर भी है।

'सिम्पोज़ियम' समाप्त हो गया। प्रसादन—एन्टरटेनमेन्ट शुरू हुए। ग्रुपगान, इन्स्ट्रुमेन्टल म्यूज़िक, दो एक सस्ते फिल्मी गाने जिन पर काफी तालियां बजीं, इशारे हुए, वाह-वाह हुई, 'वन्स-मोर' के नारे लगे, गरबा और अन्त में जन-गन-मन। एक भी सही भारतीय संगीत का नाम रखने वाला गाना न हुआ। मैं स्वयं 'क्लासिकल' गान हृदय से बहुत पसन्द नहीं करता पर उसे समझ लेता हूँ, उसकी कद्र करता हूँ और समझता हूँ कि एक सांगीतिक विकास का वह चरम रूप है। इसलिये भारतीय संगीत के नाम पर जहां कुछ होगा निश्चय मैं उसकी वहां अपेक्षा करूंगा। पर वहां ऐसा कुछ न था। और जन-गन-मन की आवाज़ बड़ी धीमी थी क्योंकि स्वर इने-गिने थे, एक ग्रुपमात्र गा रहा था, वह भी एन्टरटेनमेण्ट ही था, और एक चिरकाल से अमरीका में रहने वाले वयोवृद्ध भारतीय सज्जन ने उसके अन्त में ताली तक बजा दी! आश्चर्य है कि राष्ट्रवादिता का इतना दम भरने वाले हम सब अपना राष्ट्रीय गान भी न जानें! विदेश में अनेक अवसरों पर अपना राष्ट्र-गान गाना पड़ता है परन्तु जहां पढ़ा और गँवार सभी विदेशी अपना राष्ट्र गान अच्छे-बुरे स्वर से गा सकता है, हमारा भारतीय मुंह ताकता है। मैं नहीं समझता हमारे विदेशस्थ एम्बैसेडर और कान्सुल जनरल कभी अपना राष्ट्रीय गान मिल कर गाते हैं। मेरा यह दावा है कि हमारे मन्त्रिमण्डल के सदस्य अपना राष्ट्र गान नहीं जानते, अवसरों पर नहीं गा सकते और खुलकर समवेत स्वर में उसे उनका गा सकना तो वीभत्सता का परिचायक है! अस्तु।

खेल-कूद के बाद प्रीति-भोज हुआ—पराठे, आलू का साग और आइसक्रीम जो छात्रों ने ही तैयार किया था। 'बुफे' के रूप में भोज हुआ।

अपनी-अपनी प्लेट लेकर हमने खाया। खड़े-खड़े, कुछ, जिनको जगह मिल सकी बैठ भी गए। वियतनाम के जिस सज्जन ने सिम्पोज़ियम में व्याख्यान दिया था, वे एशिया इन्स्टिट्यूट के प्रोफेसर हैं, आये और मेरे प्रश्न पर मुझे बधाई दी। कहा, दिखावा समाप्त हो गया, अब चलते हैं।

दिखावा ही था, मैं भी चला, जानबूझ कर अकेला और तभी एक किस्सा याद आया। एक मां अपने बच्चे को कहानी द्वारा बहला रही थी। उसने कहा, "बैटा, एक बड़ा सा मकान था। उसमें एक गिलहरी रहती थी। मकान बड़ा था, विशाल। और उसमें अनेक नर-नारी रहते थे, अनेक, लाल-पीले-नीले कपड़े पहनने वाले। वे खेलते थे। गाते थे, नाचते थे। उस घर में एक ओर रुई के अम्बार भी खड़े थे। एक दिन उस घर में आग लगी और घर जल उठा। रुई ने जब आग पकड़ी तो लाल लपटें आसमान चूमने लगीं। फिर जब सारा नगर पानी भर मटके ले-ले दौड़ा तब जाकर कहीं आग बुझी।" और इतना कह कर चुप हो गई। बच्चे ने पूछा—'यह तो बड़ा मज़ेदार किस्सा है, माँ, फिर?' मां ने कहा—'फिर आग बुझ गई।' 'हां, आग तो बुझ गई, फिर हुआ क्या?' बच्चे ने फिर पूछा। 'फिर क्या होता, बस आग बुझ गई।' मां ने झिड़क कर कहा 'अब सो जा!' 'अरे, सो कैसे जाऊँ बिना जाने कि उस गिलहरी का क्या हुआ जिसका यह किस्सा था?' मां टस से मस न हुई और बालक ठुनकता रहा।

मुझे जो यह कहानी याद आई तो मैंने भी अपने को उसी बच्चे की स्थिति में पाया, पर कोई माँ न थी जिससे पूछता उस सिम्पोज़ियम का क्या हुआ—'उस एशिया में शान्ति की समस्या का?' और मैं सड़क पर था, चुपचाप गुनता जा रहा था कि क्या उत्तर दूंगा होरेस ग्रेगरी के उस आशान्वित प्रश्न का जो उस गरिम निःश्वासयुक्त भावोद्रेक में निहित था—'देखें, भारतीय छात्र-संघ शान्ति की दिशा में कैसा कदम उठाता है!'

: ५ :

यह लेक-सक्सेस है

क्यू-गार्डन का टर्मिनस-गावों का एक के बाद एक सिलसिला, फिर दूर तक फैले मैदान और इन मैदानों के बीच लेक-सक्सेस। लेक-सक्सेस जो संयुक्त-राष्ट्र-संघ का हेड क्वार्टर (सदर मुकाम) है।

मैदान और जंगल, जंगल और मैदान फिर फैले कारखानों की कंटीली चहारदीवारी और कारखानों के बाजू में राष्ट्र-संघ का भवन। भवन जो उसका अपना नहीं उसी कारखाने का है जो अनेक प्रकार से उसकी पृष्ठ-भूमि है।

राष्ट्र-संघ, जैसा नाम से ज़ाहिर है, राष्ट्रों का संघ है। राष्ट्रों के इस संघ को लड़ाई ख़तम होते ही पाँच बड़ी शक्तियों ने बनाया। इङ्गलैण्ड और फ्रांस ने, चीन और सोवियत रूस ने, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका

ने। यही पाँचों उसके बुनियादी सदस्य हुए। बुनियादी सदस्यों को कुछ ख़ास हक़ मिले, जैसे संरक्षा समिति में किसी पास हुए प्रस्ताव को 'वीटो' कर देना, यानी उसे कार्य-रूप में परिणत होने से रोक देना।

पिछली लड़ाई चीन में शुरू हुई थी। चीन का उसमें बुनियादी रूप से शामिल होना ज़रूरी था। फ्रांस की परम्परा बड़ी थी और वह पश्चिमी यूरोप में विशेष रूप से आक्रान्त होने वाला सबसे बड़ा राष्ट्र था। रूस ने अपने बलिदानों द्वारा युद्ध के सम्भावित परिणाम को बदल दिया था। इङ्गलैण्ड शक्ति और जनसंख्या न रहते भी सदियों यूरोपीय राजनीति का संचालन कर चुका था और अब उसे अपने साम्राज्य के पतन के बाद जीवित रहने के लिए कूटनीति पर ही निर्भर करना था, इससे उसका वहां होना भी आवश्यक था। फिर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का भी, क्योंकि वह धन-जन दोनों से सम्पन्न था और संसार की राजनीति में अपने कारणों के अतिरिक्त इङ्गलैण्ड के साझीदार या वारिस के रूप में उठ चला था। इनके अतिरिक्त उसमें बीसियों और राष्ट्र शामिल हुए—छोटे से छोटे और बड़े से बड़े जिनका आकार-प्रकार हिन्दुस्तान के एक ज़िले से लेकर आस्ट्रेलिया के से महाद्वीप तक है।

इसी राष्ट्र-संघ का लेक-सक्सेस में यह भवन है जहाँ उसकी अनेक संसदों के अतिरिक्त सुरक्षा समिति भी अपनी बैठकें करती है। बड़ी आशाओं से इस राष्ट्र-संघ का निर्माण हुआ था। विल्सन की लीग आफ नेशन्स की कमज़ोरियों को ध्यान में रखते हुए रूज़वेल्ट ने इस यूनाइटेड नेशन्स की नींव डाली थी। परन्तु अफसोस कि कुछ ही काल बाद इस यूनाइटेड नेशन्स—राष्ट्र-संघ के अमेरिकन गुट्ट—की दुरभिसन्धि स्पष्ट प्रगट हो गई—चीन का मामला पेश था।

चीन का मामला पेश होने का एक विशेष कारण था। डाक्टर सनयात सेन ने अपने राष्ट्रीय आन्दोलन द्वारा पुराने चीनी साम्राज्य

का अन्त कर दिया था। चीनी राजनीति में सनयात सेन के वारिस च्यांग काई शेक हुए जिन्होंने अपने नेता के सारे कार्यों पर स्याही पोत दी। शक्ति संचय के जितने घृणित साधन काम में लाये जाते हैं, सब उसने लाये और रक्तपात से सारे देश में अराजकता फैला दी। शीघ्र माओ के नेतृत्व में जनता उठी और देखते ही देखते प्रान्त-प्रान्त से प्रतिगामी शक्तियों की जड़ उसने उखाड़ फेंकी और शेक की तथाकथित राष्ट्रीय सेना को समुद्र में धकेल दिया। नई शक्ति, नये नारों में बुलन्द हुई और चीन का राजनीतिक तख़्त उसके नेताओं ने उलट कर रखा। ४० करोड़ जनता की आवाज़ एक साथ शक्ति के साथ गूंज उठी। हिन्दुस्तान और इङ्गलैण्ड ने उसकी सत्ता को स्वीकार किया, हिन्दुस्तान ने दिल खोलकर, इङ्गलैण्ड ने बैठते दिल को सहारा देते हुए। एशिया में जो आग लगी थी उसका सबसे पहला और आज़ाद रूप इस प्रकार चीन में प्रकट हुआ। साम्राज्यवाद के भग्नावशेषों को मिट्टी में मिला, उसकी बुनियाद में आज़ाद इन्सानियत की जड़ें डालने वाला यह पहला जनसत्ताक राष्ट्र खड़ा हुआ। पूँजीवादी अमेरिका के आकाश-चुम्बी महल आमूल हिल गये।

अमेरिका ने धन-जन से शेक की सरकार की सहायता की थी। शेक और विशेषकर उसकी पत्नी मादाम शेक में सिवा उसकी चीनी शक्ल के और कुछ भी चीनी न था, सब कुछ अमेरिकन था। उसकी तहज़ीब कपड़े, शिक्षा, विचार, बोलचाल सभी कुछ। शेक अगर रह जाता तो निश्चय चीन अमेरिका का उपनिवेश बन जाता और इस प्रकार १९वीं सदी के पिछले चरण का अंग्रेज़ों का व्यवसाय-साम्राज्य अमेरिका के मिल-मालिकों का होता। यह स्वप्न जो मनहैटन (न्यूयार्क) के अर्थशास्त्रियों ने देखा सर्वथा असम्भव न था। इसी से उन्होंने कल्पनातीत लागत भी उस पूर्वी देश की सम्भावनाओं में लगाई पर चीनी जनता के

सही दृष्टिकोण ने उन सम्भावनाओं का तख़्ता पलट दिया। शेक अपने दल-बल सहित चीन की ज़मीन छोड़ फ़ारमोसा का शरणार्थी हुआ। अमेरिका का स्वप्न टूट गया परन्तु लागत की चोट न भूली और अब यदि वह चीनी राजनीति पर हुकूमत न कर सका तो कम से कम उसने उसे राष्ट्रों की पंक्ति में बैठने न देने की हरचंद कोशिश की। इङ्गलैण्ड ने चीन के नए राष्ट्र को स्वीकार तो कर लिया था, अपना दूतावास भी वहाँ स्थापित कर दिया था, परन्तु यद्यपि परिस्थितियों ने उसे वह संकट स्वीकार करने को मजबूर कर दिया था, संकट आखिर संकट ही था और उसके परिणाम को कम से कम करने का उसने निश्चय कर लिया। उसका पहला रूप यह था कि वह चीन को राष्ट्र-संघ का सदस्य बनाने में सहायक न हुआ, कम से कम उसने उस दिशा में काफ़ी उदासीनता दिखाई। अमेरिका तो दुश्मन था ही, दुश्मन इस माने में कि जब वह चीन को हथिया न सका, अपनी लागत का फ़ायदा न उठा सका, तब उसके स्वाभाविक क्रोध ने बदले की ठानी। पिट्ठू राष्ट्रों के सहयोग से उसने चीन को निरन्तर राष्ट्र-संघ के बाहर रखा। चीन की जन-संख्या मानव-जाति का पांचवाँ हिस्सा है इससे उसका वहाँ न रखना उस संघ के मानव-प्रतिनिधित्व को मिथ्या कर देता है।

वही राष्ट्र-संघ इस लेक-सक्सेस के भवन में क्रियाशील है। क्रियाशील तो वह निश्चय है परन्तु उसके चरण एक ही स्थल पर बार बार पड़ते हैं जिससे उसकी प्रगति नहीं होती और मंज़िल की दूरी जैसी की तैसी बनी हुई है। अमेरिका ने लीग आफ नेशन्स का प्रारम्भ करके भी उसमें सदस्यतः अपना योग नहीं दिया था और अपनी निष्क्रिय उदासीनता द्वारा उसे दफ़नाने में वह सहायक हुआ। आज वह युनाइटेड नेशन्स पर सक्रिय दानवता से टूट पड़ा है और राहु की भांति निरन्तर उसे ग्रसता जा रहा है।

× × × ×

भगवतशरण

संरक्षा समिति की बैठक। यूगोस्लेविया प्रधान है। भारत भी उसका सदस्य है और चीन भी। परन्तु चीन का चीन नहीं, फारमोसा का चीन, और जनरल वू के शब्दों में प्रेसीडेण्ट ट्रूमैन का चीन।

इधर दूसरी पंक्ति के कोने पर नए चीन का प्रतिनिधि जनरल वू बैठा है, उधर सामने की दूसरी पिछली पंक्ति के सिरे पर दक्षिण कोरिया का प्रतिनिधि लिम्ब। संरक्षा समिति ने अमेरिका के प्रस्ताव पर चीन को आक्रमक सिद्ध करने का प्रश्न उठाया है और चीन से जवाब माँगा है। जनरल वू उसी के लिए यहाँ उपस्थित है और लिम्ब भी दक्षिण कोरिया की ओर से।

प्रधान आलेस बेबलर ने आदेश किया, वू और लिम्ब अगली कतार में बैठें, कार्यवाही सुनें और उत्तर दें। वू और लिम्ब दोनों बैठ जाते हैं अगली कतार की अर्ध चन्द्राकार रेखा के सिरों पर। संरक्षा समिति के सामने दूर तक फैली ऊपर उठती हुई विस्तृत दर्शक-भूमि है जिस पर प्रायः सभी राष्ट्रों के हज़ारों दर्शक समिति पर आँख गड़ाये चुप बैठे हैं।

इतने बड़े हाल में जिसके चारों ओर ऊपर गैलरियों में लोग बैठे हैं पत्र प्रतिनिधि दम साधे हुए हैं, अनुवादक अनुवाद कर रहे हैं। जब तब भयानक शान्ति हो आती है। वातावरण नितान्त निस्तब्ध है और आँखें एकटक चीनी जनरल वू पर लगी हैं।

जनरल वू साधारण ऊंचाई का चौड़े कंधों वाला मज़बूत सैनिक, कुछ माँसल परन्तु गठा हुआ। चेहरे पर निर्भीकता, ओजस्विता और ईमानदारी चमक रही है, होंठ बोलने को फड़फड़ा रहे हैं और आँखें जब तब दर्शकों की ओर लहर की भाँति उठकर लौट जाती हैं।

प्रधान का आदेश है—'नये चीन का प्रतिनिधि अब अन्तिम उत्तर दे।'

वू उठता है, कहता है—'अब मुझे कुछ नहीं कहना है, मैं कह चुका और बस अब इतना ही कि जब हमारे आसमान पर हज़ारों बार अमेरिका के बमबाजों और उड़ाकू जहाज़ों के धावे हुए तब स्वाभाविक है कि हमारी सरहदी जनता में वालन्टियर बनकर आक्रमक सेनाओं से नई जीती आज़ादी के खतरे के अन्देशे के कारण लोहा लेने की सहज उत्तेजना फैल जाय। पर इस स्थिति को निश्चय यह राष्ट्र-संघ तब तक नहीं समझ सकता जब तक ट्रूमन का वह चीनी प्रतिनिधि सामने बैठा है।' उसने फ़ारमोसा के प्रतिनिधि की ओर हाथ उठा दिया।

वू बैठ गया। मत द्वारा प्रस्ताव निर्णय की तैयारी हुई। रूस ने भारत की ओर देखा, भारत ने कहा कि उसे अपनी सरकार से अब तक कोई हिदायत नहीं मिली, वह चुप रहेगा। प्रधान ने मत लिये। रूस ने प्रस्ताव के विरोध में मत दिया। एकाध राष्ट्र चुप रह गए; प्रस्ताव पास हो गया। रूस ने उसे अपने विशेषाधिकार से 'वीटो' कर दिया।

× × × ×

यह लेक-सक्सेस के राष्ट्र-संघ का 'लोन्ज' है—लॉबी—बैठने का कमरा। संरक्षा समिति की बैठक अभी समाप्त हुई है, सदस्य इधर-उधर बैठ रहे हैं, आगन्तुक मिलने वालों से मिल रहे हैं, कुछ सुन्दर सजे सोफ़ों पर बैठे हैं, कुछ अकेली-दुकेली कुर्सियों पर। कुछ 'बार' के पास खड़े पेय पी रहे हैं। कुछ में मीटिंग खतम हो जाने के बाद भी अभी लोन्ज में बहस चल रही है, प्रेस प्रतिनिधि उनके चारों ओर मँडरा रहे हैं, अनेकों किसी एक राजनीतिज्ञ को घेरे खड़े हैं। आज के प्रस्ताव पर उनकी प्रतिक्रिया जानने के प्रयत्न कर रहे हैं।

वह सामने राजनीतिज्ञों का एक बड़ा गिरोह बैठा है। सामने अगल-बगल दो विशिष्ट जन बैठे हैं, रुख उनका हमारी ओर है। पर वे दोनों जब-तब एक साथ ही, फिर बारी-बारी पर, स्पष्टतः महत्त्व की बातें अपने

सामने बैठे अनेक व्यक्तियों से कर रहे हैं। दाहिनी ओर बैठा व्यक्ति अपेक्षाकृत ऊँचा है। चेहरा बादामी, बाल लम्बे पीछे उल्टे हुए जिनके बीच से कुछ-कुछ गंजी चाँद रह रह कर चमक जाती है, लम्बी दाढ़ी जिसके काफ़ी बाल सफ़ेद हो चुके हैं, गहरा बादामी सूट और प्रायः स्याह टाई। यह पाकिस्तान का परराष्ट्रमन्त्री और उसके प्रतिनिधियों का प्रधान सर मोहम्मद ज़फ़रुल्ला खाँ है। मसला आज का काश्मीर नहीं, जलता हुआ चीन और कोरिया का है पर बातें काश्मीर की हो रही हैं; निश्चय आगे की दुनियां संभाली जा रही है।

ज़फ़रुल्ला खाँ के बराबर दाहिने ओर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रतिनिधियों का प्रधान और प्रख्यात कूटनीतिज्ञ तथा पाकिस्तान और ज़फ़रुल्ला खाँ का जिगरी दोस्त जान डलेस बैठा है। मोटा, नाटा बगैर गर्दन का। कोताह गर्दन अपने देश के विश्वास में खतरे की चीज़ समझी जाती है। ऐसा आदमी पता नहीं कब क्या कर बैठे, इसका बराबर डर बना रहता है। डलेस की आकृति उसके विचारों के संकीर्ण पेचों को प्रगट करती है। इस समय वह ज़फ़रुल्ला की ताईद में सामने बैठे उन प्रतिनिधियों से बोल रहा है जो अरब आदि देशों से आए हैं। डलेस संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की परराष्ट्रनीति का असामान्य स्तम्भ है। राष्ट्रसंघ के भीतर और इर्द-गिर्द जितनी नीति और अनीति बनती है प्रत्येक में उसका हाथ और एक पक्ष होता है। दाहिने-बायें समय-असमय आगे-पीछे रूस के ऊपर वाक्यतः हमला करना उसका स्वभाव हो गया है। रूस के विरुद्ध बोलने में यदि कोई उससे बाज़ी ले जा सकता है तो केवल एक शख्स—फ़िलीपाइन का जनरल रामूलो। पर खैर वह इस प्रसंग में असंगत है।

खुशी की बात है कि इस गिरोह में अरब लीग का सैक्रेटरी-जनरल अज़्ज़ाम पाशा नहीं। अज़्ज़ाम पाशा यह है दाहिनी ओर पूर्वी-पश्चिमी राजनीतिज्ञों से घिरा, अपने सेक्रेटरी और मिस्री प्रधान प्रतिनिधि के बीच

उन सब से ऊँचा और काफ़ी ऊँचा। ५५ के आसपास की उम्र, जहाँ तहाँ कुछ सफ़ेदी लिए काले बाल, गोरा चेहरा, मिस्र के ख़याल से काफ़ी गोरा और निहायत मेहरबान सूरत, एक रंज का आभास लिए हुए।

वह बोल रहा है, कुछ हल्के-हल्के लोगों से बात कर रहा है। बीच-बीच में टपक कर पूछ लेने वाले प्रेस रिपोर्टरों को उत्तर भी देता जाता है। उसका सेक्रेटरी गिलास भरा पेय काउण्टर से लाता है, अज़्ज़ाम पाशा की ओर बढ़ा देता है। पाशा धीरे से हाथ की पीठ से उसे मना कर देता है। आँखें उसकी बोलते वक्त दब जाती हैं, उनमें मजबूर कर देने की अजब ताकत है और उसके शब्दों में भी जो वह धीमे से ग़जब के इख़लाक़ के साथ बोलता है। ऐसा नहीं कि उन शब्दों में दृढ़ता न हो, उनके पीछे सोची हुई नीति न हो पर कहता वह उन्हें इस बारीकी से है कि उनसे इन्कार करना सुनने वालों को कठिन हो जाता है।

अज़्ज़ाम पाशा ने जनरल वू से एशियाई राष्ट्रों की ओर से लड़ाई बन्द कर शान्ति पर विचार करने की अपील की है और अब आज की ट्रूमन की बुद्धिमत्ता ने उसमें ख़ासी पेंच पैदा कर दी है। उसने एलान किया है कि उसका राष्ट्र राष्ट्र-संघ से बग़ैर पूछे कोरिया के युद्ध में एटम बम के इस्तेमाल पर विचार कर रहा है और कि ऐसा करने का उसे हक़ है। अज़्ज़ाम पाशा की अपील जनरल वू की प्रतिक्रिया से ख़तरे में पड़ गई है और वह अपनी आवाज़ में साथियों से पूछ रहा है, 'यह क्या कर दिया प्रेसिडेन्ट ने?'

यही सवाल वह भी पूछ रहा है, वह धीर-गंभीर, गेहुँए रंग का मँझोले क़द का भारतीय बेनेगल नरसिंह राव। उसके और अज़्ज़ाम पाशा के मेहरबान रुख़ में ज़रा भी अन्तर नहीं, अगर है कुछ तो दोनों की गंभीरता में है। शायद अज़्ज़ाम पाशा स्थिति की विवशता से जितना रंजीदा हो उठा है राव उसके दायित्व से दबा उतना ही गम्भीर। उसकी

आँखों में एक तेज है। गम्भीरता में एक चिन्ता और चेतना में प्रौढ़ता। लेक-सक्सेस के इने-गिने शान्ति रक्षकों में एक वह भी है और उधर की दुनिया में उसने अपनी नीतिज्ञता का परिचय भी खूब दिया है। लोग उसकी दृष्टि के क़ायल हैं।

उधर वह ऊँचा कुछ झल्लाया हुआ सा कौन है, जिसके चारों ओर पत्रकार और प्रतिनिधि खड़े हैं? उसने पत्रकारों और दूसरे कैमरा वालों को अनेक पोज़ दिए हैं पर अब उनके इसरार से वह झल्ला उठा है। फिर भी उसकी आँखों से रहमत बरस रही है, चेहरे से ग़ज़ब की मेहरबानी। सुन्दर तराशे चेहरे पर झल्लाहट के बावजूद भी मुस्कराहट है। उम्र कुछ ज़्यादा नहीं लगती, पर शायद ५५ पार कर चुकी है। यह है नसरुल्ला इन्तज़ाम, ईरानी प्रतिनिधिमण्डल का प्रधान, राष्ट्र-संघ की जनरल असेम्बली का अध्यक्ष और ईरान का अमेरिका में राजदूत। इन्तज़ाम ईरानी है, सस्सानी-ईरानी, सुसंस्कृत मानवता का अभिराम उदाहरण। इख़लाक़ में शायद लेक-सक्सेस के इस बृहत् नीतिज्ञ परिवार में वह अपना सानी नहीं रखता।

वेबलर। यूगोस्लाव प्रतिनिधि-मण्डल का प्रधान, संरक्षा-समिति का इस माह का अध्यक्ष, यूगोस्लाविया का सहकारी परराष्ट्र-सचिव, अमेरिका में उसका राजदूत। राष्ट्र के प्रतिनिधियों में सबसे सुन्दर। बाल पीछे को लौटे हुए नितान्त काले, ललाट उन्नत, नासिका उत्तुङ्ग, चेहरा अंडाकार। युवा प्रायः ४५ वर्ष का परन्तु अपेक्षाकृत तरुण। यूगोस्लाविया के पिछले नात्सी युद्ध में भर-पूर लड़ चुका है और नात्सियों से टक्कर लेता कितनी ही बार जान ख़तरे में डाल चुका है। दक्षिणी स्लावों का वह देश जिनके अध्यवसाय से नात्सी जर्मनी की चोट से स्वतन्त्र हुआ उनमें वेबलर भी है।

वह दूर प्रायः दरवाज़े में खड़ा ग्रेट-ब्रिटेन के प्रतिनिधियों का प्रधान है,

सर ग्लैडविन जेब। जाता-जाता रुक गया था और अब मिलने वालों से बात करता इधर की ओर ही सरका आ रहा है। गम्भीर लम्बी, प्राय: सुन्दर, मृदु मुखाकृति के बावजूद भी चेहरे की रेखाएँ परुष, फलतः दृष्टि कुछ कठोर। गम्भीरता बहुतों को पास फटकने नहीं देती; शब्द नपे-तुले प्रश्नों के उत्तर में निकलते हैं प्राय: हां और ना में और रह-रहकर भ्रू-रेखाएँ संकुचित हो उठती हैं। वह देखो उधर दाहिना कंधा उठा और वह अब बांया भी। क्या कुछ लोगों की तरह उसे भी कंधे उठाने-गिराने की आदत है? पर ना वह तो उत्तर में है, इन्कार और बेबसी का उत्तर, दोनों कंधों को सहसा डाल देना। निश्चय ही ऐसा क्योंकि ठुड्डी भी कुछ आगे को उठ गई है, निचला होंठ जरा आगे दब आया है। यह है सर ग्लैडविन जेब। आक्षेप और आक्रमण को सुनता-सहता भी दृढ़ नकारात्मक उत्तर देता है और उसमें भी कभी अपने अन्तर के भावों को लक्षित नहीं होने देता। डलेस और वारेन आस्टिन के धारा-प्रवाह की अपेक्षा जेब की शब्दावली संक्षिप्त होती है पर उसके अर्थ की व्याप्ति उनसे किसी प्रकार कम नहीं होती। उसकी चुप्पी और संक्षेपवादिता से यदि कोई बाज़ी ले जा सकता है तो वह है केवल विशिन्स्की।

× × ×

इसी लेक-सक्सेस पर और इसकी सभाओं समितियों पर जर्मनी, जापान, इटली और स्पेन तक की नज़र है। जर्मनी अपने ही पाप से नष्ट हो गया है। फ्रेडरिक-नीत्से-बिस्मार्क-विलहेम-हिटलर की ही चोट से वह ध्वस्त हुआ; अपनी ही संहारक नीति उसको निगल गई। चार हिस्सों में बँटा आज वह मुँह के बल पड़ा है, उसके पूर्वी भाग में नई चेतना जगी है, वही चेतना जो हिटलर के सन् ३३ में हावी होने के पहले उठी थी परन्तु जिसे नात्सीवाद की उठती हुई शक्ति ने दबा दिया था। इस नई चेतना से लोहा लेने के लिए फ्रान्स, अमेरिका और इंगलैंड द्वारा शासित उसका

पश्चिमी भाग फिर अस्त्र-शस्त्र धारण करने के स्वप्न देख रहा है, यद्यपि अभी-अभी होने वाले संसार के प्रगतिशील युवकों की रैली ने स्पष्ट कर दिया है कि भविष्य उनका है, पूर्वी जर्मनी का, पश्चिमी जर्मनी का नहीं। फिर भी नाम रूप से स्वतन्त्र कर अंग्रेज़ और अमेरिकन हथकँडे उसे राष्ट्रसंघ में शामिल करने का प्रयत्न करेंगे।

जापान ने पूर्वी एशिया में अपना साम्राज्य स्थापित कर दिया था और उसके आतंक ने बर्मा, आस्ट्रेलिया और इण्डोनेशिया तक को ढक दिया था। फ़िलीपाइन, हवाई और आस्ट्रेलिया तक उससे संत्रस्त थे। वही टूटा जापान आज फिर उठने और राष्ट्र-संघ में शामिल होने की कोशिश कर रहा है। पर साम्राज्य का स्वप्न देखने वाले तोजो का जापान या ट्रूमन की धुरी में पिसने वाला अमेरिका का पुतली जापान नहीं; चीन की नई जागृति से आश्वस्त भविष्य का नया जापान।

इटली। मुसोलिनी का वह इटली जिसने यूगोस्लाविया और ग्रीस पर अपना आतंक जमाया और उसके पहले जिसने अबीसीनिया को रौंद डाला आज अमेरिका के पिट्ठू वामन गासपेरी के हाथ की कठपुतली है। उसके लिए भी एक जगह राष्ट्र-संघ में की जा रही है और कुछ अजब नहीं अगर उसके साथ ही स्पेन भी उसमें दाख़िल कर लिया जाय—स्पेन जिसने इन्सानियत की कोख में छुरा मारा है।

पर वह चीन! चीन जिसने पूरब के क्षितिज से सूरज को उठाकर आसमान की मूर्धा पर चढ़ाया है, जिधर से रोशनी की पहली चमक पश्चिम के राष्ट्रों को मिली है, वह आज राष्ट्रों में अछूत है! वह भला कैसा राष्ट्र-संघ होगा जो उसके स्पर्श से अपने को हेय मानेगा और जिसकी कान्ति उसके सामीप्य से जगमगा न उठेगी!

: ६ :

फ्लशिंग मेडो

लेक सक्सेस की ही भांति फ्लशिंग मेडो भी न्यूयार्क से थोड़ी दूर पर है। उसी की भांति संयुक्त-राष्ट्र-संघ का एक अखाड़ा। यहां राष्ट्र-संघ की जनरल असेम्बली की बैठक होती है साथ ही अनेक उप-समितियों की।

स्टेशन से उतर कर दाहिने हाथ बाहर निकलते ही दूर तक फैले खुले मैदानों में राष्ट्र-संघ की लम्बी-चौड़ी इमारत तार की जालियों से घिरी दूर से ही दीख पड़ती है। कुछ बसें, जिनका काम स्टेशन से संघ-भवन तक मुफ्त दर्शकों और सदस्यों को ले जाना है, खड़ी रहती हैं। दो मिनट में आप राष्ट्रभवन में पहुँचाने वाली निचली सड़क के द्वार पर खड़े हो जाते हैं।

भगवतशरण

यह है फ्लशिंग मेडो का सुन्दर भवन। यद्यपि अब ४२ वीं स्ट्रीट के सिरे पर ईस्ट नदी के किनारे न्यूयार्क में ही ३६ मंजिलों का विशाल उसका अपना भवन खड़ा हो गया है। वहां दफ्तर चले भी गये हैं यद्यपि संघ की बैठकें अभी वहां नहीं होतीं। फ्लशिंग मेडो लेक-सक्सेस से मुझे सुन्दर जान पड़ा, भवन अकेला जहां न बसों की पों-पों है न मिलों की खट् खट्।

आज दूसरी बार यहां आया। पुलिसमैन ने आज बड़े विनय से रोका, पूछा, 'क्या प्रतिनिधि हैं?' उत्तर दिया, 'नहीं', फिर पूछा, 'किससे मिलना है?' प्रेसिडेन्ट का नाम बता दिया। फोन से उसने उनके सेक्रेटरी से कुछ बात की, फिर कहा 'जाइये।'

प्रतिनिधियों का लोन्ज लोगों से भरा है, कुछ प्रतिनिधि हैं, कुछ उनसे मिलने वाले, कुछ पत्रों के रिपोर्टर। आज फ्लशिंग मेडो में बड़ी गर्मा-गर्मी है। चीन का सवाल यहां भी पेश है। चीन का सवाल कोरिया का होता हुआ भी वास्तव में अपना है। उसके दुश्मनों की कमी नहीं पर ये सारे दुश्मन या तो वे हैं जो इन्सानियत के दुश्मन हैं या उन दुश्मनों के हाथ के खिलौने।

जनरल असेम्बली में बड़ी गर्मा-गर्मी हुई, ज़ोरदार व्याख्यान हुए, बहसा-बहसी और एलान, धमकियाँ दी गईं। सोवियत रूस, यूक्रेन, चेकोस्लोवाकिया, पोलैन्ड आदि ने कसकर उचित की स्थापना की, अनुचित का विरोध किया। डलेस ने शुरू से आख़िर तक सोवियत पर छींटे उछाले। मलिक ने उसका ज़ोरदार जवाब दिया। मत लिए गये, जीत स्वाभाविक ही बहुमत की हुई और बहुमत अमेरिका के डालरों का दास है। यहाँ दोनों ओर बाज़ में दर्शक बैठते हैं, पीछे भी और ऊपर पत्रों के रिपोर्टर, व्याख्यानों के अनुवादक, रेडियो वाले आदि। बीच में एक विस्तृत अर्धचन्द्राकार गहराई है जहाँ जनरल असेम्बली के सदस्य बैठते

हैं, ऊँचे प्लैटफ़ार्म की ओर मुखकर जिस पर जनरल असेम्बली का अध्यक्ष और सेक्रेटरी-जनरल बैठते हैं। अध्यक्ष ईरान के नसरुल्ला इन्तज़ाम हैं, सेक्रेटरी-जनरल नार्वे के त्रिग्वे ली।

समय-समय पर अध्यक्ष का फ्रेन्च में दिया अत्यन्त मधुर और धीमा अनुशासन सुन पड़ता है। लोग सभा-स्थल में और दर्शक-वर्ग में भी कुर्सियों से बंधी तार की कनपटी कानों में लगा लेते हैं जो सिर के ऊपर से होकर गुज़रती है। इसका प्रयोग तब होता है जब उस भाषा में वक्ता बोल रहा है जो सुनने वाले की नहीं है या सुनने वाला उसको नहीं जानता। तत्काल अनुवाद होता जाता है और इसके ज़रिये हम अनुवाद सुनते हैं।

सभा-भवन बहुत बड़ा है, हज़ारों दर्शकों की भीड़ बाज़ुओं पर और पीछे बैठी है और बीच में सारे सदस्य-राष्ट्रों के प्रतिनिधि सैकड़ों की तादाद में बैठे हैं।

× × × ×

यह राजनीतिक समिति का कमरा है। बैठक चल रही है। पेचीदे मसले हल किये जा रहे हैं। लोग गुमसुम हैं। यह जो खड़े हैं जनरल रोमुलो हैं। मानवीय सिद्धान्तों पर बोल रहे हैं, इन्सानियत के बिल्कुल खिलाफ पर मानवीय सिद्धान्तों पर। पूरी वक्तृता में इन्होंने केवल अमेरिका और ट्रूमन का यशोगान किया है, किस प्रकार फिलीपीनों को अमेरिका ने स्वराज्य दे दिया, किस प्रकार पढ़ा-लिखा कर सभ्य बनाया और किस प्रकार उनकी गणना आज स्वतन्त्र राष्ट्रों में होने लगी है। यह सब उसी अमेरिका की दया का फल है, गोया उस स्थिति में जहाँ से अमेरिका ने फिलीपीन द्वीपों को उबारा है किसी और ने डाला था।

× × × ×

फ्लशिंग मेडो में लोन्ज दो हैं, एक बाहर दूसरा भीतर। बाहर

वालों में लोग कम हैं, भीतर वाला मेम्बरों से खचाखच भरा है।

यह शरेत् है, नये राष्ट्र इज़रैल का परराष्ट्र-मन्त्री। नाटा, गठा हुआ अमेरिका के धनी यहूदियों का लाडला। इज़रैल के निर्माण में जिन लोगों का हाथ रहा है शरेत् भी उनमें से एक है। राल्फ़ बन्च ने कुछ दिनों पहले उस राष्ट्र का मिस्र और ट्रान्सजार्डन से समझौता कराया था। उस समझौते में इज़रैल का प्रतिनिधि यह शरेत् भी था। शरेत् भी अमेरिका के गुण गाने वालों में से हैं यद्यपि उस राष्ट्र की स्वतन्त्र सत्ता सबसे पहले सोवियत रूस ने स्वीकार की थी।

अमेरिका में विशेषतः दो दल हैं, एक तो चोटी का वह जो वहाँ की राजनीति, समाचार पत्र, आर्थिक योजनाएँ आदि सरकारी तौर पर पूरी तरह अधिकार किये हुए है। उसे कुछ ऐंग्लो-सैक्सन दल कहते हैं। दूसरा वह जो साधारण जनता का है और जिसमें यूरोप की अनेक जातियों का योग है। इस दूसरे दल के प्रतिनिधियों में वे यहूदी हैं जो केवल सम्पन्न ही नहीं कल्पनातीत अमीर भी हैं और आज इज़रैल के नव-निर्माण में धन पानी की तरह बहा रहे हैं। इन्हीं यहूदियों का यह शरेत् प्यारा है। बड़े तपाक से मिलता है यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि उसका खुलकर मिलना बाहर से ही है या भीतर से भी। सदा सर्वदा वह अपने राष्ट्र को ही सामने रखकर बात करता है यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं का भी सुनते हैं वह पोषक है।

जनरल रोमुलो, जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है फ़िलीपीन द्वीप समूह का प्रधान प्रतिनिधि है और अमेरिका में उसका राजदूत भी।

रोमुलो कितना जनरल है कितना प्रतिनिधि यह तो ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता पर इसमें सन्देह नहीं कि वह सौ फ़ी सदी अमेरिकन है। उसकी प्रत्येक भाव-भंगी, प्रत्येक शब्द-स्वर प्रत्येक साँस अमेरिका को सराहती है और उसके प्रति फ़िलीपीन की आत्मा को कृतज्ञ मानती है।

रोमुलो नितान्त नाटा, कसा-बँधा सा, छोटी-दबी आँखों वाला, समतल ललाट और नासिका से बड़ी आसानी से उस बिखरे जल समूह में पहिचाना जा सकता है। उसकी आवाज़ सख्त और तेज़ है, व्याख्यान में शब्दों की मर्दानगी है, मिलने में तीखापन है। सामाजिक जीवन में जिसका उससे सम्बन्ध रहा है वही सही सही उसके स्वभाव को समझ सकता है परन्तु फलशिंग मेडो की इस लॉबी में तो उसका परिचय नितान्त परुष ही प्रतीत होता है।

श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित। भरा फुलका शरीर जो बढ़ती आयु के प्रभाव से अब ढीला पड़ चला है। बाल समय से पहले श्वेत पर अपना राज़ लिए हुए, सुन्दर मुरझाये फूल सा चेहरा, भावभंगी चाल की तरह ही स्वाभाविक तेज़। कृत्रिमता जो अब आदत से स्वभाव बन गई है, सुन्दर वाचालता जिसने न केवल लेक-सक्सेस और फलशिंग मेडो के राष्ट्र प्रतिनिधियों और श्रोताओं पर ही सम्मोहन डाल दिया है बल्कि शालीनता और इखलाक़ ने अमेरिकन जनता पर भी अपना जादू डाला है। भारत की स्वतन्त्रता के पहले अमेरिका में भारतीय आज़ादी के पक्ष में ख़ासा प्रचार-कार्य किया था, दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के मसले पर स्मट्स के दाँत खट्टे कर राष्ट्रसंघ में विजय और व्यक्तिगत ख्याति दोनों कमाई थीं। सुना है अमेरिका की काकटेल पार्टियों में इनकी ख़ासी दिलचस्पी है; पर चूँकि ये सारी उच्च मध्यवर्गीय विशेषताएँ रूस में कोई असर नहीं रखतीं वहाँ की राजदूत रहकर भी मिसेज़ पंडित राजनीतिक क्षेत्र में कुछ प्रगति न कर सकीं और अमेरिका के अनुकूल क्षेत्र में उन्हें लौटना पड़ा। लोन्ज में अनेक प्रतिनिधि उनके दृष्टिपथ को पकड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं, अनेक पत्र प्रतिनिधि उनकी दो बात किसी मसले पर सुन लेने के लालच से इर्दगिर्द मँडरा रहे हैं।

यह बारतोश है, डाक्टर मिलान बारतोश, अन्तर्राष्ट्रीय कानून का

प्रख्यात पंडित और युगोस्लाविया के प्रतिनिधि-मण्डल का सदस्य। ६ फुट से ज़्यादा ऊँचा, उसी औसत से मोटा भी पर निहायत कसा हुआ। फ्रेन्च बोलता है, धीरे-धीरे अंग्रेज़ी बोलने पर समझ लेता है, नहीं समझ पाता तो धीरे से हाथ हिलाकर हँस देता है। उसकी हँसी बड़ी मधुर है, और सदा उसके होठों पर खेलती रहती है। फलस्वरूप आँखें जो किसी प्रकार छोटी नहीं कही जा सकतीं कुछ छिप जाती हैं। ललाट चौड़ा, बाल उलटे हुए; जब चलता है लगता है जैसे हाथी हिलता हुआ चला जा रहा हो। आयु ५५ के लगभग होगी, शायद कुछ कम ही।

दूर से बारतोश की तरह ही मोटा और ऊँचा लगने वाला यह कौन? जाम साहब, नावानगर के महाराज, काफ़ी ऊँचे, मोटे और एक तमाशाई के शब्दों में भद्दे भी। मुँह पर बारतोश की ही भांति मुस्कान खेलती हुई पर चाल में न वैसी फुर्ती न उसकी मौज। नावानगर के जाम साहब अपनी शिष्टता के लिए मशहूर हैं, लेकसक्सेस और फ्लशिंग मेडो को जानने वाले सभी व्यक्ति उनको भी जानते हैं, हिन्दुस्तान में भी राजाओं की परिषद में उन्होंने अच्छी ख्याति पाई थी और राष्ट्रसंघ में तो लोग उन्हें नेकी का स्वरूप ही मानते हैं। जाम साहब महाराजाओं की परम्परा में पैदा हुए, बढ़े और प्रसिद्ध हुए। जीवन की कटुताएँ उन्होंने नहीं जानीं। परिस्थितियों की विषमता ने उन्हें कभी आँसू डालने को विवश न किया और आज जब राजाओं की हस्ती मिट चली है तब वे गई-बीती स्थिति को भी अपने अनुकूल सम्भाल लेने में सफल हुए हैं। हमारे वैदेशिक विभाग को दो प्रकार के लोगों का फ़ख्र हासिल है, एक तो सिविल सर्विस वालों की कार्य-दक्षता का, दूसरे राजाओं की शालीनता का। जाम साहब ने भारतीय प्रतिनिधित्व के अतिरिक्त अपने वैयक्तिक आकर्षण से पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त की है। सर बी० एन० राव को छोड़ भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के यह सब से बड़े स्तम्भ हैं।

ऊँचा ढीले-ढाले बदन वाला कुछ ढीले ही ढाले कपड़े पहिने बाहरी लॉन्ज में यह कौन खड़ा है जिसके पास पत्र प्रतिनिधियों की सब से बड़ी संख्या है, जिसके चारों ओर अत्यन्त उत्सुकता से लोग डोल रहे हैं, दूर ही दूर पर उसके एक-एक शब्द के लिए कान खोले, एक-एक भावभंगी के लिए उस पर आँखें गड़ाये ? वह है सोवियत रूस का वैदेशिक सचिव विशिन्स्की। चेहरा रूखा, बाल बिखरे, अधिकतर ऊँचे फैले ललाट को ढके। रूक्षता से प्रगट है कि उसने जीवन में कटुताएँ काफी झेली हैं परन्तु वह सक्रिय इतना है कि उसे अपने शरीर की ओर उसके आवश्यक प्रसाधनों तक के लिए देखने का अवकाश नहीं। निर्माण के क्षेत्र में न अवकाश है न बनावट; एकमात्र परिश्रम है और उस दिशा में विशिन्स्की अपना सानी नहीं रखता। उसके शब्दों में कोई घुमाव-फिराव नहीं। नीतिज्ञता में कोई दांव-पेच नहीं, कृत्रिम समझौते का अनुशासन उसके स्वभाव में नहीं। वह जानता है केवल सच्चाई, ईमानदारी, कर्तव्य। संसार के दलित राष्ट्रों और दलितवर्गों का वह असाधारण हिमायती है। संरक्षा समिति (सिक्योरिटी कौंसिल) में जब वह बैठता है अपने रूखेपन के बावजूद भी न केवल सारे दर्शकों की बल्कि प्रतिनिधि सदस्यों तक की दृष्टि आकृष्ट कर लेता है। सारी आँखें उसी के तेवरों पर केन्द्रित हो नाचती हैं। अक्सर समिति की बैठकों में जब कभी वह आता है गुटबन्दी के विरुद्ध उसका नकारात्मक प्रतिघात दृढ़ता से आवाज़ों के ऊपर उठता सुन पड़ता है। चुने हुए, इने-गिने खरे शब्द जो प्रस्तावों को छेद-भेद कर रख देते हैं, शब्दों का उनका आवरण हटा उन्हें सर्वथा नंगा कर देते हैं। शोषक राष्ट्रों का शब्दाडम्बर उसके सामने मिनट भर नहीं रुक पाता। भयानक व्यंग्य उन्हें तार-तार कर देता है; यह है विशिन्स्की जो किसी बैठक के लिए प्रायः तेज़ी से चलता चला जा रहा है। रिपोर्टरों को झाड़ता, 'अभी फुरसत नहीं फिर......फिर' कहता।

भगवतशरण

और यह है मलिक—जैकब मलिक—जिसे सोवियत रूस की पूर्वी मध्य एशियाई ज़बान में 'याकूब मालिक' कहते हैं। मलिक विशिन्स्की का सब प्रकार से जवाब है। कपड़ों से, प्रसाधन और चाल-ढाल से वैसा ही चुस्त जैसे दूसरे प्रतिनिधि, सुन्दर राष्ट्रसंघ के प्रतिनिधियों में सबसे सुन्दर व्यक्तियों में से एक, ऊँचा शरीर, वृषभ के से कंधे, चौड़ी छाती, भरा हुआ जिस्म, चलने में जैसे मृगेन्द्र। काले बाल पीछे संवारे हुए, नाक और ठुड्डी दोनों पुष्ट और स्पष्ट कार्य-भार की अधिकाई में भी बराबर मुस्कराता है; पर जब वह बोलने लगता है तब उसका राज़ देखिये, क्या डलेस, क्या सर ग्लैडविन क्या कोई—सब कान खोले उसका धाराप्रवाह बोलना सुनने लगते हैं। वह क्या बोलेगा, संकेत रूप से सब जानते हैं पर वह किन शब्दों में उसे कहेगा इसे सभी सुनना चाहते हैं। स्पष्ट ज़ोरदार वाक्यावली का स्रोत, जब वह बोलता है, फूट पड़ता है और जैसे शब्दों द्वारा विध्वंस-लीला शुरू हो जाती है। विध्वंस-लीला इसलिए कि अमेरिका और उसके पिछ्लग्गू राष्ट्र जो मिथ्या शोषक राजनीति की आड़ में शब्दों के पहाड़ खड़े करते हैं उनको भूमिसात् करने के लिए मलिक के शब्द-वज्रों की निहायत आवश्यकता होती है।

विशिन्स्की के बाद व्यक्तिगत महत्व की दृष्टि से लेक-सक्सेस में मलिक का स्थान पहला है। उसके पास समय का अत्यन्त अभाव है और यद्यपि आप उसे लाबी में एकाध मिनट बात कर सकते हैं, अधिकतर वह व्यस्त है। पत्र-प्रतिनिधियों से घिरा हुआ, यद्यपि उनसे भी वह विरक्त सा ही रहता है, जब तब एकाध शब्द उनकी ओर सरका दिया करता है। मलिक न्यूयार्क में रहता है, विशिन्स्की की अनुपस्थिति में सोवियत प्रतिनिधि मण्डल के प्रधान के रूप में। परन्तु उससे मिलना कठिन है, इसलिए इतना नहीं कि वह व्यस्त है बल्कि इसलिए कि उससे कहीं अधिक संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका के चर उसकी देख-रेख करते रहते हैं। उससे

मिलने वालों में कोई ऐसा नहीं जिसको अमेरिका की पुलीस न जानती हो, फ़ोन पर उससे कही बात का एक शब्द नहीं जिसका रेकार्ड एफ० बी० आई० (F. B. I.) के दफ़्तर में न हो।

और यह है त्रिग्वेली, संयुक्त-राष्ट्र-संघ का सैक्रेटरी-जनरल, विशालकाय, परन्तु, कहते हैं, अत्यन्त सज्जन। युद्ध के आरम्भ में युद्ध रोकने के लिए उसने बड़े प्रयत्न किये। अमेरिका और रूस के उसने कई चक्कर भी लगाए परन्तु अमेरिका की ज़िद ने उसे असफल कर दिया। इतना ही नहीं उसने उसको दाहिने-बांये बदनाम भी करना शुरू कर दिया। उसे रूस का हिमायती और कम्युनिस्ट कहना शुरू कर दिया—जिन शब्दों को अमेरिका गाली के अर्थ में प्रयुक्त करता है। त्रिग्वेली ने कुछ काल तो अमेरिका की उस ज़िद का साहस से सामना किया पर बाद में उसका शिकार हो गया।

: ७ :

पलकें नकली नहीं !

टन्-न्-न्-न् टन् !

'हेलो !'

'मेरी आवाज़ आपने पहचानी ?'

'बदकिस्मती से नहीं ।'

'मैं हूँ लीबमान ।'

'अच्छा !'

'पर क्या आपने पहचाना मुझे ?'

'ऐं—नहीं ! पर क्या कुछ बताने की कृपा करेंगी ?'

'बेटी पार्सन की बैठक याद है, कलाकारों और कवियों वाली ?'

'ओ' जी हाँ, अच्छा, आप लीबमान हैं !'

'जी हाँ, पर देखिए बनावटी इखलाक़ का बर्ताव न करें । मैं पूछती हूँ क्या सचमुच मुझे पहचाना ?'

'आँ...जी ठीक-ठीक नहीं कह सकता ।'

'अच्छा, सुनिए ! आपको याद है कि उस रात आपने किसी से विदा लेते समय कहा था कि निश्चय हम फिर मिलेंगे ?'

'जी हाँ, याद आया ! खूब अच्छी तरह याद है वह; कहा था मैंने ।'

कहा तो सही था पर एक से नहीं शायद पन्द्रह-बीस नर-नारी कलाकारों से उस अवसर पर कहा था और वह निश्चय केवल शिष्टता-वश । अपनी लम्बी यात्रा के प्रसंग में यह शायद ही संभव था कि किसी समारोह विशेष में अचानक मिल जाने वालों से फिर भेंट हो जाय । और यद्यपि न्यूयार्क में मेरा रहना अपेक्षाकृत लम्बा हुआ था फिर भी न मैं आशा करता था कि एक बार मिलने वालों से फिर मिलना होगा और न ही मैं पसन्द करता था, सिवा कुछ के । अभी मैं इन बातों को सोच ही रहा था कि फ़ोन पर नारी की वह महीन आवाज़ फिर सुन पड़ी—

'आपसे एक प्रार्थना है; एक बार मैं मिलना चाहती हूँ, कब और कहाँ मिल सकेंगे ?'

'निश्चय ! स्वागत ! जब आना चाहें कृपया फ़ोन करके पूछ लें जिससे मैं होटल के लोन्ज में आपका इन्तज़ार कर सकूँ ।'

'मैं चाहती थी कि आप चाइल्डस् में मेरे साथ परसों संध्या चाय पी लेते । क्या यह संभव है ?'

'जी हाँ, खूब संभव है, परन्तु आमन्त्रण उलटा है । कृपया पहले मेरे साथ भोजन कर लें तब मैं जहाँ चाहें चाय पीने आ जाऊँगा ।'

'मंजूर है । कब ?'

'देखिए कल मुझे फ़ुरसत नहीं और परसों भी एक लेक्चर है, भला नरसों कैसा रहेगा ?'

'मैं बिलकुल खाली हूँ, आ जाऊँगी। क्या होटल सेविल में?'

'नहीं। मैं आपको हिन्दुस्तानी खाना खिलाना चाहता हूँ। इण्डिया ऐण्ड सीलोन रेस्टोरेंट में सात बजे पधारें, प्रतीक्षा करूँगा।'

'मैं इसे अपनी डायरी में नोट किये लेती हूँ। पर यह बताइये आप मुझे पहिचानेंगे कैसे?'

'एँ...पहिचान नहीं पाऊंगा!'

'फिर? सुनिए तो मैं फ़ोन पर अपनी आकृति का वर्णन कर रही हूँ। नाम मिस लीबमान, पहले कह चुकी हूँ, शरीर ऊंचा, नारी के लिए काफ़ी ऊंचा और भरा हुआ, बाल काले, आंखें काली, काफी लम्बी।'

'आँखें लम्बी!'

'जी हाँ, काफी लम्बी।'

'हमारे हिन्दुस्तान के सौन्दर्यादर्श में आँखों की लम्बाई कानों को छूती है।'

'अच्छा कानों को छूती है! तो मैं समझती हूँ ये आँखें उस आदर्श से कुछ बहुत नीचे नहीं पड़ेंगी।'

'तो आँखें इतनी बड़ी हैं!'

'जी हाँ।'

'और पलकें भी?'

'पलकें भी।'

'और पलकें नकली नहीं?'

'मैं समझती हूँ नकली नहीं, पर मिलने पर आप स्वयं देख लेंगे।'

निर्दिष्ट संध्या। इण्डिया ऐण्ड सीलोन रेस्टोरेंट। अभी कवियित्री और विदुषी मादाम सोबा गोइया के यहाँ से भागा-भाग यहाँ पहुँचा जिससे अतिथि के पहुँचने के पहले यहाँ पहुँच जाऊँ। मिस लीबमान अभी नहीं आईं। सात बज चुके हैं। आती ही होंगी। लबादा और हैट उतार कर

अभी टाँगा ही था कि एक ऊँची भरे बदन की युवती रेस्टोरेंट में दाखिल हुई। रेस्टोरेंट खाली तो न था पर कुछ ही मेजें भरी थीं और उन मेजों पर भाग्यवश कोई भारतीय न था। आगन्तुका को मुझे पहिचानते देर न लगी और चूँकि उनकी घूमती-फिरती दृष्टि मुझ पर ही आकर रुकी मैंने भी उन्हें पहिचान लिया।

कुछ हड़बड़ाया-सा उठा, जब तक वह भी मेज़ तक पहुँच गई और पूछा—'प्रोफेसर उपाध्याय ?'

'मिस लीवमान ?' मैंने उत्तर में पूछा। उन्होंने हाथ पहले ही बढ़ा दिया था जिसे दबाकर मैंने कुर्सी उनकी ओर खींच दी और उनका लबादा उतार लिया।

न जाने क्यों उनका चेहरा कुछ गम्भीर मालूम हुआ और जैसा उनके अगले वक्तव्य से जान पड़ा मेरा चेहरा भी कुछ वैसा ही गम्भीर बन गया था। शायद इस प्रकार की स्थिति पैदा होने पर आदमी कुछ 'सीरियस' हो जाता है, मैं भी हो गया था। पर मेरी यह चेष्टा सर्वथा अनजानी थी।

'आप क्या स्वाभाविक ही इतने गम्भीर रहते हैं ?' उन्होंने पूछा।

मैं कुछ घबड़ा-सा उठा और अपनी चेष्टा मुस्कराकर स्वाभाविक करते हुए उत्तर में बोला—'जी नहीं, मैं गम्भीर बिलकुल नहीं हूँ, बल्कि फ़ोन पर कही आपकी बातों की जांच कर रहा था।

'यानी यह कि पलकें सच्ची हैं या नकली ?'

'जी हां, और यह कि आंखें कानों को छूती हैं या नहीं ?'

'आंखों की बात तो ठीक पर पलकों की सचाई तो उन्हें बगैर खींचे नहीं मालूम हो सकती !'

हम दोनों खिलखिला पड़े। सही, उनको खींचकर देखना मेरी कुव्वत के बाहर था पर ज़ाहिर है कि पलकें नकली न थीं !

भगवतशरण

: ८ :

राल्फ़ बंच

शरीर ताक़तवर, प्रायः साँचे में ढला, चेहरा नितान्त शान्त, हल्की मुस्कुराहट, बात करते-करते मधुर हँसी, पलकें बोझिल, दृष्टि कोमल—राल्फ़ बंच।

राल्फ़ बंच—अमेरिका की नीग्रो जाति का सर्वस्व, लेक-सक्सेस के संयुक्त राष्ट्र संघ के पास ही पार्कवे विलेज के एक साधारण सजे अपार्टमेंट (मकान के कुछ कमरे) में रहता है। घर में पत्नी सुन्दरी रूथ है, एक छः वर्ष का बालक राल्फ़, अठारह वर्ष की कन्या जोन, एक और सोलह वर्ष की जेन।

बंच आज राष्ट्र संघ के ट्रस्टीशिप विभाग का प्रधान अध्यक्ष है। कभी अपनी प्रतिभा और योग्यता के बावजूद भी उसे नीग्रो होने का

राल्फ़ बंच

सामाजिक दण्ड मिला था—उपेक्षा, अपमान, घृणा।

अभी हाल तक उस प्रजातंत्र के नाम पर गर्व करने वाले देश में काले-गोरे का भेद भयंकर था। अधिकार तो अलग, जीवन का साधारण रवैया कठिन था। प्रतारणा, मार, खून। आज भी दक्षिण की रियासतों में नीग्रो होना पाप है। गोरे नागरिकों में उस जाति के लिए न इज़्ज़त है, न स्नेह।

आज भी वहाँ अनेक होटलों में उन्हें रहने को स्थान नहीं मिल सकता, भोजनालयों में बेहरे खाना परसने से इन्कार कर देते हैं, बसों, गाड़ियों में उनके लिए स्थान अलग है और इनमें व्यतिक्रम होते ही मरने मारने की नौबत आ जाती है। उत्तरी रियासतों, न्यूयार्क आदि, में राजनीतिक अधिकार सब को समान हैं परन्तु उनको भोगना इतना आसान नहीं जितना संविधान के आदेशों से जान पड़ता है। इन न्यूयार्क आदि के विशाल नगरों में भी उनके रहने के मुहल्ले अलग हैं, दूर एक ओर, यद्यपि उनकी नित्य बढ़ती जन-संख्या निरन्तर अमेरिकन भद्र-मुहल्लों की ओर सरकती जा रही है जो कुछ गोरे नेताओं के सिर दर्द का कारण बन गई है।

देश की राजधानी स्वयं वाशिंगटन में नीग्रो मुहल्ले तो अलग हैं ही, कुछ मुहल्लों में उनका प्रवेश पसन्द नहीं किया जाता, कई होटलों में उन्हें रहने का स्थान या भोजन नहीं मिलता। मुझे स्वयं आगाह कर दिया गया था कि कुछ विशेष होटलों में न जाऊँ। काले-गोरे का भेद वाशिंगटन में आज भी काफ़ी है। राल्फ़ बंच ने जो सन् ४६ में प्रेसिडेन्ट ट्रूमन का असिस्टेन्ट सेक्रेटरी बनने का आमंत्रण अस्वीकार कर दिया था उसका एक मात्र कारण यही तो था।

बंच कहता भी है—'मैंने वाशिंगटन में अपने प्रवास के दिन काटे थे, आज मैं अपनी आज़ादी राजधानी की सुविधाओं से अधिक पसन्द

करता हूँ।' वाशिंगटन में एक मित्र ने मुझे दो ऐसे क़ब्रगाह दिखाए जिन में से एक गोरों के कुत्तों के लिए था दूसरा नीग्रों के कुत्तों के लिए, यानी कि मरने पर भी यह काले-गोरे का भेद नहीं मिटता।

बंच का नाम आज प्रत्येक अमेरिकन की ज़बान पर है। सच्ची-झूठी अनेक कहानियाँ उसके नाम से संबद्ध हैं। उनकी चर्चा होने पर वह चुपचाप मुस्करा देता है यद्यपि उसका सहज रंजीदा चेहरा बता देता है कि जीवन की अनेक यादें शायद ऐसी हैं जो भुलाई नहीं जा सकतीं।

बंच की किसी ने विशेष मदद न की। वह अपनी ही प्रतिभा और परिश्रम से उठा और अमेरिकन दलित वर्ग का लाडला बन गया। इस्रायल और ट्रैन्सजार्डन के मामले ने उसे बड़ी ख्याति दी। पर वह ख्याति निरंतर के अध्यवसाय और अडिग धीरता ने उसे दी। उसकी सेक्रेटरी ने मुझे बताया कि कठिन से कठिन स्थिति में भी बंच अधीर नहीं होते, दिमाग़ का संतुलन नहीं खोते। मध्य-पूर्व के मामले में जब कभी मस्ले का पेच उन्हें बेताब कर देता था वे कुछ मिनट पिंगपांग खेल आते थे और फिर गुत्थियां सुलझाने लगते थे।

और यह अरबों और यहूदियों का झगड़ा जिसने काउंट बर्नेडोटे का खून कर दिया।

राल्फ़ बंच जब उस मामले को तै करने रोड्स पहुंचा तो एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में उसने कहा—'मैं समिति का कार्य किसी प्रकार स्थगित नहीं करूँगा चाहे मुझे यहाँ दस बरस भी रहना पड़े।'

और यह इस्राइलियों और अरबों की गुत्थी कुछ मामूली न थी। पहले तो दोनों पक्ष एक दूसरे से कावा काटते रहे। सम्मिलित कांफ्रेंस में भी साथ आने को तैयार न थे। बड़ी मुश्किल से बंच ने उन्हें एक साथ एक कमरे में एक छत के नीचे आने और बैठने को राज़ी किया। एक-एक मिनट पर बात बनती-बिगड़ती थी।

पाँच दिनों की निरंतर कहा-सुनी के बाद दोनों ओर के प्रतिनिधि एक साथ बैठने को राज़ी हुए। पहले अरब आए और बैठ गए, फिर इस्रायली आए। उनका स्वागत करना तो दूर रहा अरब अपनी जगह से हिले तक नहीं, उनके तेवर चढ़े रहे। तै था कि इस्रायली प्रधान ट्रैंसजार्डन के प्रधान से हाथ मिलाएगा। पर वहाँ जो पहुँच कर यहूदी प्रधान ने उधर हाथ बढ़ाया तो अरब दूसरी ओर देखने लगा।

अपमानित इस्रायली प्रधान ने उसी वक्त अपने प्रतिनिधियों के साथ लौट जाने का एलान किया। बंच ने उसके कन्धे पकड़कर घनी आत्मीयता से कहा—'हाथ मिलाने का मतलब क्या है, मेरे दोस्त? महज़ एक रस्म, तुम्हारा कार्य तुम्हारी व्यक्तिगत असुविधाओं से कहीं महत्वपूर्ण है, यह अमर्यादा भूल जाओ।'

उधर अरब प्रतिनिधियों के प्रधान से उसने कहा—'सिक्योरिटी काउंसिल (संरक्षण समिति) के सामने इस अधिवेशन की विफलता का कारण तुम्हारा असद्व्यवहार ठहराऊँगा।' वह कुछ झेंपा और उसने बताया कि खुद तो वह हाथ मिलाने को तैयार था पर उनके प्रतिनिधियों ने अपने बहुमत से ऐसा न करने की उसे ताकीद कर दी। पर हाँ यदि सभा से अलग इस्रायली प्रधान मुझ से मिल ले तो मैं ज़रूर हाथ मिलालूँगा।

बंच ने ऐसा ही किया। दोनों प्रधान पहले बाहर मिले फिर अपने प्रतिनिधियों के साथ भीतर, समिति भवन में। परन्तु काम कुछ आसान न था। बात-बात पर तेवर चढ़ जाते, आस्तीनें सरकाली जातीं। लगता, समझौते का कमज़ोर धागा अब टूटा कि अब टूटा।

पर बंच ने हिम्मत न हारी। उसने समझ लिया कि थकान प्रतिनिधियों को चूर कर देगी और उन्हें धीरे-धीरे नरमी बरतने को मजबूर करेगी। उसने अपने सहकारियों को समझा दिया—इनको बेकार न रहने दो। ये चुप न होने पावें। चुप्पी परस्पर असद्भाव पैदा करेगी।

भगवतशरण

वह इस बीच स्वयं दिन-रात काम करता रहता, निरंतर समझौते के किसी न किसी पहलू को सम्हालता रहता, दिन-रात नई सूरतों की फिक्र में लगा रहता। सुबह दस बजे वह अपनी मेज़ पर बैठता। आधी रात होते उसके सहकारी एक-एक कर निद्रा के आहार होने लगते, थकान से चूर खाटों की शरण लेते, बंच एक बजे उठकर बिलियर्ड का एक खेल खेलता और दो बजे फिर अपनी मेज़ पर आ धमकता।

मेहनत और थकान ने दोनों पक्षों की बेरुखी कुछ नरम करदी। पूरब पश्चिम की सरहद पर मामला रुका था। बंच निरंतर स्थिति सम्हालता जा रहा था। दोनों पक्ष पेंच पर पेंच डाले जा रहे थे। बंच सुबह दस बजे युद्ध का सा प्रण कर जम कर बैठा। उसने स्वयं न खाया न किसी को खाने दिया। बीस घंटे लगातार अपने स्थान पर जमा रहा।

पहले मिस्री प्रतिनिधि आए चले गये, इस्रायली आए चले गये, फिर मिस्री आए। ग़रज़ कि सारा दिन सारी रात इसी कशमकश में बीती तब कहीं जाकर दूसरे दिन सुबह ६ बजे आसमान की लाली फटते बंच विजयी हुआ। समझौता हो गया।

यह समझौता जिसके लिये राष्ट्र संघ के पिछले प्रतिनिधि को अपनी जान से हाथ धोने पड़े थे, स्वयं बंच की एक सूझ का नतीजा था। मिस्रियों ने एलान कर दिया कि नक़शे पर किसी लकीर का खींचा जाना वे स्वीकार नहीं करेंगे, उससे उनकी बड़ी हेठी होगी, लगेगा, वे युद्ध में हार गये।

बंच ने उन्हें वहीं पकड़ा, वहीं पैर अड़ा दिए। 'ठीक न मैं नक्शे पर कोई चिह्न करूँगा न कहीं कोई लकीर खींचूँगा।' उसने एक सड़क का नाम लिया, कहा इसके उस पार मिस्र इस पार इस्रायल। बात जँच गई, समझौता हो गया।

एल आउजा के गाँव वाले सरहद ने मामले में बड़ा पेंच डाला। बंच

ने उसे नीति से सम्हाला। दोनों पक्ष उसे हथियाने पर आमादा थे। कोई तिल भर पीछे सरकने को तैयार न था। बंच चाहता था कि वह दायरा निःसैन्य कर दिया जाय, दोनों के अधिकार से स्वतंत्र। पर वह जानता था कि यदि वह अपनी इस योजना को खोल कर रखेगा तब निश्चय वह हारेगा। इससे उसने एक चाल चलना तै किया। वह चाल यह थी।

उसने एक 'डमी' (मिथ्या— आभास मात्र) योजना पहले दोनों पक्षों के सामने रखी। उसने कहा कि यह दायरा निष्पक्ष करार दे दिया जाय और इस पर अधिकार राष्ट्र संघ का मान लिया जाए। बस फिर क्या था, आग सी भड़क उठी। दोनों पक्षों ने इसे ठुकरा दिया। तेवर चढ़ गये, आस्तीनें उठने लगीं, आवाज़ें बुलन्द हो चलीं। कसमें, धमकियाँ, असंबद्ध तर्क चलने लगे।

बंच चुपचाप गतिविधि देखने लगा। कभी कुछ भी हो सकता था। घंटों की सरगर्मी ने बोलने वालों में कुछ थकान पैदा की और बंच ने अपनी 'डमी' योजना हटा ली। उसकी जगह उसने उसे रखा जो महीनों पहले लेक-सक्सेस में ही दोनों के हक में उसने मुनासिब समझा था, वही एल आउजा को निःसैन्य कर स्वतंत्र कर देने की योजना। चित्ती सही बैठी। दोनों पक्ष जैसे उस पर टूट पड़े। सालों की गुत्थी सुलझ गई।

'हिन्दुस्तान के बटवारे का मामला अगर आप के हाथ होता?' मैंने एक दिन बंच से पूछा।

'नहीं जानता क्या होता।' नरम हँसती आवाज़ में बंच ने कहा।

'आपने क्या बुनियादी झगड़ों का हाल पढ़ा था?'

'हाँ, पर जो कुछ इधर के पत्रों में छपता था उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता था और एक या दूसरे पक्ष की बात कहने वाले व्यक्ति स्वयं अपने पूर्वाग्रहों से बरी न थे।'

'अच्छा, यदि कश्मीर के संबंध में आप को निर्णय लेना होता ?'

'नहीं कह सकता, मैं क्या करता ।' हँसते हुए बंच ने उत्तर दिया ।

बंच का नैतिक स्तर अत्यन्त ऊँचा है । जो दलित जातियों में जन्म लेता है उसकी साधारण नैतिकता बढ़ जाती है । सही है कि अनेक बार वह अपने आकाओं की घृणित मनोवृत्ति से प्रस्तुत प्रतिक्रियाओं का भी शिकार हो जाता है, और क्रोध तथा घृणा में वह तथ्य नहीं दीख पाता परन्तु साधारणतः उसका दृष्टिकोण ईमानदार और सही होता है ।

असुविधा, वर्णभेद, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषमता जहाँ झेलने वालों में क्षोभ उत्पन्न करती हैं वहाँ वे उन्हें भुक्तभोगी की दृष्टि भी देती हैं । साधारणतः वह उन प्रवृत्तियों के प्रतिकार में लड़ता है जो उनका शिकार रहा है और अनुकूल स्थिति उत्पन्न होने पर वह अपने दायित्व को पंकिल होने से बचाता है । शुद्ध मानवता के वह अपेक्षाकृत सन्निकट है ।

बंच ने दलित जीवन की वे सारी कटुताएं जानी और झेली हैं जिनके विरुद्ध आज भी वह लड़ रहा है । न्यूयार्क ने उसे खुली मोटर में स्वागत का सम्मान दिया पर उसे अपनी काली जाति की अद्यावधि असुविधाएँ आज भी याद हैं । आज भी उसका सहज दयालु चेहरा उनकी याद से सहसा रंजीदा हो जाता है ।

: ९ :

गिरजे की साँझ

भूलता हूँ उस गिरजे का नाम जिसका लम्बा-चौड़ा हाल अक्सर वक्ताओं के व्याख्यान से गूँजा करता है। दक्षिण अफ्रीका के एक जाने हुए राजनीतिज्ञ शाम को वहां बोलने वाले थे। वैसे तो दो-तीन दिनों पहले ही पता चल गया था कि दक्षिण अफ्रीका के एक महान् वक्ता जो कभी जनरल स्मट्स के सहकारी थे और अब मलन के हैं अपने देश की वर्तमान राजनीति पर बोलने वाले हैं, परन्तु आज सुबह पर्ल बक ने फ़ोन पर याद दिलाया कि शाम को वहां चलना होगा। मैंने उन्हें कह दिया कि समय पर पहुँच जाऊँगा। उन्होंने सुझाया कि वहाँ केवल पहुँचने से ही काम न बनेगा, बोलना भी होगा क्योंकि मलन का यह सहकारी डिप्लोमेट अपने देश के हिन्दुस्तानियों के सम्बन्ध में ज़रूर बोलेगा।

बात सही है। इधर कुछ दिनों से उन सारे देशों का जिन से हिन्दुस्तान को शिकायत रही है उसके विरुद्ध ज़ोरदार प्रोपेगैण्डा होता रहा है और इंग्लैण्ड खुशी से उसे देखता सुनता रहा है। उसमें अपना लुका-छिपा योग देता रहा है। सो मैंने समझ लिया कि शाम को निश्चय बोलना पड़ेगा क्योंकि यह मुमकिन नहीं कि डिप्लोमैट मलन की नीति का समर्थन न करे और उसका समर्थन न केवल भारतीयता का बल्कि मानव जाति का अपमान था।

शाम को गिरजा-घर पहुँचा। राह में ही कुछ हिन्दुस्तानी भी मिल गये थे। हाल नर-नारियों से खचाखच भरा था विशेषकर अमेरिकनों और नीग्रो नागरिकों से। अच्छी तादाद में भारतीय और दक्षिण अफ्रीकन भी थे। पर्ल बक आगे बैठी थीं। मुझे हाल में घुसते उन्होंने देखा नहीं। मैं पीछे की एक खाली कुर्सी पर जा बैठा। कुछ देर बाद उनकी सेक्रेटरी ने मुझ से कहा, 'आपको मिसेज़ वाल्श बुला रही हैं।' पर्ल बक रिचर्ड वाल्श की पत्नी हैं।

'छुपके क्यों बैठ गए ? चलो उधर डायस पर,' उन्होंने कहा।

मैं कुछ पशोपेश में पड़ा खड़ा एक बार डायस दूसरी बार उनकी ओर देख अभी कुछ कहने की तैयारी में ही था कि उन्होंने बाँह पकड़ कर डायस पर सभानेत्री की बगल में बैठा ही दिया।

डिप्लोमैट जाना हुआ व्यक्ति मालूम पड़ा क्योंकि अनेक प्रतिष्ठित लोग सभा की कार्रवाई आरम्भ होने के पहले उससे आ-आकर मिले। उसकी भावभंगी भी आश्वस्त अहंकार से बोझिल थी। जब कभी भंवें उठाकर वह इधर-उधर लोगों पर डालता, लगता जैसे बड़ी कृपा कर रहा हो। प्रायः एक घण्टा वह बोला। पहले पन्द्रह मिनट में अपने देश और अमेरिका के सम्बन्ध पर अपने विचार प्रकट कर चुकने के बाद उसने बाकी ४५ मिनट मलन की नीति के अनुमोदन और प्रवासी भारतीयों की

प्रतारणा में लगाए। प्रश्न होने लगे और उसने उत्तर भी दिए। अफ्रीकन अंग्रेज़ आश्वस्त थे परन्तु नीग्रो भारतीयों की ओर हमदर्दी से देख रहे थे। वक्ता ने और बातों के बीच कहा था कि हमारा दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के प्रति व्यवहार कम से कम उस व्यवहार से कहीं मृदु, मानवीय और नीतियुक्त है जो भारतीय स्वयं अपने देश के अछूतों के प्रति करते हैं। बार-बार यह वक्तव्य मेरे हृदय में घुमड़-घुमड़ उठ रहा था। पर्लबक ने कहा, 'कुछ कहो।' मैं जानता था कि एक व्याख्यान के बाद दूसरा व्याख्यान नहीं होता पर प्रश्न किया जा सकता है और उस प्रश्न के दौरान में भी कुछ बातें स्पष्ट की जा सकती हैं।

'क्या वहाँ के भारतीयों को स्थानीय पार्लमेन्ट की सदस्यता के लिए खड़े होने अथवा उम्मेदवारों को गोरों की ही भाँति समान रूप से वोट देने का अधिकार है?' मैंने पूछा। 'नहीं,' उत्तर मिला।

'क्या यह सम्भव है कि दूर के भविष्य तक में कोई भारतीय दक्षिण अफ्रीका में प्रधान मन्त्री चुना जा कर अपना मन्त्रि-मंडल बना सके?'

'नहीं'।

'अब मैं अपने श्रोताओं से पूछता हूँ कि क्या इस देश में राल्फ बन्च के से सम्माननीय नीग्रो को आज या दूर के भविष्य में भी प्रेसिडेन्ट अथवा सेक्रेटरी एचेसन् बनने का अवसर मिल सकता है?'

नीग्रो श्रोताओं की आवाज़ हाल में गूंज उठी—'नहीं।'

फिर मैंने कहा, 'तब आप सुनें कि हमारे देश में अछूत विद्यार्थी हैं, अध्यापक हैं, डाक्टर और वकील हैं, धारा-सभाओं के सदस्य और प्रादेशिक मन्त्रिमण्डलों के सदस्य हैं और अनुपात के सर्वथा प्रतिकूल केन्द्रीय सरकार के मन्त्रिमण्डल में उनकी संख्या दो है। मनु और याज्ञवल्क्य की, हमें आज बड़ी शर्म है, यद्यपि उनके विधानों को भारतीय न्यायालयों ने अपनी टिप्पणियों से सर्वथा बदल दिया है, परन्तु भारत ने

इस दिशा में अनुपम प्रगति की है क्योंकि कन्स्टिटुएन्ट एसेम्बली की जिस संविधान-समिति ने स्वतन्त्र भारत को उसका संविधान दिया है उस का प्रधान एक अछूत था—डाक्टर अम्बेडकर। यह कुछ साधारण व्यंग्य नहीं कि जिस मनु और याज्ञवल्क्य ने अछूतों को नगण्य बनाया उन्हीं की सन्तान को उन अछूतों के एक वंशज ने आज का संविधान दिया।'

इसका श्रोताओं पर गहरा प्रभाव पड़ा। भारतीयों के संतोष की तो कोई बात ही न थी। नीग्रो श्रोताओं ने भी अत्यन्त आत्मीयता का प्रदर्शन किया। राल्फ बन्च के से जगन्मान्य नेता के होते भी जिन्हें अपने अधि-कारों के क्षेत्र में कटु से कटु फल चखने पड़े हों वे निश्चय उस स्थिति के प्रति हमदर्द होंगे जहाँ दलितवर्ग का नेता संविधान का प्रमुख निर्माता हो।

वक्ता महोदय को जिस स्थिति का सामना करना पड़ा वह, कहना न होगा, कठिन थी। मुझे स्वयं उनसे काफी सहानुभूति हुई और मैंने उनके दृष्टिकोण के साथ व्यक्तिगत सहानुभूति भी दिखाई। वास्तव में प्रायः हर सप्ताह इस प्रकार की अभारतीय योजनाएं विदेशों में इस देश के दुश्मनों द्वारा की जा रही हैं, जहाँ शत्रुओं द्वारा प्रचार किया जा रहा है, विशेषकर अमेरिका में। शोचनीय बात तो यह है कि इसके प्रतिकार के लिए हमारी कोई प्रतियोजना नहीं है। हमारा वैदेशिक विभाग अपने दूतावासों की सक्रियता से इतना सन्तुष्ट है कि वह उस दिशा में किसी अन्य प्रयत्न की आवश्यकता नहीं समझता। काश्मीर आदि के सम्बन्ध में तो निरन्तर प्रतिकूल प्रचार विदेशों में किया जा रहा है और हमारे दूतावासों को अपनी काकटेल पार्टियों से ही फुरसत नहीं। उनका अधिकार भी विशेषतः उन सिविल सर्विस के सदस्यों और राजाओं तथा उनके कुमारों के हाथ में चला जा रहा है जिनका पिछले स्वतन्त्रता संग्राम में सहयोग तो दूर रहा जिन्हें उसके लड़ाकों पर गोलियाँ चलाते कभी किसी प्रकार की हिचकिचाहट न हुई।

: १० :

न्यूयार्क की हरिजन कालोनी—हारलेम

मनहैटेन न्यूयार्क का अन्तरंग है। न्यूयार्क स्वयं पांच भागों में बंटा है जिनसे मनहैटेन को हारलेम, हडसन, ईस्ट रीवर आदि नदियाँ अलग करती हैं। मनहैटेन के उत्तर में हारलेम है, तीन लाख हबशियों (नीग्रो जाति) की बस्ती।

न्यूयार्क संसार का सबसे शक्तिमान, सबसे धनी, सबसे विशाल नगर है। अमेरिका के संयुक्त-राष्ट्र का न्यूयार्क सांस्कृतिक और आर्थिक केन्द्र है और मनहैटेन उसका हृदय, हारलेम उसी मनहैटेन का उत्तरी प्रसार है, उससे लगा हुआ पर उससे कितना दूर!

मनहैटेन की जन्मजात आबादी इतनी सार्वभौम है—उसमें इटा-लियन, जर्मन, स्पेन, अंग्रेज़, फ्रान्सीसी सभी हैं—कि कुछ लोगों को उसे अमेरिका कहने में संकोच होता है। परन्तु इस छोटे मनहैटेन में, अकेले इस न्यूयार्क के हृदय में, जितने पाप, जितने घृणित अपराध होते हैं उतने और कहीं नहीं होते। सारा अमेरिका एक ओर, यह न्यूयार्क का मनहैटेन एक ओर। क्यों?

क्योंकि उसके साथ उसका लगा हुआ प्रसार हारलेम है, नीग्रो निवा-सियों का हारलेम, सभ्यता के सफेद हृदय में बैठी घृणित अस्पृश्य काली हबशी-जाति का हारलेम जहां उसके बाल-अपराधों की संख्या ५३% से कहीं अधिक है!

मनहैटेन के आकाश-चुम्बी भवनों में बीस-लाख प्राणी बसे हैं। 'ज़िन्दगी, आज़ादी और आनन्द के इन बीस-लाख खोजियों' में से सत्रह लाख का शुमार उस देश की सरकारी पोथियों में 'गोरी जाति' में हुआ है। इसका अर्थ यह है कि शिक्षा. दवादारू, नौकरी, मकानादि के सम्बन्ध में इनके अधिकार संरक्षित हैं, औरों की अपेक्षा पूर्व सम्पादित। ये 'और' कौन हैं?

ये 'और' हैं बीस लाख में से शेष तीन लाख नीग्रो जाति के अभागे जिन्हें इसी मनहैटेन के उत्तरी प्रसार हारलेम में रहना होता है। सरकारी रजिस्टरों में इन्हें प्रगटतः 'नीग्रो-जाति' लिखा है, इनके शरीर के रंग से इनकी व्याख्या की गई है, होठों की बनावट, नथनों की शक्ल, घुँघराले बालों के चढ़ाव की मात्रा द्वारा इन्हें मानव-जाति की हीनतम श्रेणियों में रखा गया है। साधारणतः इन्हें व्यापार, सरकारी नौकरियों आदि से, वर्ग तथा जाति के उसूलों पर, अद्भुत पेचों द्वारा वंचित रखा गया है। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका की आचार-साधना और सांस्कृतिक परम्परा का उस वस्तुस्थिति को सक्रिय सहयोग प्राप्त है। कुछ आश्चर्य नहीं जो नीग्रो-

जाति के मेधावी नेता रल्फबंच ने अचेसन के दिये पदाधिकार को अस्वीकार कर दिया है।

ये तीन लाख काले नीग्रो मनहैटेन के सत्रह लाख सफेद निवासियों के पास ही पर उनकी सामाजिकता से कोसों दूर रहते हैं, उनके सभ्य व्यापार से दूर, आचार-व्यवहार से दूर। क्या आश्चर्य यदि इस छोटी जन-संख्या के बच्चे सारे मनहैटेन के बाल्य-अपराधों को ५३ फीसदी चरितार्थ करते हों। आखिर तीन लाख निवासियों के बच्चे घृणित अपराधों की संख्या में सत्रह लाख सभ्यों के बच्चों से कैसे बाज़ी मार ले जाते हैं? हारलेम के उस नरक का जीवन किस प्रकार का है?

अमेरिका की 'श्वेत प्रभुता' ने इस प्रश्न का उत्तर बड़ी आसानी से दिया है। इन उत्तरों ने उसकी एक अपनी 'आइडियालोजी' तैयार कर ली है। "नीग्रोजाति नितान्त सुखान्वेषी है, सर्वथा कामुकी। गोरी जातियों की अपेक्षा विकास की दिशा में वह बहुत पीछे है, अत्यन्त हेय, पशुवत्, वन्य। प्रमादी होने से उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति अपराधों की ओर है, दुराचार की ओर। वह अनुत्तरदायी जाति किसी प्रकार कुछ सीख नहीं सकती।" अमेरिका के लाखों-करोड़ों नागरिकों ने इतनी बार इन शब्दों को दुहराया है कि ये उनके राष्ट्रीय विश्वास के अङ्ग बन गये हैं।

पर वास्तविक उत्तर और है। अमेरिका की गोरी जाति की संकीर्णता में छिपा अमेरिका के साधारण गोरे नागरिक का यह समझ पाना कठिन है कि भूख, आवास की असुविधा, शिक्षा का अभाव किस मात्रा में मनुष्य के शरीर और आत्मा को नीच और घृणास्पद बना सकते हैं। महत्वाकांक्षा से विरहित, समाज में 'प्रतारित', संस्कृति और संस्कारों से दूर, जातिगत घृणा के शिकार नीग्रो बालक का व्यक्तित्व क्या रूप धारण करेगा? उसका नैतिक आचरण, उसके चरित्र का गठन भला वर्तमान से

भिन्न क्योंकर हो सकता है ?

हारलेम स्वयं उसका उदाहरण है, उस घृणित वातावरण का पोषक जिसमें पाप पलता है, अपराध राज करता है। हारलेम में रहने वाले हबशियों की बस्ती का दृश्य भयानक है। उसके कुछ भागों की आबादी तो संसार में सबसे घनी है। हारलेम की तीन लाख जनता निहायत कम तनख्वाह में छोटे से छोटा काम करती है, करने को मजबूर है।

हारलेम के अधिकतर नीग्रो दक्षिण के भगोड़े हैं, उन घृणित मालिकों से भागे हुए जो नृशंसता में वन्य जन्तुओं से भी बढ़े-चढ़े हैं, हिंस्रों से भी खूँख़ार। उस दक्षिण में जातीय संकीर्णता के जो उदाहरण उपलब्ध हैं उनका सानी आज धरातल पर नहीं। कानून शिक्षा, सामाजिक व्यवहार, राजनीतिक अधिकार कोई क्षेत्र नहीं जिसमें अमेरिका के दक्षिणी स्टेट मनुष्य-मनुष्य में भेद न डालते हों।

हारलेम के अधिकतर नीग्रो ग़ुलाम हबशियों की संतान हैं, दरिद्रता उनकी सनातन संपत्ति है। जिन बुनियादी आदतों के वशीभूत हो हारलेम का नीग्रो जीवन में आचरण करता है मनहैटेन का सभ्य गोरा उन्हें समझ नहीं सकता, क्योंकि उन्हें वह देख नहीं पाता, देखना नहीं चाहता।

दोनों के जीवन में बुनियादी फ़र्क है, दोनों के रहन-सहन, विशेषतः कौटुम्बिक संगठन में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। अधिकतर नीग्रो माता ही घर की स्वामिनी है; बच्चों की जननी, रक्षिका। इससे पुश्तों कभी नीग्रो घराना आवश्यकताओं से रहित न हो सका। उसकी कभी कोई नियत आय न हुई, गृह की नींव नहीं जम सकी। इससे कुटुम्ब अथवा गृह से बांधने वाले सारे बन्धनों का नीग्रो बालक के जीवन में अभाव होता है। यही प्रभाव उसके भावी जीवन को सर्वथा नीरस और उद्देश्यरहित कर देता है।

कारण यह है कि शिक्षा के अभाव में आर्थिक अभाव होगा, आर्थिक अभाव में कुटुम्ब बिखर जाएगा, भाई बहिन अपनी-अपनी राह लेंगे। बिखरे परिवार के बच्चे मान्य आचारों के अभाव में सामाजिक अपराध करने पर मजबूर होंगे। इस प्रवृत्ति में कहीं जातीय विशेषता या जातीयता कारण नहीं। यह परिस्थिति नितान्त सामाजिक है। पैतृक से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। बिखरे परिवारों के समाज विरोधी परिस्थितियों में बढ़ने वाले बालक कालान्तर में पिता बनेंगे। उनके बच्चे अपने पिताओं की ही भांति अपराधबहुल घरों में उस परम्परा को जीवित रखेंगे जो उन्हें पैतृक में मिली हैं और जो अपनी संतान की दाय में वे छोड़ जाएंगे। पुश्तों यह परम्परा हारलेम में चलती रही है, उस कृत्रिम भौगोलिक कारा हारलेम में जिसके क़िले की दीवारें अमरीकी मान्यताओं और नैतिक आचारों ने परम्परया सुदृढ़ की हैं।

उस प्रकृति का विकास क्योंकर होता है?

हारलेम की नीग्रो तरुणी अवकाश का सुख भोगने पास के किसी नगर में जाती है। दक्षिण की वह शरणार्थी है और उसका परिवार कब का बिखर चुका है। मान लीजिए वह एक रात नाच के लिए जाती है, एक साथी चुन लेती है, पीती-पिलाती है, सुध-बुध खो देती है। नहीं जानती है कि आनन्द का उन्माद अंकुरित हो चुका है। हारलेम काम पर लौट आती है। जब उसे अपनी स्थिति का भान होता है अपने भावी शिशु के पिता को वह खोजती है। उसके अभाव में, विकृत मनःस्थिति में, वह पुत्र-प्रसव करती है, साधारणतः स्वस्थ स्वाभाविक नीग्रो पुत्र।

कुटुम्बियों के अभाव में वह किसी संस्था में दाखिल होती है, बच्चा अनाथालय में भेज दिया जाता है, वहाँ वह ६ महीने रखा जाता है। वहाँ से वह ६ वर्ष की आयु तक अन्यत्र रखा जाता है जहाँ तथा-कथित

माता-पिता का उसे कृत्रिम स्नेह मिलता है। उनको वह प्रकृत माता-पिता मानता है। उसका जीवन प्रायः स्वाभाविक है।

अब छठे साल जब न्यूयार्क के अफ़सर उसे एक अन्य मातृ-गृह में भेजना चाहते हैं तब कठिनाई उपस्थित होती है। बालक समझ नहीं पाता क्यों वह माता-पिता से अलग किया जा रहा है। वह झल्लाता है। इस पर उसे बता दिया जाता है कि वे उसके माता-पिता नहीं हैं। अब वह अपने विषय में तथ्य जानना चाहता है। परन्तु जब उसे माँ का व्यापार बताया जाता है उसका बाल मस्तिष्क उसे समझ नहीं पाता। वह जाने से इन्कार करता है पर उसे जाना पड़ता है। उसका अद्यावधि प्रकृत कुटुम्ब उसे छोड़ देता है। वह भी उस घर को त्याग देता है।

अब उसके जीवन में एक नया अध्याय खुलता है। नई माँ को वह स्वीकार नहीं करता। वह नहीं जानता कब तक उसे वहाँ रहना होगा। परिस्थितियों के प्रति क्रमिक अविश्वास उसे होने लगता है। उसका कोई क्षण अपना नहीं जब अप्रत्याशित का डर न हो। कभी कुछ भी हो सकता है। उसे भय घेर लेता है। स्कूल में वह कुछ पढ़ नहीं पाता। उसका मन घबड़ाया उच्चटा-सा रहता है। उसके अध्यापक उसे दुत्कारने लगते हैं और शीघ्र सारा स्कूल उसकी ओर विपरीत आचरण का आरम्भ करता है। वह समस्या-बालक बन जाता है।

स्कूल का उसके प्रति अव्यवहार उसे अन्त में इतना असह्य हो जाता है कि वह एक दिन बाहर भाग जाता है और पेशेवर अपराधी का जीवन आरम्भ कर देता है।

इन अपराधों में विशेष चोरी है और उसके लिए न्यूयार्क में, मनहैटन और ब्रूकलिन में अवसर कम नहीं। बालक सिनेमा-गृहों में काउण्टर के पास चुपचाप खड़ा हो जाता है, टिकट खरीदने वाले ने पैसे

काउण्टर पर रखे । बालक पास ही खड़ा तिरछी नज़रों से देख रहा है, सहसा बाज़ की तरह टूट पड़ता है और पैसे लेकर चम्पत हो जाता है। 'फ़ाइम-ऐण्ड-डाइम' में चोरी करने के उसे विशेषतः अवसर मिलते हैं और उसका पेट भरता जाता है। सोने के लिए उसे शरण की ज़रूरत नहीं, सबवे में सैंकड़ों-हज़ारों सोते हैं, वह भी सो रहता है। पर पेशेवर चोरी की भी एक सीमा और अवधि होती है। पुलीस, अध्यापक और स्कूल की ओर से खोजने वालों से उसका पीछा कब छूट सकता है। वह पकड़ा जाता है और कचहरी में हाज़िर किया जाता है। थका, घबराया, अभागा बालक मजिस्ट्रेट के सामने खड़ा है। उसकी ज़िन्दगी ने अब तक अच्छा कुछ भी नहीं जाना, वह निरन्तर बरबाद होती रही और अब जो कुछ बाकी है वह भी उस जेल में पूरा हो जायेगा जहाँ उसके अपराध पर विचार करने वाला गोरा मजिस्ट्रेट उसे भेज देता है।

एक दूसरा उदाहरण—

बालक के माता-पिता अविवाहित हैं। दक्षिण के खेतों से आये हैं, उन खेतों से जहाँ सदियों उन्होंने और उनके पूर्वजों ने केवल खुराक और तन ढकने के वस्त्रों पर गुज़र किया है, जहाँ वे कभी इन्सान नहीं समझे गये, और जहाँ शायद 'कालों' में शादी अनजानी सी रही है। उत्तर की ओर वे आज़ादी और अच्छे जीवन की खोज में चले आये हैं। पर उत्तर की आज़ादी में वह हारलेम ही है जहाँ उन्हें पनाह मिल सकती है और जहाँ उन्होंने पनाह ली है। पर हारलेम आख़िर नरक है।

इस प्रकार बालक के माता-पिता अविवाहित हैं। अविवाहित उन माता-पिता के माता-पिता भी थे और शायद उनके माता-पिता भी, और यह परम्परा अफ्रीका से लाए गए 'बुनियादी माता-पिताओं को छू लेती है। उन दक्षिण के खेतों पर काम करने वाले संयत जीवन नहीं जानते क्योंकि संयत जीवन बिताने का उन्हें कोई हक़ नहीं, उन्हें बिताने

नहीं दिया जाता और इसी अविवाहित स्थिति में प्रकृति अपना काम करती है—जोड़े मिलते हैं, बालक जन्मते हैं, फिर जोड़े उठते हैं, बालक जन्मते हैं और प्रकृति का यह जीवन प्रवाह चलता रहता है।

अविवाहित माता-पिता आए, हारलेम में बालक उत्पन्न होता है। दोनों काम करते हैं, मिलते बिछुड़ते हैं, दोनों के जीवन में न संयम है न सुविधा, न गृहस्थ का नैतिक आचरण। वह दूसरी के साथ रहने लगता है, वह दूसरे के साथ रहने लगती है। और इन बढ़ती हुई इकाइयों की दोनों में से किसी पक्ष में कमी नहीं।

बालक बढ़ता जाता है। माँ कभी उसे बाप के पास भेजती है, बाप माँ के पास और इस प्रकार उस गरीब का जीवन कर्घे की ढर्की की तरह इधर से उधर और उधर से इधर टकराता रहता है। उसको पैसा चाहिए, खाने को आहार और पहिनने को कपड़े चाहिएँ पर कोई देने वाला नहीं। सुखी जीवन के मनुहार, सुखी जीवन के मनुहारों की तो बात ही अलग है। वह स्कूल जाता है, गरोह बना लेता है, बच्चों से कहता है अगर तुमने फ़ी आदमी एक पेनी मुझे न दिया तो तुम पर विपत्ति पड़ेगी और यदि तुमने दिया तो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। अपने गरोह के साथ वह मार-पीट करता है और अपनी ही मार-पीट से पैसा देने वालों की रक्षा भी। धीरे-धीरे उसके अपराधों की संख्या विकराल रूप धारण कर लेती है और उसे स्कूल छोड़ना पड़ता है।

अब वह चोरी करता है और पेशेवर चोर हो जाता है। ताले तोड़ना उसका सहज काम है, पुलिस उसे दौड़ाती है, गोली का निशाना बनाती है, चोट से घायल होगया तो अस्पताल में कुछ दिनों रह कर उसे जेल जाना है। बच गया तो साफ़ कचहरी में कहता है—ताला तोड़ते पुलिस ने देख लिया, मैं भागा, पीछे से गोलियों की आवाज़ सुनी, एक

दाहिने से निकल गई, एक सिर के ऊपर से, खड़ा होगया। और अब यहाँ हूं।

पश्चात्ताप और शर्म से उसे कोई वास्ता नहीं। उसकी दुनियां दूसरों की बनाई हुई है, उन गोरों की जिन्होंने हारलेम बनाया है और उस हारलेम के रौरव जीवन की इकाई उसके रूप में प्रस्तुत की है और जिन गोरों की समाज-परम्परा सर्वदा उस स्थिति का समर्थन करती आई है, नीति, आचार और कानून सब के द्वारा।

एक तसरा—

इस बालक के माता-पिता भी दक्षिण के ही खेतों से आए थे। दक्षिण के खेतों से ऐसे बराबर आते रहते हैं जिनको उत्तर की आज़ादी की खबर मिल चुकी है। उनका मक्का न्यूयार्क है और काबा मनहैटन का यह हारलेम। पर यहां पहुँचने पर उनकी आँखें खुल जाती हैं। आँखें खुल जाती हैं पर चारा नहीं। जकड़े हुए प्रारब्ध के शिकार के से वे उठते-बैठते हैं, फिरते और पलक मारते हैं और एक दिन अपने दुःख-बोझिल जीवन का अन्त कर देते हैं।

यह दोनों भी दक्षिण के खेतों से हारलेम आते हैं। मनहैटन के आस-पास जहाँ का जीवन अत्यन्त पेचीदा है, उलझा हुआ, जिसमें केवल सयाने ही अपनी राह बना सकते हैं। और वहाँ अपनी राह बनाने दूर दक्षिण से चलकर यह दोनों आए हैं जिनका वहाँ न कोई सगा सम्बन्धी है, न मददगार और खुद जिनको अक्षर का ज्ञान तक नहीं।

हारलेम में उनका बालक बढ़ चलता है। पिता को दक्षिण के खेतों का जीवन मंज़ूर था क्योंकि वहां उसे कोई आकांक्षा न थी, वहाँ उसने कुछ दूसरा देखा ही न था। माता के भी कोई अरमान न थे और वह अपनी स्थिति से डोली न थी। पर दोनों जो हारलेम आए तो यहाँ कुछ उम्मीदों ने उन्हें गतिमान किया; पर सीमाएँ इतनी कसी थीं कि कोई

राह न निकली और नई दुनिया पुरानी से भी बदतर साबित हुई।

औरत मर्द को कोसती, मर्द झुँझला उठता और एक दिन जब यह झुँझलाहट पराकाष्ठा को पहुँच गई तो मर्द उठा और एक ओर चला गया। औरत के लिये सिवा घृणित जीवन के, कामुकता प्रचार के, ज़िन्दगी का और कोई ज़रिया नहीं रह गया।

बालक देखता है, एक के बाद एक अनेक मर्द दिन और रात उसकी माँ के पास आते हैं और वह दरवाज़े से बाहर धकेल दिया जाता है, सड़क में। सड़क पर वह खेलता है और बच्चों के साथ जो उसका मज़ाक उड़ाते हैं यह कहकर कि उसके बापों की कोई तादाद नहीं, पर वह मज़ाक समझ नहीं पाता, केवल इतना जानता है कि निहायत घिनौनी बात उससे कही जा रही है।

धीरे-धीरे वह दस बर्ष का होता है, दस से ग्यारह का और बातें कुछ कुछ समझने लगता है। कमरे में खेल रहा है। टूटे खिलौनों को जोड़ रहा है। नहीं जोड़ पाता, झुँझला उठता है। कोई द्वार खटखटाता है। माँ दरवाज़ा खोल देती है. कोई भीतर आता है, मर्द, जिसे बच्चे ने कभी देखा नहीं। माँ की ओर जिज्ञासा भरी. सन्देह भरी, नज़र फेंकता है और माँ कहती है. बाहर जा!

'बाहर नहीं जाऊँगा' वह अड़ जाता है।

'चल निकल बाहर, वरना देने लगूँगी।'

'दे तो, आ दे तो सही देखूँ। तू घिन भरी औरत।'

माँ आती है, उसकी बाँहें पकड़ बाहर कर देती है। आदमी मुस्कराता है। माँ दरवाज़ा बन्द कर लेती है, बच्चा सड़क पर है—उन बच्चों के बीच जो कुछ उससे बड़े हैं जिन्होंने मर्द को भीतर घुसते देख लिया था, जो बच्चे के निकाले जाने की बाट जोह रहे थे और जो अब उसे अपने पुराने नित्य के इशारों से चिढ़ा रहे हैं।

स्थिति भयानक है। लड़का कुछ नहीं समझता पर कुछ समझता है। घिन से वह भरा हुआ है, अपने प्रति, माँ के प्रति और उस अजनबी के प्रति जिसको उसने अभी देखा है। अजनबी को वह भूल जाता है, पर माँ को वह कैसे भूल सकता है जिसके साथ वह दिन-रात रहता है, जिससे वह खाना और कपड़े पाता है। फिर भी उसके भीतर एक जलन है, एक घिन, एक तिरस्कार। माँ से घिन कि उसने उसके दिल में घृणा पैदा की। अपने लिए इसलिए कि माँ से घृणा करता है। फिर माँ के प्रति क्योंकि उसने उसे अपने से घृणा करने को मजबूर किया।

वह लौटता है, उसके तेवर चढ़े हुए हैं, वह भूखा भी है और माँ के घर में अब वह अजनबी नहीं है। रसोई में जाता है, वहाँ कुछ खाने को नहीं, खाने को कुछ बना ही नहीं, माँ को फ़ुरसत नहीं मिली। माँ के पास फिर लौटता है, माँ आलस भरी पड़ी है, थकान से चूर है, उसे देखती है फिर आँखें मींच लेती है। बालक खाना माँगता है, खीझ खीझ कर बोलता है, भूख कड़ी है पर उससे कहीं कड़ी भीतर की मार है वह घिन जिससे उसकी झल्लाहट बढ़ जाती है। माँ कहती है, 'चल-चल' और उसके धीरज का बांध टूट जाता है। वह पास रखी कैंची उठाकर माँ की छाती में मारता है। माँ आह! करके उठती है, बालक ने अब छुरी उठा ली है, उसे घर से बाहर फेंक देती है। फिर वह शोर मचाती है, पुलिस आती है और बालक को खून करने की कोशिश के अपराध में पकड़ लेती है।

लड़का और माँ दोनों मजिस्ट्रेट के सामने पेश हैं। लड़का माँ को मार डालने की कोशिश में जघन्य अपराध का दोषी है। माँ उसे बिगाड़ने की दोषी। मजिस्ट्रेट लड़के को सज़ा देता हुआ भी औरत से कहने से नहीं चूकता कि तू ने मातृत्व को शर्मिन्दा कर दिया है, बेटे की ज़िन्दगी बिगाड़ दी है। पर औरत भला गोरे मजिस्ट्रेट से कैसे पूछे कि

उसकी अपनी जिन्दगी किसने बिगाड़ी है, उसके माँ-बाप ने, अथवा दक्षिणी-स्टेटों के खेतों के मालिकों ने, या मनहैटन की पंचधा उन गोरी जातियों ने जिनकी नैतिकता अपने बाजू पर ही हारलेम का नरक बसा सकती है, जिस नरक की इकाई-इकाई मनहैटन के सभ्य नागरिकों की आचार-व्यवस्था और कानून-राजनीति की परम्परा से समर्थित है।

: ११ :

ज़ीरो से २२ डिग्री नीचे

दोनों ओर रुई की तरह फैले हुए सफेद धुँधले मैदान। शायद चारों ओर, पर सामने और पीछे देख नहीं सकता। सामने पाइलट का यन्त्र-गृह है; पीछे मछली की वह ऊँची क्रॉसनुमा दुम जिसके भीतर गुसलखाने आदि हैं। और हमारा जहाज़ उड़ा जा रहा है, प्रायः ३०० मील प्रति-घण्टे की रफ्तार से, पूर्व की ओर। यह मैदान ज़मीन का नहीं, रेत का भी नहीं, यद्यपि वह जहाज़ से दूर रेतीला-सा दीखता है। है वह बादलों का, उन बादलों का जो हम से हज़ारों फ़ीट नीचे हैं, जिन पर धूप चमक रही है।

प्रशान्त महासागर के पूर्वी बन्दर सैन-फ्रैन्सिस्को से सुबह सात बजे जब चला था आसमान में घने बादल छाये हुए थे और यद्यपि ज़ोर से

भगवतशरण

पानी नहीं बरस रहा था, टिप्-टिप् तो निश्चय बड़ी देर से हो रही थी। पहले एक बार जो जहाज़ उठा तो उठता ही गया। सौ फुट, पाँच सौ फुट, हज़ार, पाँच हज़ार, दस हज़ार, उन्नीस हज़ार फुट ऊपर। बादलों के ऊपर अत्यन्त वेग से वह उड़ता जा रहा है। मेंह और मेंह बरसाने वाले बादल कब के और कितनी दूर नीचे छूट गये हैं और जहाज़ एक विशाल भौंरे की भाँति डर्र-डर्र करता तीव्र गति से उड़ता जा रहा है। बादल जो प्रायः हज़ार परतों नीचे गीले और पानी भरे हैं ऊपर से रुई की तरह श्वेत, सूखे हैं जिन पर जैसे सूरज की किरणें चमक रही हैं। लगता है जैसे समुद्र के किनारे दूर तक बालू का मैदान फैला पड़ा हो जिसकी भूमि अपने टीलों के कारण ऊँची-नीची दीख रही हो। बड़ा सुन्दर लगता है वह दृश्य कुछ धुँआ उठाता-सा, अनेक स्थलों में घनीभूत धूम के विस्तार-सा। पहली बार आज मेघदूत के प्रख्यात पद का अर्थ समझा—धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः।

× × ×

पाँच बज गये हैं। जाड़ों की साँझ अंधेरा जल्दी लाती है पर अंधेरा अभी शिकागो में हुआ नहीं। और जहाज़ अभी ज़मीन पर उतरा है। प्रायः दो हज़ार मील की उड़ान आठ घण्टों में समाप्त कर शिकागो पहुँच गया। बाहर बेहद सर्दी है और स्वाभाविक वातावरण की सर्दी को हड्डी को हिला देने वाली सर्द हवा और बढ़ा रही है। शीत प्रधान देश में सर्दी का होना स्वाभाविक है परन्तु यह हवा, यह तो मर्म-भेदी है। मर्म-भेदी वस्तुतः अलंकार रूप से नहीं। शिकागो मिचिगन झील पर बसा है और उस झील से तड़पा देने वाली हवाएँ चलती हैं। इसी से शिकागो को 'विंडी सिटी' कहते हैं। लगातार तीन दिन मुझे उस संसार के सबसे बड़े नगर शिकागो की सर्दी और उससे कहीं बढ़कर उसकी तीखी हवा सहनी पड़ी।

न्यूयार्क का नागरिक उसे अपने नगर से बड़ा नहीं मानता और न लन्दन का रहने वाला ही शिकागो को लन्दन से बड़ा मानता है; मगर शायद शिकागो के नागरिकों की दलील के मुताबिक ज़रूर उनका नगर दुनिया में सबसे बड़ा है। वे कहते हैं कि न्यूयार्क में चाहे अस्सी लाख लोग काम करते हों पर वे सब वहाँ रहते नहीं। उनकी एक तिहाई जन-संख्या तो पास के गाँवों से नगर में काम करने आती है। फिर वह नगर पाँच स्वतन्त्र द्वीपों पर बसा है। नगर की लम्बाई-चौड़ाई कुछ भी नहीं है, जो कुछ है वह ऊँचाई भर है। लन्दन ज़रूर न्यूयार्क से बड़ा है पर वह भी अपने इर्द-गिर्द के गाँवों को अपने विस्तार में जोड़ लेता है। बाकी दुनिया में कोई नगर नहीं जो सचमुच जनाकुल संसार की एकस्थता में शिकागो का मुकाबला कर सके।

बात सर्दी की कह रहा था और सर्दी को भूल नगर की करने लगा। यद्यपि शिकागो की सर्दी का बहुत कुछ कारण उस नगर का बड़ा विस्तार ही है। सर्दी बढ़ती जा रही थी—एक के बाद एक डिग्री ज़ीरो से नीचे निरन्तर उतरती जा रही थी। दस से ग्यारह, ग्यारह से बारह, बारह से तेरह। फिर उसने चौदह छुआ, फिर पन्द्रह। और पास के गाँवों में बीस और बाईस। शताब्दियों में शिकागो ने ऐसी सर्दी नहीं देखी। इधर मैं हिन्दुस्तानी, उत्तर-प्रदेश का पुरबिया आदमी, तड़प कर रह गया। आख़िर होटल में बैठे रहने तो आया नहीं था। वैसे होटल की गर्मी और सड़क की गला देने वाली सर्दी में केवल दीवार भर का फ़ासला था। बाहर निकल ही पड़ा।

यूनिवर्सिटी खुली थी। विद्यार्थी और प्रोफ़ेसर क्लासों की ओर चले जा रहे थे। गिरती हुई बर्फ़ को जब-तब विद्यार्थी कंधों से झाड़ देते और बाँह से बाँह कसे दो-दो, तीन-तीन, एक साथ निकल जाते। इन गिरोहों में विद्यार्थिनें भी होतीं; विद्यार्थी भी। यूनीवर्सिटी जाना था मगर अख़बार

जो मिल गया तो लौट पड़ा। सोचा, अख़बार पढ़ लूँ और जलती हुई कॉफ़ी की एक प्याली पीकर बाहर निकलूँ। लौट पड़ा।

होटल के काउन्टर के पास ही मेरे मित्र पाल रिचर्ड का लड़का मिशेल खड़ा था और उसके साथ उसी की उम्र की एक लड़की भी। अभी चाबी लेने काउण्टर तक पहुँचने के पहले ही लौबी में खड़ा-खड़ा अख़बार के शीर्षकों पर नज़र दौड़ा गया था। एक ग़ज़ब की ख़बर उसमें छपी थी जिससे मन आनन्द से नाच उठा। वह ख़बर थी कुमारी मार्गरेट के साहस भरे इन्टरव्यू की। पर उसकी बात फिर कहूँगा।

मिशेल के बढ़े हुए हाथ को दाहिने हाथ से लेता बाँए हाथ से जब तक उसका कंधा पकड़ प्यार से हिलाता हूँ तब तक लड़की बढ़कर कहती है, 'महानुभाव, मैं मार्गरेट !'

निश्चय मैं इस नाम को नहीं जानता, पर नाम वह आँखों में खटक जाता है जिसकी झंकार अभी कान ने सुनी है क्योंकि यह वही नाम है जो अख़बार के मोटे शीर्षक में छपा है और निश्चय यह कुमारी वही है क्योंकि वह मिशेल के साथ है जिस मिशेल का नाम भी निचले शीर्षक में है। ऊपर का शीर्षक कहता है, "कुमारी मार्गरेट की प्रेसिडेन्ट ट्रूमन को चुनौती !"

कोरिया के युद्ध में जिसे प्रेसिडेन्ट ट्रूमन 'गणतन्त्र की रक्षा का युद्ध' एलान करते हैं अमेरिकन युवक हज़ारों की संख्या में जूझ गये। फिर भी हज़ारों वहाँ के सर्द मैदानों में बलिदान के निमित्त खड़े कर दिये गए हैं। पर ज़रूरत हज़ारों की नहीं लाखों की है। जो काम स्वेच्छा से नहीं होगा उसे प्रेसिडेन्ट की राय में अनिवार्यतः करना होगा ! प्रत्येक सत्रह वर्ष के बालक-बालिका को युद्ध के लिए प्रस्तुत होना होगा और सारे देश के तरुण-तरुणियों और अधेड़ों की सेना बल-पूर्वक तैयार की जायेगी। इसी अर्थ "कान्सक्रिप्शन" की तैयारियाँ हो रही हैं और उस निमित्त निम्नतम

आयु पर सिनेट में बहस चल रही है। पत्रकारों ने सोचा कि जहाँ सिनेट में इस सम्बन्ध में सयानों का वाद-विवाद हो रहा है भला बालक-बालिकाओं से ही इस विषय में कुछ चर्चा क्यों न की जाय। परिणामतः शिकागो के कुछ रिपोर्टरों ने सत्रह वर्ष की आयु वाले विद्यार्थियों से बातचीत शुरू की। उनमें यह लड़की मार्गरेट भी थी, मार्गरेट सत्रह साल की। प्रश्न था कि 'कान्सक्रिप्शन' की आयु सत्रह रखी जाय, साढ़े सत्रह या अट्ठारह।

"कान्सक्रिप्शन की आयु तुम्हारे विचार में क्या होनी चाहिये?" मार्गरेट से पूछा गया।

"मैं युद्ध नहीं चाहती।" मार्गरेट ने उत्तर दिया।

"पर सवाल यह नहीं कि तुम युद्ध चाहती हो या नहीं। तुम इस पर अपनी राय ज़ाहिर करो कि कान्सक्रिप्शन की आयु सत्रह हो, साढ़े सत्रह हो या अट्ठारह वर्ष हो।"

"पर मैं युद्ध जो नहीं चाहती, और यह कान्सक्रिप्शन युद्ध के लिए है। और मैं जानती हूँ कि युद्ध सर्वथा बुरा है; स्वभावतः बुरा।"

"मगर, कुमारी, तुम विषयान्तर कर रही हो। हम तुमसे युद्ध की नैतिकता पर कुछ नहीं पूछते। केवल प्रश्न का उत्तर दो, यदि देना चाहो।"

"केवल प्रश्न का उत्तर देने का मतलब अपने मृत्यु के तरीके पर राय देनी है। तुम मुझे मजबूर कर रहे हो कि मैं अपने मरने का ज़रिया चुन लूँ। वह ज़रिया चाहे डूब कर मरने का हो, चाहे बिजली की कुर्सी पर बैठकर। परन्तु मैं तो मरना ही नहीं चाहती इससे मुझे इनमें से कोई ज़रिया मन्जूर नहीं। मैं युद्ध के पक्ष में निर्णय नहीं दूँगी।"

लड़की पागल करार दी गई। एक-आध रिपोर्टरों ने लिखा भी कि

निश्चय वह पगली है; कुछ ने यह कि वह प्रश्न के तथ्य को नहीं समझ पाई।

"मार्गरेट पागल हो तुम, हो ना।" मैंने लड़की के कन्धों को हिलाते हुए पूछा। वह हँसी तो मैंने कहा, "अगर इस समझदार दुनिया में तुम्हारे से पागलों की संख्या कुछ और अधिक हो जाय तो निश्चय शान्ति साँस लेने लगे! और सुनो, इस सर्दी के अतिरिक्त भी तुम्हारा साहस-भरा उत्तर हज़ार-हज़ार पुरस्कारों के अभाव में कम से कम कॉफ़ी की एक प्याली की अपेक्षा करता है।"

सुन्दर, सबल, उन्नत शरीर, अत्यन्त गोरे कपोलों से होते हुए रेशमी सुनहरे बाल जो कंधों को छू रहे थे; हाथों में दस्ताने और लबादा जो उसने होटल के भीतर उतार लिया था और जो अब उसकी बांह पर लटक रहा था।

सीढ़ियों पर मिशेल और मार्गरेट को छोड़ मैं लौटा जैसे निकट के आत्मीय से विदा ले रहा हूँ। उसे याद कर विश्वास होता है कि आखिर इस संसार में ट्रूमन और उसके हिमायतियों के अतिरिक्त ऐसे भी हैं जो पूँजीवादी अमेरिका की ज़मीन पर भी शान्ति के प्रयत्न में साहस भरे विचार रखते हैं।

× × ×

ओस्वाल्ड। ३१ वर्ष का युवक, सम्मानित 'वेटरन' जो पिछले महा-युद्ध में प्रशान्त सागर में लड़ चुका है। ओस्वाल्ड यह नाम, मेरा विश्वास है, झूठा है। जिस प्रसंग में और जिस स्थिति में उसकी मेरी बातें हुईं उससे निश्चय है कि इस प्रकार के अनेक नाम उसने बदले होंगे।

बफ़ेलो का होटल, नियाग्रा जलप्रपात से थोड़ी ही दूर पर है, बस इतनी दूर पर कि प्रायः ४५ मिनट में बस उस संसार प्रसिद्ध झरने तक पहुँच जाती है। मैंने ओस्वाल्ड को होटल से निकलते देखा

था, निकलते ही नहीं बल्कि होटल के काउण्टर पर हॉल-पोर्टर से बस के खड़े होने की दिशा पूछते भी। उसके हँसमुख भावुक चेहरे ने मुझे आसानी से आकृष्ट भी किया था पर यह जानता हुआ भी कि मैं हालैण्ड में नहीं अमेरिका में हूँ उससे कुछ पूछा नहीं। दोनों चुपचाप बस-स्टैन्ड की ओर बढ़ते गये और बस के आने तक खम्भे के पास कुछ देर खड़े रहे, अजनबी-से। अजनबी तो ख़ैर दोनों थे ही, बस के आते ही उस पर सवार होगये। नगर और मैदान, सड़क, बस और मोटरें, सारा आस-पास का जगत् बर्फ से ढका था। बर्फ गिर भी रही थी और हम दोनों औरों की ही भांति बाहर की सफ़ेद नंगी दुनिया को चुपचाप देख रहे थे। कुछ देर बाद ओस्वाल्ड ने पूछा, 'नियाग्रा?' मैंने कहा 'जी!' उसने फिर पूछा, 'हिन्दुस्तानी?' मैंने कहा, 'जी!' फिर उसने कहा, 'मैं हिन्दुस्तान हो आया हूँ।' 'वह कब?' 'पिछली लड़ाई के अन्त में जापान के आत्म-समर्पण के पहले मैं दिल्ली और बर्मा दोनों जगह था।' 'भारतीय कैसे लगे?' 'बहुत अच्छे, तभी तो आपको देखकर बात करने की इच्छा बलवती हो उठी।' 'धन्यवाद, बड़े अच्छे हैं आप।'

प्रपात देखते और आस-पास की बर्फ ढकी भूमि पर मीलों घण्टों घूमते हम दोनों देश-विदेश की बातें करते रहे। फिर ओस्वाल्ड ने अपना नाम बताते हुए मेरा नाम पूछा। मैंने उसे नाम बता दिया।

'क्या आप पर विश्वास कर सकता हूँ?' उसने पूछा—

'उसी हद तक जिस हद तक मुझसे आपको किसी ख़तरे की सम्भावना न हो।'

'जभी तो बात करने की हिम्मत कर सका। इतनी देर जो आपसे बातें हुई तो अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के प्रति आपकी प्रतिक्रिया मुझ पर प्रगट हो गई है और साथ ही शान्ति और युद्ध के प्रति आपका रुख़ भी।

इससे लगता है आप पर विश्वास कर सकता हूँ।'

'कहें, किसी बात की आशंका न करें। यदि आपके किसी मन्तव्य से सहमत न भी हुआ तो कोई डर की बात नहीं, उसे अपने तक ही सीमित रखूँगा।'

'देखिये, मैं 'वेटरन' हूँ। पिछली लड़ाई में जो लड़ चुके हैं उन पर हमारी सरकार अपना स्वाभाविक अधिकार मानती है। उनको सीधे घर से तोड़कर कोरिया के मैदानों में भेज देना उसके लिए कोई बात ही नहीं। यह हमारा प्रेसीडेन्ट अमेरिका के महान प्रेसीडेन्टों की लम्बी शृंखला की सबसे कमज़ोर कड़ी है। हमारा अभाग्य कि देश इसके चंगुल में जा पड़ा है।'

मैं चुपचाप सुनता रहा। उसके सफ़ेद चेहरे का रह-रहकर लाल हो जाना मुझ पर उसके हृदय की सच्चाई व्यक्त कर रहा था और साथ ही उसके भावों का आवेग भी।

'मैं प्रेसीडेन्ट रूज़वेल्ट के दिमाग़ और इन्सानियत का क़ायल हूं और मेरा विश्वास है कि वह शान्ति का सही हिमायती था, और अटलांटिक चार्टर चाहे एशियाई लोगों को पूरा-पूरा स्वीकार न हो पर वह निश्चय रूज़वेल्ट के एतक़ाद की चीज़ था।'

मैं फिर भी चुपचाप सुन रहा था और मेरा कुतूहल उस बात को सुनने के लिए बढ़ता जा रहा था जिसकी भूमिका उसने बड़ी सुन्दर रीति से बाँधी थी। मुझे चुप देखकर ओस्वाल्ड ने पूछा, 'आप मेरी बात समझ रहे हैं ना?'

'मैं ग़ौर से सुन रहा हूँ, आप कहते जाँय।'

'तो सुनिये, मैं कोरिया के मैदान से भागा हुआ सिपाही हूं।' अपने वक्तव्य का मुझ पर प्रभाव देखने के लिये उसने अपनी आँखें मेरे चेहरे पर गड़ा दीं। निश्चय उस विदेश में जहाँ शान्ति का नाम लेना भी

अपराध माना जाता है, जहां शान्ति के नारे बुलन्द करने के कारण हावर्ड फ़ास्ट आदि चोटी के आठ-आठ लेखक जेल में हैं, इस प्रकार के सिपाही से मिलना और बात करना ख़तरे से ख़ाली न था जो कोरिया के मोर्चे से भाग आया हो और ट्रूमन के विरोध में कुछ कह रहा हो। मैंने पहले अपने चारों ओर देखा। उस फैले बर्फ़ के मैदान में ठूँठे नंगे पेड़ों के सिवाय और कोई न था। दूर कुछ देशी-विदेशी मानव जोड़े जल-प्रपात के हाहाकार में अपना स्वर गुँजा रहे थे।

'अच्छा! आप वहाँ से कब आये? मैंने आश्वस्त होकर पूछा।

'आज एक महीना हुआ और 'ट्राम्प' (घुमक्कड़) के रूप में दिन रात घूमता रहा हूं। घर जा नहीं सकता। मित्रों, सम्बन्धियों से मिलना उन्हें ख़तरे में डालना है और अपरिचितों पर विश्वास नहीं किया जा सकता।'

शब्दों में अनुभवजनित शक्ति थी, आँखों में आग्रह था।

'मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ?' मैंने पूछा।

'क्या आप किसी न्यूट्रल देश में किसी ऐसे को जानते हैं जिसके यहां मैं पनाह ले सकूँ, अगर किसी तरह वहां पहुँच जाऊँ?'

'आप कहां जाना चाहेंगे, इङ्गलैण्ड और फ्रांस जाना शायद ख़तरे से ख़ाली न होगा। डेन्मार्क भी बुरा है, इटली भी, क्या नार्वे जाना चाहेंगे? वहां के एक मित्र को पत्र दे सकता हूँ।'

'निश्चय दे दें। क्या साथ ही वहां जाने का कुछ प्रबन्ध भी कर सकते हैं?'

'मतलब?'

'मतलब, कि अगर मैं किसी प्रकार यहां से पासपोर्ट का इन्तज़ाम कर लूँ तो आप वहां के लिए वीज़ा दिलवा सकते हैं?'

'हां, शायद मैं वह कर लूँगा; पर यहां से नहीं, इङ्गलैण्ड से।'

इस सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें और हुईं और तब हम दोनों नियाग्रा के एक वीरान रेस्टॉरेन्ट में जा बैठे। मुझे उस आदमी से मिलकर कोरिया के विषय में जानने की कुछ और इच्छा हुई। उसने मुझे बताया कि अभी हाल वहां के बीसों मोर्चों पर अमरीकी फ़ौजों पर बुरी मार पड़ी है। और अनेक मोर्चे चीनियों के हाथ में छोड़ हमें पीछे हटना पड़ा है। अमेरिकन सिपाही वहां अकारण लड़ रहा है और यह वह जानता भी है, इसे वक्त-बेवक्त कहता भी है। बीसों की तादाद में मेरे जानते सिपाही मोर्चों से गायब होचुके हैं, उनके नाम मरे हुओं में लिखाये जा चुके हैं। मैं भी उन्हीं में से हूँ, इसी से अपेक्षाकृत रक्षित हूँ। अगर ट्रूमन खुद एक बार उस मोर्चे पर जाता तो देख लेता कि उसके सिपाहियों पर कैसी बीत रही है। अगर केवल मार की बात होती तो आख़िर हम भी कायर नहीं, उससे निपट ही लेते पर वहाँ तो उस लड़ाई का मतलब ही समझ में नहीं आता जहाँ बुज़दिल दक्षिणी कोरियनों के पक्ष में हम लड़ रहे हैं और उन चीनियों के विरुद्ध जिनके साथ हमारा सदियों दोस्ताना रहा है। हमारा दिल उस लड़ाई में नहीं है और हमारी समझ में नहीं आता कि उत्तर कोरियनों का दक्षिण कोरिया को अपने साथ में कर लेने का प्रयत्न किस प्रकार विश्व-शान्ति को ख़तरे में डाल रहा है। इस प्रकार की बातें मैं ही केवल आप से नहीं कह रहा हूँ; मुझ से भी हमारे सैकड़ों दोस्तों ने वहां कही हैं और रोज़ यही आपस में वे कहा करते हैं। फिर एक बात और आपसे कह दूँ, कोरिया में गरम ख़बर है कि मैकी (मैक आर्थर) और ट्रूमन में कुछ चख़-चख़ चल रही है। जनरल स्वयं अब वहां नहीं रहने का।'

मुझे थोड़ी देर के लिए उससे अलग होना था क्योंकि उस जल-प्रपात को ऊपर हवाई जहाज़ से भी देखने की इच्छा थी। इससे हवाई जहाज़ के अड्डे की ओर उसे वहीं छोड़ चला गया। बस में उससे फिर

मुलाकात हुई और होटल हम दोनों साथ गये। वहां वह स्वयं मुझसे यह कहता अलग हो गया कि हमारा देर तक एक साथ रहना दोनों के हक़ में बुरा है। दूसरे दिन तड़के ही ओस्वाल्ड चला जाने वाला था। मैं उससे फिर एक बार मिलने का लोभ संवरण न कर सका और तड़के ही लबादा लपेट नीचे उतर आया। ओस्वाल्ड काउण्टर पर होटल का हिसाब दे अपना हलका सामान अपने ही हाथों उठा रहा था। सूट-केस से हाथ निकाल मेरे हाथ में देते हुए उसने कहा, 'बड़ी याद रहेगी।' तभी मैंने एक लिफ़ाफ़ा उसके लबादे की ऊपरी जेब में यह कहते हुए सरका दिया कि, 'इनसे शायद रास्ते में कुछ मदद हो जाय।'

'मना नहीं करूँगा, निश्चय इससे बड़ी मदद होगी।' और ओस्वाल्ड ने मेरा हाथ ज़ोर से दबाया और आगे खींचकर मुझसे लिपट गया।

ओस्वाल्ड उलट-उलट कर मुझे देखता होटल से बाहर हो गया और मैं नहाने से पहले देर तक पलंग पर पड़ा उस मानव विभूति पर विचार करता रहा।

भगवतशरण

: १२ :

डाडसन की ज़बानी

अमेरिका में काले-गोरे का भेद कितना भयंकर है यह मनहैटन के नरक हारलेम से प्रगट है। कालों के प्रति गोरों का यह अमानुषिक व्यवहार उस देश में कहाँ तक व्यापक है यह डाडसन की ज़बानी सुना जा सकता है। डाडसन ने अपने वक्तव्य के बीच अनेक बार अपनी आँखें गीली करली थीं।

ओवेन डाडसन अमेरिका के एक प्रख्यात निग्रो हैं। १६१४ में न्यूयार्क के ब्रूकलिन में इनका जन्म हुआ। इनका शिक्षण बेट्स कालेज और येल यूनिवर्सिटी में हुआ। ये कवि और नाटककार हैं और आजकल 'मास एजुकेशन इन रेस रिलेशन्स' की समिति के एक्ज़ीक्यूटिव सेक्रेटरी हैं।

अपने कार्य के सिलसिले में फ़िल्म की सामग्री के लिए इन्होंने अपने गोरे सहकारी और मित्र रुडोल्फ़ कार्ल्सन के साथ अभी हाल दक्षिण की यात्रा की थी। यह बातचीत तभी लिये गये नोटों के आधार पर है।

(१)

मिसिसिपी के एक कस्बे के निग्रो काउण्टी-एजेण्ट से मिलने गया। काउण्टी एजेन्ट अपने तजुर्बे से किसानों को पैदावार सम्बन्धी सलाह देता है—कौन से पौधे लगाए जायँ? कैसे लगाए जायँ? फ़लाँ फ़स्ल क्यों नष्ट होगई? अच्छी फ़स्ल कैसे उगाई जाय? आदि बातों में किसान उसकी सलाह से कार्य करता है। एजेन्ट खाद, नई मशीन आदि का विशेषज्ञ होता है। वही स्थानीय समाचार-पत्र, रेडियो, मित्र, सलाहकार सब कुछ होता है। वही गोरे मालिक और निग्रो काश्तकार किसान का बिचवइया भी होता है।

जिससे मेरी बातें हुईं वह एजेन्ट क़द में ऊँचा गहरे रंग का निग्रो था। उसकी पेशानी भारी थी, ठुड्डी बड़ी और ठोस थी, गाल की हड्डियां ऊंची थीं। मैंने उससे पूछा कि क्या जान रस्ट और इन्टर्नेशनल हार्वेस्टर कम्पनी की चलाई रुई निकालने वाली मशीनों के कारण हज़ारों परिवारों के बेकार हो जाने की संभावना है? सुना है अनेक किसानों को देश छोड़कर चला जाना पड़ेगा और दक्षिण को नई प्रकार की रुई की फ़स्लें ढूंढना होगा। एजेन्ट खड़ा हो गया और उसने अपना हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया। उसका खुला हाथ काली लकड़ी से कोरा हुआ लगा। उसकी रेखाएं—हृदय, जीवन, प्रारब्ध की—हथेली पर साफ़ झलक रही थीं। 'आख़िर ये हाथ वहां जा सकते हैं, जहां रुई निकालने वाली मशीन नहीं पहुँच सकती' अपने हाथ को गर्व और शालीनता पूर्वक खोलते-बटोरते हुए उसने कहा।

उसी दिन तीसरे पहर जान रस्ट (वर्ल्ड फ़ाउन्डेशन का निर्माता और रुई निकालने वाली मशीन का ईजाद करने वाला) मशीन का मुआइना करने एक प्रयोगाधीन फ़ार्म (खेत) पर पहुँचा। वहां बहुत तरह की बातें हुईं विशेष कर रस्ट के उस क्रान्तिकारी स्वप्न के विषय में जिसके परिणाम स्वरूप हम राजनीतिक मान्यताओं के भय से दूर सुख की रोटी खा सकेंगे, जब भूमि की उपज पर सबका समान अधिकार होगा और प्रत्येक संस्कृति तथा धार्मिक विश्वास फूल फल सकेंगे। यह उसका स्वप्न था और उसे सत्य करने के लिये वह अपना सारा रुपया उसी में लगा रहा था। वह ऊंचे क़द का था, शालीन, मधुरभाषी, कुछ रंजीदा सा। खेत पर पहुँचते ही उसने कहा—'ज़रा सावधान हो जाओ'। मैंने पूछा 'क्या मतलब है ?' तब उसने ओवरसियर की एक बात बताई। वह बात मेम्फ़िस के एक खेत मज़दूर की थी। मज़दूर मसख़रा था कुछ 'टाम काका' नहीं था। काम करते-करते उसने एक बार जो ओवरसियर की तरफ़ देखा तो उसे भी अपनी ही भांति मेसोनिक-लॉज का पिन पहने पाया। विनोदी जीव वह था ही, उसे लगा वह अपने सूझे वक्तव्य द्वारा ओवरसियर का भी मनोरंजन कर सकता है। मुस्कराते हुए वह उसके पास पहुँचा और बोला—'बॉस' (मालिक) ! ओवरसियर ने उसकी ओर तेज़ नज़र से देखा। मज़दूर कहता गया, ज़ोर से बोलता, कमीज़ के भीतर अंगूठा डाले मेसोनिक पिन को उठाता—'बास, देखता हूँ हम दोनों एक ही 'लाज' के हैं, मालिक ! ओवरसियर ने गले को साफ़ करते हुए कहा—'ज़रा वह फावड़ा देना, लड़को' 'लड़के' ने पास पड़ा फावड़ा उसे ला दिया। 'हैम ! हैम !' काले आदमी की कनपटी पर फावड़ा गिरा—एक, दो, तीन बार। हैम, हैम, हैम ! मज़दूर दर्द से चीख़ उठा। उसके कानों से ख़ून बह रहा था, उसका मेसोनिक पिन ख़ून से तर था। जबड़े की एक हड्डी टूट गई थी, उसके आधे दांत निकल पड़े थे। एक

आंख गंदी चटनी सी होगई थी। ओवरसियर चला गया। उसके चेहरे पर तनिक बल न पड़ा। घृणा का वह पूर्ववत् केन्द्र था। 'इसी से मैंने कहा था—ज़रा सावधान हो जाओ।' रस्ट ने कहा। 'फिर मैं क्या करूं ?' मैंने पूछा। 'हमारे साथ २ मत आना, पीछे अटके रहो। जब मैं रूडी (डाइसन का मित्र रुडोल्फ कार्ल्सन) का उससे परिचय कराऊं तब सब के साथ ही तुम भी मत बढ़ आना। मशीन पर कोई टिप्पणी न करना, और खुदा के लिए कोई सवाल न पूछना।' रस्ट बोला।

कार सड़क पर रुकी। सड़क के दोनों ओर पकी रुई तैयार खड़ी थी। मशीन खेत में आगे-पीछे दौड़ाई जा रही थी। जब एक बार मशीन पास आई हमने देखा, लंबे तार के हाथ पौधे की रुई पकड़ लेते थे। हवा का दबाव ट्यूबों में ज़ोर से फूंक मारता था जिससे सफेद चिड़ियों की भांति उड़-उड़कर रुई बड़े-बड़े तार के टोकरों में गिर पड़ती थी। रुई के आ गिरने पर पास का निग्रो लड़का उसे टोकरी में दबा देता था। मशीन पलक मारते आगे-पीछे दौड़ रही थी। जहां पहली ही बार में सारी रुई नहीं निकल पाती थी मशीन दुबारा वहां चला दी जाती थी। तब मैंने काउण्टी-एजेन्ट को मन ही मन याद किया। उसकी आवाज़ जैसे फिर सुन पड़ने लगी 'आख़िर ये हाथ वहां जा सकते हैं जहां रुई निकालने वाली मशीन नहीं पहुँच सकती।' लौटते समय देखा एक खच्चर आवारा घूम रहा था। रूडी (रुडोल्फ़) ने कहा—'मैं शर्त बदता हूँ अब खच्चर तक बेकार होते जा रहे हैं।'

(२)

जब हमने एटलैंटा छोड़ा आसमान बादलों से भरा था। जब जहाज़ ऊपर चला तब लगा कि आसमान हमें फिर नीचे जार्जिया के खेतों में धकेल देगा। मुझे दोहरा दुःख था, एक तो मौसिम, का दूसरे उस जगह का जहां मैं जा रहा था—मिस्सिसिपी—जैक्सन—पर थोड़ी ही देर में जहाज़

उठा और कुहरे को चीरता बादलों के ऊपर चमकती हवा में पहुँच गया। वहां का आसमान गर्मी के आसमान की तरह था। हमारे नीचे बादल बर्फ के फैले खेत की तरह लग रहे थे और हम एटलैंटा, कुहरा, जैक्सन सब भूल गए। फिर अनजाने ही जहाज़ नीचे उतरने लगा, बादलों के बीच से, और खिड़कियों के चारों ओर सफेद ही सफेद दीखने लगा। सफेद भूरा हो चला और धीरे-धीरे मिस्सिसिपी हमारी ओर उठ चला। रूडी ने मुझसे कुछ न कहा और न मैंने ही उससे कुछ कहा। जब हम अड्डे पर पहुँचे तब मैं दरवाजे पर ही ठमक गया और रूडी सामान लेने लगा। हम दोनों में कुछ ऐसा ही समझौता था कि जब स्टेशन गोरों का होता तब रूडी क्रियाशील होता और जब वातावरण निग्रो का होता तो मैं। मैं द्वार के पास खड़ा एक पत्रिका देखता रहा। ज़ाहिर है कि मैं पढ़ नहीं रहा था। मैं सबका निकलना देख रहा था, सब मुझे देख रहे थे। रूडी लौटा और उसने मेरी सिगरेट जलादी। हमने लोगों को सचेत लापरवाही के साथ बाहर जाते देखा। वे लोग हमें क्षण भर देखते और चुपचाप निकल जाते। रूडी और मैं दोनों सशंक थे।

हम बैठने का स्थान खोजने लगे, प्यास भी लगी थी। इधर-उधर देखा, कहीं पानी पीने वाला फ़व्वारा दीख जाय। रेस्टोरैन्ट में प्रवेश हो नहीं सकता था। देखने लगे शायद कहीं लिखा हो—'निग्रो पैसन्जरों के लिए।' परन्तु इस प्रकार के आलेख नहीं मिले। बात यह है कि हवाई जहाज़ से जितना ही दक्षिण जाओ ऐसे आलेखों की उत्तरोत्तर कमी होती जाएगी। कारण कि वहां किसी को गुमान भी नहीं कि निग्रो जहाज़ से सफ़र करेगा। ऐटलैंटा के प्रतीक्षालयों के द्वार पर लिखा था—'गोरी नारियों के लिए', 'निग्रो नारियों के लिए', 'गोरे मर्दों के लिए', 'निग्रो मर्दों के लिए'। नाशविल में दो चमड़े की टूटी कुर्सियाँ पड़ी थीं। वहां लिखा था—'निग्रो पैसंजरों के लिए।' मज़े की बात तो यह कि हफ्ते बाद

जब हम वहां लौटे तब उन कुर्सियों पर गोरे मर्दों को बैठे पाया।

जैक्सन एयर-स्टेशन के प्रतीक्षालय में हम लोगों की वजह से कुछ चहल-पहल मच गई। 'हम लोगों के वहां होने' से नहीं, हम दोनों (सफेद और काले) के साथ होने से। और उससे भी बढ़कर इसलिए कि हम दोनों में सद्भाव और समानता का बर्ताव था। हमारे बक्स जब हमें मिल गए तब हम टैक्सी की प्रतीक्षा करने लगे। उनमें से जब एक आई, रूडी ने इशारे से उसे रोका और कुली को उसमें हमारा सामान चढ़ाने को कहा। (मुझे विश्वास था कि निग्रो कुली जानता होगा कि इसका नतीजा क्या होगा, पर आख़िर वह कर ही क्या सकता था जब सफेद अमेरिकन उसे हुक्म दे रहा था।) अब कैब का गोरा ड्राइवर हमारी ओर बढ़ा। उसका चेहरा दक्षिणी किसान का सा था, बड़ी सी झुर्रीदार लाल गरदन, एक पर एक ठुड्डी की अनेक परतें, लाल मिट्टी का सा चेहरा, सिर के पिछले भाग पर हैट, काली मिरचों-सी पुतलियों वाली शरारत भरी कमीनी आँखें। उसने हमारी ओर देखा, मुझे कुछ घूरा, फिर मेरी ओर बग़ैर देखे रूडी से पूछा—'ये बक्स किसके हैं?' 'मेरे और मेरे साथी के', रूडी बोला। मेरी ओर सिर घुमाता पर आँखें नीचे दूसरी ओर किए उसने फिर पूछा—'वो है आदमी? ना, मैं सबको नहीं ले जा सकता। वे मेरा लाइसेन्स ज़ब्त कर लेंगे और ऊपर से सौ डालर (पौने पाँच सौ रुपये) ठोंक देंगे। मुझे अफ़सोस है।' फिर रूडी के कहने पर कुली ने बक्स टैक्सी से उतार दिए। कार चली गई और रूडी स्टेशन के अफ़सर से मिलने चला। मैं पढ़ने के बहाने चुपचाप पत्रिका देखता रहा। रूडी पोर्ट के अफ़सर मिस्टर ब्राउन के साथ बाहर निकला। मि० ब्राउन पंख झड़े उल्लू की तरह लग रहा था। मेरी ओर बग़ैर देखे, मेरी उपस्थिति तक को अनजानी करता, वह रूडी से बोला—'आशा करता हूँ देश के इस भाग के हम रहने वालों के प्रति आप कठोर न होंगे, पर हम विवश

हैं। हम इसी वातावरण में बढ़े हैं। क्या कहूँ, जब मैं छोटा था तब केवल एक निग्रो नारी को 'मेम' कहने के कारण मैंने मार खाई।' उसने फिर भी हमें अपनी गाड़ी में पहुँचा देने की बात कही क्योंकि उस दक्षिण में भी यह बर्ताव क़ानूनन कुछ ख़ास नाजायज़ न था। हमने उसमें जाने से इन्कार कर दिया।

उत्साह-जनक इसमें बस एक बात थी कि जिन-जिनने हमारे साथ चलने, साथ खाने, एक छत के नीचे सोने में आपत्ति की थी सबने क़ानून, संस्था के नियमों, दक्षिणी व्यवहार आदि की आड़ ली जैसे उन्हें अपने उस व्यवहार से शर्म हो और वे उस घृणित वातावरण के धोकेधड़ी को समझ रहे हों। यदि उनसे उनकी माफ़ी का कारण पूछें तो वे कोई युक्ति-संगत उत्तर नहीं दे पाते थे क्योंकि हृदय की गहराई में वे अपने आप समझते थे कि पृथ्वी के किसी कोने में इन्सान की वह स्थिति न होनी चाहिए जो दक्षिण की इस काली जाति की है। आख़िर एक गाड़ी आई जिस पर बड़े-बड़े हरफ़ों में लिखा था—कलर्ड (कालों) के लिए और मैं उसमें जा बैठा। 'अब हम दोनों को अलग होना पड़ा। रूडी आम तरीके से गया, गोरों की गाड़ी में, गोरे होटल में। उसके पहले हमने अपने कार्यक्रम और मिलने आदि का निश्चय कर लिया था। बाज़ार से होती मेरी गाड़ी शहर से बाहर हो गई और अब धूल भरी सँकरी सड़क पर चली जा रही थी। दोनों ओर निग्रो झोंपड़ियां थीं, इधर-उधर झुकी, गन्दी। उनके ज़ीने टूटे थे, खिड़कियां अगर कहीं थीं, उखड़ी थीं, सिरे हिल रहे थे। दिन सर्दियों के थे इससे घरों में आने-जाने वाले और सड़क पर चलने वाले लोग या तो मोटे भारी जूते पहने थे या पैरों पर बोरे या अख़बार लपेटे थे। कोई तेज़ नहीं चल रहा था। चलने में शक्ति लगती थी और उनके चेहरों को देखने से पता लगता था कि उनमें ज़रा भी शक्ति नहीं बच रही है। नगर का यह निग्रो भाग था। मैं जैक्सन जिम-क्रो

जा रहा था। मैंने ड्राइवर से पूछा—'जैक्सन को पसन्द करते हो?' उसने अमृत सी सुधा संतुष्ट वाणी में कहा—'मैं कहता हूँ जैक्सन ही ग़रीब काले आदमी के रहने का उत्तम ठिकाना है। वैसे मैं ठीक-ठीक नहीं जानता कि उनका व्यवहार कैसा है।'

(३)

मिस्टर एड मिस्सिसिपी के सबसे बड़े ज़मींदार थे। इस बात को दूसरों ने तो मुझे बताया ही; मैं खुद निग्रो कृषि हाई स्कूल के निग्रो प्रिंसिपल के साथ उनसे मिला था तो प्रिंसिपल ने मुझे बताया कि मि० एड कस्बे के अधिकतर भाग के मालिक हैं, वास्तव में यहां के सर्वेसर्वा हैं। उनसे यहां की कोई बात छिपी नहीं रहती वे सब जानते हैं। उनके सब जानने के विषय में तो मुझे सबूत भी मिल गया। रूडी कस्बे के होटल में ठहरा हुआ था। मैंने फ़ोन उठाया और उससे अपने प्रोग्राम के बारे में बात-चीत के सिलसिले में उससे मि० एड और मिस्सिसिपी के वातावरण पर कुछ मज़ाक़ भी किया। मैंने उससे कहा कि अमुक संख्या में मैंने यहां गोरे मर्दों और लड़कों को कसी मैली जीन पहने कन्धे से बन्दूक लटकाए आते-जाते देखा है। सब शिकार के लिए आ-जा रहे थे। हम दोनों ने कहीं पढ़ा था कि इस भू-भाग में जब बन्दूकों की रजिस्ट्री होती है तब एक बन्दूक बड़ों के नाम लिखाई जाती है आधी लड़कों के नाम। मैं अभी रूडी से बात कर ही रहा था कि देखा प्रिंसिपल कभी उँगली होठों पर रखकर, कभी बाँह फैला कर, मेरा ध्यान आकृष्ट करने और चुप रहने के निर्देश कर रहा है। उसने मुझे बताया कि आपरेटर बराबर बात सुनता रहता है और यदि किसी ने यथावस्थित स्थिति को बदलने के विषय में कोई बात की तो 'फ़ोन का 'रिसीवर' रखने के पहले ही पुलिस का हाथ कन्धे पर पड़ जाएगा।' प्रिंसिपल के साथ मैं मोटर में ज़मींदारी की ओर चला।

दोनों ओर कपास के खेत जिनसे रुई चुन ली गई है और उनके किनारे सड़क के दोनों ओर निग्रों की हरी-पीली झोंपड़ियां। बाहर नल हैं जहाँ से निग्रो अपने घरों में पानी ले जाते हैं। एक ओर कुछ दूरी पर एक सफेद इमारत है और उसके दोनों ओर हाल और बरामदे हैं बिल्कुल कमज़ोर। बीच की अपेक्षाकृत ऊँची इमारत चर्च है और दोनों ओर के बरामदे स्कूल के हिस्से हैं। मैंने प्रिंसिपल से पूछा कि मि० एड के बारे में निग्रो-काश्तकारों का क्या ख्याल है ? वे बोले—'बहुत सुन्दर। बेशक, उनको स्वयं कुछ नहीं करना पड़ता क्योंकि सारी क्रूरताएँ और नीचताएँ उनके लिए उनके ओवरसियर कर लेते हैं, मारना-पीटना, जानवरों की नाईं काम में जोतना, जालसाज़ी, बेइमानी सभी कुछ। जहाँ तक निग्रो-काश्तकारों का ताल्लुक है मि० एड निरपराध हैं। वह उन्हें सब कुछ देते हैं, अन्न, वस्त्र, जूते। बड़े दिन के अवसर पर प्रत्येक निग्रो एक बोतल ह्विस्की पाता है। इस देश में शराब पीना मना है इससे किसान साल भर लुक्का चोरी शराब पीते रहते हैं। वह ह्विस्की खुदा की भेजी हुई शराब , सफ़ेद खुदा की। इसी एक बोतल शराब पर, मेरा दावा है, निग्रो साल में एक फ़सल बो-काट लेता है। इसी ह्विस्की के कारण मालिक महान दानी का स्वाँग भरता है और निग्रो-मजूर नक़द पैसा मिलते समय कम-बेशी का सवाल नहीं उठा पाता, जो कुछ मिलता है चुपचाप स्वीकार कर लेता है। उसके अतिरिक्त वह उनका चर्च निरन्तर चालू रखता है, उन्हें धर्म की खुराक पिलाकर सुस्त कर देता है। उसे इसकी परवाह नहीं कि कितने बच्चे स्कूल जाते हैं, और साल में कितनी बार। स्कूल में ज़रूरत की चीजों की नितान्त कमी है। सर्दियों में स्कूल की इमारत बड़ी सर्द रहती है, बसन्त और गर्मियों में बड़ी गरम, और सदा अनाकर्षक। स्कूल खुलने बन्द होने का कोई नियत समय नहीं, वहाँ कोई नियत तातीलें नहीं, वह उसी की इच्छा और हुक्म पर खुलता-बन्द होता है।

अगर रुई चुननी होती है फिर तो तुम्हें और कुछ करने का अवसर नहीं, सब काम छोड़ो और चलकर रुई चुनो। जो सब का हाल है वही स्कूल के विद्यार्थियों और उनके शिक्षकों का भी है।

मैंने पूछा—आपका भी क्या कुछ सम्बन्ध मि० एड से रहा है? प्रिंसिपल ने उत्तर दिया—मैं कभी उनका नौकर था। युद्ध के दिनों उनकी एक 'स्कीम' थी—'विक्टरी' (विजय) तरकारी बोने-उगाने की। पर जब मजूरों-किसानों को अपने काम से ही फ़ुरसत नहीं मिली तब वह योजना छोड़ देनी पड़ी। "आपने छोड़ क्यों दिया?" "मैंने नहीं छोड़ा, मुझे छुड़ा दिया गया। मुझे एक दिन एक चिट्ठी मिली जिसके पते पर मेरे नाम के पहले 'मिस्टर' लिखा था। उसे एक ओवरसियर ने देख लिया। फिर क्या था, उसे आग लग गई। बार-बार थूकता वह मेरे पास आया और पूछने लगा—'आप अपने को क्या समझने लगे हैं जो नाम के साथ मिस्टर जुड़ा आता है? मैंने कहा चिट्ठी मैंने आखिर अपने आप को तो नहीं लिखी (और जिस किसी ने लिखी उसके लिखने का ज़िम्मेदार मैं क्योंकर हो सकता हूँ?' इस पर उसने मेरा वहाँ रहना असम्भव कर दिया और मुझे काम छोड़ देना पड़ा।"

अब तक हम ज़मींदारी के दफ्तर तक पहुँच चुके थे। इमारत लकड़ी की थी सफ़ेद रंग से पुती हुई। उसके गुदाम में मैंने तीन चीज़ें देखीं—१) ऊँचे लम्बे खानों में रखे टोप (हैट) सभी प्रकार के, चौड़े-पतले बार्डर के फेल्ट हैट, पुआल-बांस-बेंत आदि के, बुनी ऊनी टोपियाँ; २) नाना प्रकार के मांस। मुझे दिन में स्कूल में खाए भोजन की याद आई। कितना नीरस भोजन था वह। कुछ आश्चर्य नहीं कि इस आहार में कुछ दम न रहता हो। ३) एक दस वर्ष के निग्रो लड़के को देखा जो बुनी टोपी पहने था जिससे एक लाल फीता बन्धा था। वह झुका मिस्टर एड के लड़के का एक गोरे मित्र के साथ खेलना देख रहा था। दोनों संख्या

जोड़ने वाले मशीन से खेल रहे थे। निग्रो लड़का चुपचाप उनका खेल देख रहा था।

मिस्टर एड के लड़के की अनेक निग्रो लड़कों से दोस्ती थी। वह बराबर उन्हें प्रत्येक त्यौहार या साल-गिरह के दिन कुछ न कुछ दिया करता था। वे उसके आँगन में उसी के खिलौनों से खेलते। अगर उसे अपने दफ्तर से कुछ पैसे मिलते तो उसमें से कुछ वह इन निग्रो लड़कों को दे देता। पर वे स्वयं उसे कभी कुछ नहीं दे सकते थे। बड़े दिन को भी नहीं। सो वह काला लड़का उन गोरे लड़कों का खेल देख रहा था, बस देख रहा था, गोरे लोगों का खेल, गोरे लोगों की मशीन का खेल जिसे गोरे बच्चे खेल रहे थे, गोरे बच्चे उसी की उम्र और ऊँचाई के मि० एड के साहबज़ादे अपने गुरुजनों की परम्परा में बढ़ रहे थे।

प्रिंसिपल और मैं दोनों दफ्तर पहुंचे जहाँ मि० एड कुछ टाइप कर रहे थे। हमें देखते ही उन्होंने कहा 'बस एक सैकंड।' उन्होंने हमें बैठ जाने को कहा, और हम बैठ गए। कहा—'तुम सिगरेट पी सकते हो।' और हम सिगरेट पीने लगे। वह साफ़-सुथरे कपड़े पहिने थे—सफेद कमीज़, गहरा नीला सूट, साधारण टाई। बड़ी सफ़ाई से अंग्रेजी बोलते थे जिसमें दखिनपन तनिक भी न था। 'ए' को वह ज़रा फैलाकर बोलते थे। कालेज में पढ़ चुके थे, डिग्री भी ली थी। चेहरा अब कुछ उम्र से ढीला हो चला था। नीली आँखों पर चांदी के फ्रेम का चश्मा चढ़ा था। तोंद मेज़ को छू रही थी। भद्र-व्यवसायी और व्यवहार कुशल लगते थे। टाइप करना खत्म कर अपनी घूमने वाली कुर्सी पर आ बैठे। 'तुम लोगों के लिये क्या कर सकता हूँ?' पूछा। जब डाडसन (बगर नाम के साथ मिस्टर जोड़े) कहकर प्रिंसिपल ने उनसे मेरा परिचय कराया, तब हाथ मिलाने के लिए वे नहीं बढ़े, अपनी जगह से हिले

तक नहीं, चुपचाप मेरा नाम सुन लिया। मैंने उनसे कहा कि मैं नगरों की स्थिति का अध्ययन कर रहा हूँ जहां युद्ध के कारखानों के मजूर मर गए हैं। (उत्तर के नगरों में उनकी संख्या यकायक बढ़ जाने से सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक सारी दिशाओं में नई स्थिति पैदा हो गई है।) इस पर उन्होंने आर्थिक सिद्धान्तों का ग़लत-सही विवेचन शुरू किया। पर बात करते समय उन्होंने जातीय प्रसंग को सर्वथा दूर रखा। वे इतना बोले, इस अधिकार से बोले, इतना भयानक बोले कि मेरे लिए कुछ बोलना फिर बाक़ी न रह गया। मैं बोलने की हिम्मत न कर सका। तब मैंने उस बात को वहीं छोड़ कपास ओटने वाली मशीन और मजूरों पर उसके भावी प्रभाव की बात उनसे पूछी। उन्होंने कहा कि दक्षिण का पूर्णतः औद्योगीकरण होना चाहिए क्योंकि कपास जो कभी बादशाह था अब गुलाम होता जा रहा है। फिर चीन और रूस जो अब तक हमारी रूई ख़रीदा करते थे अब स्वयं कपास बोने काटने लगे हैं। इस लिये दक्षिण को अब दूसरी फ़स्लों पर ध्यान देना चाहिये, मवेशी पैदा कर उनका रोज़गार करना चाहिये। मैंने स्वयं यह काम शुरू कर दिया है। अभी एक मिनट में तुम्हें दिखाता हूँ। जो लोग रूई के व्यवसाय से बेकार हो जाएँगे वे नई फ़स्लों और उद्योगों में जाएँगे। अरे, क्वेकर ओट्स वाले अभी से दक्षिण में अपने कारखाने खड़े करने का इन्तज़ाम बांधने लगे हैं। मुझे रूडी का एक क़िस्सा याद आया। एक नाई ने उस से कहा था—"देखो रूई का काम कभी नहीं ख़त्म हो सकता। मैं तो भविष्य देख रहा हूँ जब हम रूई तो चाहे दें न दें पर कपास की डँठल और डालों से पलास्टिक बनाएँगे। कपास का ख़ात्मा किसी तरह नहीं हो सकता और जो इसे नहीं मानते निश्चय वे इस अपनी गन्दी नाक के आगे नहीं देख सकते।"

हम तीनों मि० एड की कार की ओर बढ़े। मुझे उन्होंने अपने पास

सामने बैठने को कहा । प्रिंसिपल पीछे बैठे । करीब पन्द्रह मील मोटर से गए । हमने मवेशी देखे, अल्फ़ाफ़ा आदि के नए उगाए पौधे देखे । मि० एड ने अब कालों के प्रति अपनी उदारता और सहानुभूति की बात कहनी शुरू की । उन्होंने पाँच सौ परिवारों के लिए आदि बीमारियों के इलाज के लिये अपने अस्पताल की बात कही । (यह अस्पताल वास्तव में दफ्तर के ही एक चूना पुते कमरे का नाम था) उन्होंने कहा कि अब मैं दूर के केबिनों (निग्रो के रहने की झोंपड़ी) को सड़क के किनारे ला रहे हैं, जिससे वे उन्हें बिजली का लाभ दे सकें । मैंने फिर नल, चूल्हे और अंगीठी आदि की बात पूछी । अपने स्कूलों के कार्य से वे विशेष संतुष्ट थे । (बाद में मैंने उन्हें अन्दर से देखा । मुझे यह देखकर खासी शर्म लगी कि कोई इन हिलती-डुलती इमारतों को स्कूल के लिये पर्याप्त समझ सकता है । बच्चे प्रायः नंगे थे, चिथड़े लपेटे, दीवारें और फ़र्श दरारों से भरी थीं । हर कमरे में एक गोल अंगीठी थी पर मुझे उनसे आँच या गर्मी का आभास तक न हुआ । अध्यापक दयादार थे और विनम्र । मैंने पाखाने देखे, केवल एक प्रत्येक स्कूल के लिए बना था । इनमें दो-दो बैठने की जगहें थीं जिनका इस्तेमाल लड़के-लड़कियाँ दोनों समान रूप से करते थे । वहाँ कहीं चूना न था, कागज़ न था, समाचार पत्रों के टुकड़े तक नहीं ।) हम फिर हाई स्कूल पहुँचे जहाँ मैंने जीवन का सबसे शालीन सूर्यास्त देखा । सूर्यास्त के रंग गरम देशों के से थे, गाशिन के चित्रों की तरह । पैरों में अखबार लपेटे (सर्दी के कारण) हाथ में दूध की बाल्टी लिये एक काली औरत चली जा रही थी । स्कूल के फाटक पर मैंने एक दूसरी औरत देखी । उसने सर्दी से बचने के लिये कपड़ों की कई पर्तें पहन रखी थीं, पर उसके पास कोट न था । ऊपर का पहनावा बैंजनी कैलिको का बना था, जिस पर हरी छींट की छपाई थी । सिर में वह एक लाल ऊनी टुकड़ा

बाँधे थी और उसके ऊपर एक मर्दानी हैट पहन रखी थी। मिस्टर एड ने बिलकुल उसकी बगल में ही गाड़ी रोकी। जब तक वे उससे दक्खिणी-जीवन की द्वयर्थक भाषा में बात करते रहे मैं उस अभागी औरत को बराबर देखता रहा।

बुढ़िया का चेहरा गंभीर, भारी, रंजीदा था। नाक के चारों ओर गढ़े से पड़े थे। कानों से ठुड्डी तक गहरी विषाद भरी सी रेखाएँ खिंच गई थीं। आँखों की सफेदी पीली-बादामी थी और पुतलियों की जगह जैसे काली मिर्चें रखदी गई थीं। वह अत्यन्त काली थी। उस पर उसने पाउडर और 'रूज' लगा रखा था जो जगह-जगह से गिर रहे थे। एक हाथ में उसके एक प्याला था। उँगली से लगातार वह प्याले के भीतर कुछ चला रही थी। मि० एड ने मुझसे कहा कि इधर जब कभी आना हो तो मिलने आ जाया करो। ठीक तभी वह औरत कार की बगल में उस ओर आ पहुँची, जिस ओर मैं बैठा था। उसने खिड़की खटखटाई और मैंने खिड़की का शीशा गिरा दिया। विचित्र भाव से उसने चेहरा बनाया जैसे आबनूस में गहरी लाल दरारें पड़ गई हों। अब जो वह बोली तो ढोके के ढोके शब्द रुक-रुककर लुढ़कने लगे। उसका नाम था मेरी क्रास। उसे सब आन्ट (चाची) मेरी क्रास कहते थे, स्वयं मिस्टर एड भी। उनकी बातें शुरू हुईं—ग़रीब की याचना और अमीर की कमीनी सहानुभूति !

मिस्टर एड—(दक्खिणी लहजे में) हैलो चाची, तुम्हारे लिए कुछ कर सकता हूँ ?

आन्ट०—(बिखरती हँसी हँसती हुई) सलाम, मिस्टर एड, मैंने कहा आप ही हैं।

मि० एड—(हँसते हुए) निश्चय मैं ही हूँ।

आन्ट०—(हँसती हुई) मैं जानती थी आप हैं। मैं आवाज़ से

ही आपकी कार पहचान लेती हूँ। खुश दीखते हैं आज कल।

मि० एड—(हँसते हुए) खुश हूँ।

दोनों हँसते हैं।

मि० एड—कैसी हो चाची ?

वह ज़ोर से हँसने लगती है और तब रुककर खांसती है। उसका चेहरा क्षण भर अत्यन्त करुण हो जाता है पर शीघ्र वह उसे संजीदा बना लेती है।

आन्ट०—मिस्टर एड, हम लोग चर्च में सफेदी कराने के लिए चन्दा इकट्ठा कर रहे हैं।

मि० एड—मगर चाची, हमने तो अभी वह चर्च बनवाया है। उसे रंगने की ज़रूरत क्या पड़ गई ?

आन्ट०—उसे रंगने की ज़रूरत है, मिस्टर एड !

मि० एड—आखिर तुम सब उस चर्च में करते क्या हो ?

आन्ट०—(हँसने का एक सहारा मिला। हँसती है) वही जो सदा करते हैं।

मि० एड—(प्याला देखकर) वह क्या है ?

आन्ट०—चन्दे का प्याला। मिस्टर एड, आपको तो हमारी मदद करनी ही होगी। आन्ट मैम स्टारलिट से मैंने कह रखा है कि मिस्टर एड हमारी मदद करेंगे। वे दयालु हैं, हमारी सहायता निश्चय करेंगे। वह सदा हमारी सहायता करते हैं।

मि० एड—(अपनी जेब में हाथ डालकर ख़रीज़ झनझनाते हुए) पता नहीं तुम लोग चर्च के उस बाहर के रंग को क्या कर देते हो ?

आन्ट०—(हँसती हुई) हवा और मौसिम मि० एड !

मिस्टर एड और आन्ट मेरी क्रास दोनों का यह मज़ाक़ देर तक निबाह सकना असंभव है। (दोनों एक दूसरे को समझते हैं, एक दूसरे

से घृणा करते हैं ।) दोनों केवल भींकते जाते हैं । अन्त में मि० एड एक ख़रीज़ सिक्का निकाल कर उसे थमा देते हैं ।

मि० एड—मैं समझता हूँ इस (पैसे) से दरवाजे का हैंडिल रँग जाएगा ।

आन्ट—निश्चय, मि० एड ! धन्यवाद । भला गाना सुनने इधर कब आ रहे हैं ?

मि० एड—शीघ्र ही, शीघ्र ही ।

आन्ट—अब जा रही हूँ । धन्यवाद, धन्यवाद मि० एड !

वह प्रिंसिपल के घर पहुँची । हँसी ख़त्म हो चुकी थी । मिस्टर एड ने जब गाड़ी चलाई हम घर पहुंचे । आन्ट मेरी ख़ास बिजली के चूल्हे के पास कुर्सी पर बैठी थी । हँसी के साथ चेहरे का रंग भी उड़ गया था, विषाद की रेखाएँ लौट आई थीं । उसकी आँखें बन्द थीं । वह कुर्सी में हिल रही थी और काला हाथ काली गन्दी प्याली को हिला रहा था ।

भगवतशरण

: १३ :

दो दुनियाँ

पार्क स्ट्रीट। आकाश-चुम्बी इमारत। सामने पीतल के भालों वाला कटघरा नुमा रेलिंग, चौड़ा, प्रशस्त संगमरमर का ज़ीना जो इस बात को सिद्ध करता है कि यह कठघरा न तो जेल का है न जंगली जानवरों का।

इसके पीछे हिंस्र जन्तु निश्चय रहता है परन्तु वह चौपाया नहीं स्वयं मनुष्य है जो 'प्राणी का आहार प्राणी' वाले तथ्य को सत्य करता मनुष्य का ही आहार करता है। उसका आवास केवल पार्क-स्ट्रीट में ही नहीं वाल-स्ट्रीट और पाँचवीं सड़क पर भी है, दक्षिणी राज्यों और फ्लोरिज में भी जहाँ उन खेतों की परम्परा है, जिनपर काम करने वाले मनुष्य की आज भी चाबुकों से खाल उधेड़ी जाती है। वहीं अफ्रीका

से भुलावा देकर, छलकर, डाका डालकर, चुराकर जो मानवता लायी गयी थी तब से निरन्तर उन खेतों की धूल में आज भी वह खोई हुई है। वहीं पार्क-स्ट्रीट, वाल स्ट्रीट और पाँचवीं सड़क के अनूठे हिंस्र-प्राणी रमते हैं और अपने भरे-खाली जीवन में दम लेते हैं।

पार्क-स्ट्रीट, वाल-स्ट्रीट और पांचवीं सड़क। इन्हीं सड़कों की विशाल अट्टालिकाओं से प्रतिक्रियावादी सेनेट की धाराएँ प्रस्तुत होती हैं; वहीं अमरीकन राजनीति के सूत्रधार देश-विदेश का बटवारा करते हैं; वहीं संसार के बाज़ारों का तख़मीना होता है; वहीं युद्धों की टकसाल है जहाँ से महासमरों की आवृत्ति के पैगाम दुनियां को सुनाये जाते हैं। इंग्लैंड के प्रधान सचिव ने कभी कहा, 'हम यूरोप की लड़ाई एशिया में जीतेंगे;' पार्क-स्ट्रीट का दानव दुनिया की लड़ाई—जो अमेरिका की लड़ाई है—अपने इन्हीं महलों में जीतता है।

इन्हीं महलों में महत्वाकांक्षी राजनीतिज्ञ, धन की इच्छा करने वाले कंगाल सेनेटर, शक्ति का संचय करने वाले श्रीमान इकट्ठे होते हैं और न केवल अमरीकी राजनीति का अन्तरंग वरन् संसार के कार्य-क्षेत्र सब आपस में बाँट लेते हैं। राष्ट्र-पति और उपराष्ट्र-पति, राज्यों के गवर्नर आदि सभी यहीं बनते-बिगड़ते हैं और यहीं राष्ट्रों के दांव खेले जाते हैं।

उसकी दिनचर्या क्या है? वह उठता है, घण्टी बजाता है। सैक्रेटरी आता है, सामने काग़ज़ रख देता है जिसपर अंक बने हुए हैं, अनगिनत संख्याएँ जिनका अन्दाज़ करना भी मानव मस्तिष्क के लिए कठिन है पर जिसकी स्थिति का लेखा-जोखा पिछले काग़ज़ों से हो जाता है जिनकी एक परम्परा उस काग़ज़ के नीचे पड़ी हुई है। सैक्रेटरी एक नज़र उन सब पर दौड़ा जाता है। देखना केवल यह है कि अंकों की परम्परा घटी या बढ़ी। अगर घटी तो शामत उनकी जो सैकड़ों मिलों और कारख़ानों का संचालन कर रहे हैं। उन मैनेजरों और सेक्रेटरियों की ख़ैर नहीं

जिन्होंने अपनी नासमझी का परिचय अंकों की कतार की इकाइयों में कमी डालकर दिया है। फ़ोन की घण्टियां चारों ओर बज उठती हैं, चारों ओर हुक्म दौड़ जाता है जिसका मतलब है, 'बर्ख़ास्त'।

और अब घटी हुई अदद का मान पूरा करना है। नये दांव फेंक दिये जाते हैं, नये कारखाने उठ खड़े होते हैं, नयी साज़िशों और शोषणों का आरम्भ हो जाता है जिनका आरम्भ मानवता के अलिखित संविधान में भयानक अपचार है। पर वह सब उसके लिए जायज़ है क्योंकि उसको अपनी संख्या सही करनी है, उसकी कमी पूरी करनी है, बढ़ानी है।

सेक्रेटरी चला गया। ब्रेकफ़ास्ट कर मालिक बैठा और उसके चमकते तिलस्मी कमरे में बुलाये लोग आ बैठे। उसके सामने विदेश में चलते युद्धों के, राजनीतिक-साज़िशों के, इन्सानियत के, ख़रीद-फ़रोख्त के ब्योरे रख दिये गये। पाइप मुँह में है, होठों तले दाहिने कोने में दबा, नज़र ब्योरों पर दौड़ रही है। लोग हैं जो जवाब दे रहे हैं, सफ़ाइयां पेश कर रहे हैं, नाज़ उठा रहे हैं, चाटुकारिता के कतर-ब्योंत चल रहे हैं और इन सबके बीच वह जब-तब मुस्करा देता है, उसकी आंखें जब-तब चमक उठती हैं, पर जब कभी उसके तेवरों में बल पड़ जाते हैं डर की एक लहर कमरे के इस कोने से उस कोने तक सहसा दौड़ जाती है, खड़े अस्थि-पंजर लड़खड़ा जाते हैं।

और वह स्वयं अनूठा जीव है। भारी, नितान्त भारी, लिफ्ट का बोझ अपने आप। गाल फूले जिनमें आंखें धुसी हुई हैं, ठुड्डी का पैनापन मांसलता के कारण ठुड्डी में ही खो गया है और ठुड्डी के नीचे एक के बाद एक अनेक ठुड्डियां जिनका अधोधः विस्तार गर्दन में खो जाता है, उस गर्दन में जिस पर सीने की मांसलता नीचे से अभियान करती है, आरोहावरोह की यह मांसल परम्परा पेट पर समाप्त होती है जो राष्ट्रों का,

भौगोलिक सीमाओं का, इन्सानियत का, जीता जागता मज़ार है, समाधि, जिसकी अग्निमय धौंकनी पवन का वह रूप धारण करती है जिससे पूँजीवाद के रस का परिपाक होता है और जो स्वयं अपनी पराकाष्ठा है।

वह बोलता नहीं केवल घनी भृकुटियों से ढकी, मांसल कपोलों के उभार से अधमिची, आँखें उठा देता है और वह देखने वालों में से किसी को भी बरबाद कर देने के लिए काफ़ी है। वह बोलता नहीं केवल बनैले जानवरों की तरह कभी कभी गुर्राता है। जब कभी उसकी आवाज़ सुन भी पड़ती है उसका अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता क्योंकि उस आवाज़ में ध्वनि तो है पर सदा शब्द नहीं और यदि शब्द हैं तो उनकी कुछ ख़ास इबारत नहीं पर निश्चय उस ध्वनि का अर्थ है जो सुनने वाला समझता है क्योंकि सुनने वाले को मजबूर कर देने की उसमें ग़ज़ब की ताक़त है। उसके नथने जब तब फूल जाते हैं, जब तब सिर के खिचड़ी लोटे बालों के ऊपर से हाथ का पृष्ठ-भाग पीछे की ओर दौड़ पड़ता है; जब-तब वह उन बालों में जैसे अपनी उँगलियों से कुछ खोजने लगता है जो वह सामने नहीं पाता।

सेनेटरों की पंक्ति शीघ्र कमरे में प्रवेश करती है, पिछले दिन की सेनेट की कार्यवाही का विवरण काग़ज़ पर सामने पड़ा है। एक नज़र वह उन काग़ज़ों पर डालता है पर वह कुछ अपनी जानकारी के लिए नहीं, उसकी जानकारी से वह कबका अवगत है क्योंकि उसी की इच्छा से उनका कलेवर बना है, केवल इसलिए कि वह देख ले कि उनकी बुनियादी सूरत और प्रस्तुत 'पास' रूप में कोई अन्तर तो नहीं पड़ गया। परसों जो इशारे हुए थे कल सेनेट ने उन्हें प्रस्ताव का रूप दिया, कल जो इशारे हुए उनको आज देगी और आज जो इशारे होंगे उनको कल। इन संकेतों और इनकी रूपगति-परिणति के अन्तर

के जवाबदेह वे सेनेटर हैं जो सामने खड़े बैठे हैं और जिनकी स्थिति, क्या बाहर क्या सेनेट में, इसी कमरे में निश्चित होती है। अगर अन्तर पड़ गया तो उसके कारणों की खोज होती है और जिन्होंने अन्तर डालने में योग दिया उनके जीवन और जीव्य सुविधाओं पर ग्रहण लगाने का इन्तज़ाम भी यहीं सोच और कर लिया जाता है। अभागा जो इस भयंकर जीव की राह रोके!

लंच। लम्बी मेज़, जिसके सिरे पर वह बैठता है, खाद्य पदार्थों से भरी है। वहाँ क्या है यह कुछ अजब नहीं, अजब यह है कि वहाँ क्या नहीं है। चुने हुए नर नारी जो उसके शिकार या प्रसाद के भाग्यवान हैं वहाँ बैठते हैं। लंच भोजन के लिए नहीं होता कार्य विशेष के लिए होता है। संसार की कौड़ी वहाँ चित्त-पट्ट की जाती है, पतन की सीमा पर लड़खड़ाने वाले व्यक्तियों पर अन्तिम लक्ष्य संधान वहीं होता है क्योंकि लंच निश्चय आहार की परिधि से बड़ी दूर है। वह केवल मरणोन्मुखों पर अन्तिम शर-सन्धान है।

कार्य, निरन्तर कार्य। और जब कार्य नहीं तब कमरे में भाग-दौड़, कभी हल्के हल्के टहलना कभी तेज़। अन्तरंग विचारों के अनुकूल सहसा दौड़ पड़ना। कभी कभी उस मीटर नियन्त्रित कक्ष में भी जाड़ों में (जब कभी वह वहां रहता है) उसे पसीना हो आता है क्योंकि उसकी पेशानी में दूर की जनता कट मर रही है और पास की जनता मजबूर, लाचार है।

कान्फ्रेन्स। पास के बड़े कमरे में। वस्तुतः वह अपने कमरों से बाहर नहीं निकलता। सारी दुनिया वहीं खिंच आती है और वहीं उसकी सम्भाल हो जाती है। जाड़ों में अपनी मेहनत से राहत पाने वह कभी फ्लोरिडा जाता है कभी गर्मियों में दम लेने तटवर्ती जहाज़ों में या समुद्र पार पेरिस की प्रसिद्ध सड़क शाँज़ेलीज़े के क्लबों में और उन क्लबों में वह उन तन्वी अलस-गमना स्तोक-नम्रा आकृतियों को देखता है, जिनको

केवल वह देखता है और जिनसे वह आंखें फेर लेता है। मानव की आकृति उसकी आंखों में, उसके दिमाग़ में केवल डालर की आकृति है और उसी डालर की टकसाल की ओर वह फिर लौट पड़ता है—पार्क-स्ट्रीट।

संध्या समय शराब ढलती है; उसे प्रसन्न करने के सामान सैकड़ों-हज़ारों तरीकों से संचालित होते हैं पर उन सब को छेद उसकी आँखें अपने इष्ट पर जा लगती हैं — डालर पर। उसने अपने शरीर के स्वभाव को बदल डाला है। वैज्ञानिकों का कथन है कि परिस्थितियां मनुष्य को मजबूर कर देती हैं, फलतः मनुष्य परिस्थितियों का दास है, पर वास्तव में ऐसा है नहीं। परिस्थितियाँ यहां उसकी दास हैं। कहते हैं रावण ने देवताओं को बाँध कर लंका में रख लिया था और उनसे वह अपनी वैयक्तिक सेवा कराता था; देवियां उसके प्रसादन के लिए नृत्य करती थीं और देव अनुनय। रावण के उस पौरुष में जिसे सन्देह हो वह पार्क स्ट्रीट के इस विलक्षण जीव को देख ले। उसे सन्देह नहीं रह जायगा कि कितने राष्ट्र-नायक, कितने मार्शल, कितने दार्शनिक उसके इशारों पर नाचते हैं।

वह देख रहा है कि अंग्रेज़ी साम्राज्य के तार अब ढीले हो चले हैं, एशिया जाग उठा है और कहीं वह अपने पैरों पर खड़ा न हो उठे, इस से वह कुछ करेगा, ऐसा कुछ, जिससे यूरोप की युद्ध-मर्दित जनता कराहती रहे, जिससे नये युद्ध की तैयारियों में संसार के राष्ट्र शस्त्रीकरण में जुट जांय, जिससे उसके अस्त्रों के कारखाने विध्वंसक अस्त्र उगलने लगें। रात की उसकी बैठकें अक्सर संसार की इसी स्थिति-विशेष को परखती-संजोती हैं।

निर्माण, विध्वंस, निर्माण। निर्माण वह जो मनुष्य ने किया अपने बनैलेपन से निरन्तर दूर होता हुआ, अपने जीव्य साधनों और उनके उत्पादन के ज़रियों में उन्नति करता हुआ; विध्वंस वह जो पार्क-स्ट्रीट का

'वह' अपने कारणों से चरितार्थ करता है कि निर्माण फिर हो। पर निर्माण कैसा ? निरन्तर उठती और निरन्तर गिरती इकाइयों का जिसमें प्रयास तो होता है, स्वेद और लहू बहता है, पर प्रगति नहीं होती। मनुष्य लौट लौट कर अपने बनैलेपन का शिकार होता है।

अगर कोई कहे कि धर्म की अनेक संस्थाएँ वह चलाता है तो किसी को शायद इसमें सन्देह न हो क्योंकि सैकड़ों हज़ारों 'फ़ौन्डेशन' उसके हैं जहां से नित्य मानवता के नाम पर करोड़ों अरबों की संख्या में धन बांटा जाता है; परन्तु कोई अगर कहे कि इन्हीं संस्थाओं से उसी के इशारे से संसार में, विशेष कर उसके अपने देश में, सैकड़ों ऐसी संस्थाएँ चलती हैं जिनका कार्य धर्म-विरोधी है तो निश्चय कोई विश्वास न करेगा। दृष्टान्ततः शायद ही कोई इसे मानने को तैयार होगा कि अनेक संस्थाएँ ऐसी भी वह चला रहा है जिनका उद्देश्य अपचार और अनाचार फैलाना है। उस का यह कार्य धर्माधर्म की परस्पर विरोधी अन्तरविरोधी द्वन्द्व को रूप देता है। सहसा अनन्त कीमत के गोदाम में आग लग जाती है, सहसा मोहल्ले में किसी की बीवी को कोई भगा कर ले जाता है, सहसा सिनेमा हाल में कोई खड़ा होकर अपने अभद्र व्यवहार से एक विचित्र स्थिति पैदा कर देता है, सहसा एक भीड़ किसी निग्रो को राजमार्ग पर घूसों और थप्पड़ों से मार डालती है, सहसा न्यूयार्क में पिछली रात चोरी की संख्या कल्पनातीत रूप धारण कर लेती है, सहसा सामान से भरे जहाज़ समुद्र में डूब जाते हैं, सहसा पैसेन्जरों से भरे वायुयान कुहरे से ढके देश में काल्पनिक पहाड़ों की चोटियों से टकरा कर चूर चूर हो जाते हैं, सहसा अध्यात्मतः नंगे दार्शनिकों का धावा नगर विशेष पर हो जाता है — जिनकी लम्बी चौड़ी खबरें अखबारों में छपती हैं और वह अपने उसी कमरे में रेडियो सुनता कभी कभी अखबारों की खबरों पर नज़र दौड़ाता मुस्करा देता है। इन सारी खबरों की आवश्यकता है उसे। सदाचार और पापाचार की

संयुक्त स्थिति का क़ायम रहना उसके हक़ के लिए आवश्यक है। और इसी लिए उस धन का अनेकांश उस दिशा में स्वाहा होता है जिसके क्षितिज पर नित्य उसके सूरज-चांद उदय होते हैं।

× × ×

सेनेटर, धनी वणिक, उच्च मध्यम वर्ग। इनके सब काम नपे-तुले हैं। सबका ठीक समय है, सबकी नियत मात्रा। सेनेटरों में अधिकतर ऐसे हैं जो राजनीति को पेशा मान कर कार्य करते हैं। बहुत थोड़े ऐसे हैं जो अपने सम्मान, महत्वाकांक्षा या जनसेवा के विचार से सेनेट की सदस्यता के लिए खड़े होते हैं। इन सब में अधिक संख्या उनकी होती है जो उस पहले वर्ग के अकिंचन सेवक हैं जिनका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। वह पहला वर्ग संसार की प्रत्येक स्थिति में देश-विदेश के शरीर की प्रत्येक नाड़ी पर अपना शिकंजा रखना चाहता है और अपने साधनों के संगठन द्वारा वह ऐसा करने में काफ़ी सफल भी हो चुका है।

सेनेटर साधारणतः बिस्तर से उठते ही नित्य दो-चार समाचार पत्र देख लेता है, नित्य कुछ पत्रों के उत्तर दे लेता है, नित्य प्रगति के विरोधी दलों से कुछ कह-सुन लेता है और नित्य अपनी स्थिति क़ायम रखने के लिए प्रतिगामी शक्तियों के साथ अनुकूल परामर्श कर लेता है। पत्र और पत्रों के सम्पादक एक प्रकार से उसके हाथ की कठपुतली हैं। जिस अर्थ में हम अपने इस प्रायः प्रतिगामी देश में भी पत्रों की उदारता और उन की सहज स्वतन्त्रता का अनुमान करते हैं वह उस देश में सर्वथा अप्राप्य है। पत्रों की नीति सम्पादक नहीं बनाते, सम्पादक तो खैर कहीं नहीं बना पाते, नीति पत्रों के मालिक बनाते हैं और मालिक प्रायः उसी पहले वर्ग के हैं जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। जो भी हो 'पब्लिक ओपीनियन' (जनमत) जैसी कोई चीज़ वहां नहीं क्योंकि जनमन पत्रों का मत है और पत्रों का मताधिकार उनके स्वामियों का है। इधर के दिनों में सेनेटरों का

अधिकाधिक प्रयास युद्ध के अनुकूल भावना देश में उत्पन्न करना रहा है और उन्होंने सेनेट के बाहर का अपना प्रायः सारा समय उसी कार्य में लगाया है। इन सेनेटरों में अनेक बड़ी बड़ी फ़र्मों के मालिक, कम्पनियों के डाइरेक्टर, जहाज़ों के स्वामी हैं और शेयर-मार्केट में भी उनका बड़े से बड़ा हिस्सा है। अनेकों बार तो वे पत्रों के भी स्वामी हैं जिस कारण उनको निर्वाचन-क्षेत्र में बड़ी आसानी हो जाया करती है।

पुराने रिटायर्ड जनरल और आज के युद्धों के फ़्रन्ट पर लड़ने वाले जनरलों का भी इन सेनेटरों की ही भाँति अमेरिका में विशिष्ट स्थान है। कई तो जनता के लाडले हैं और उनका यह लाडलापन अनेक सेनेटर अपने पत्रों द्वारा प्रस्तुत करा देते हैं। अनेक सेनेटरों और जनरलों में चोली-दामन का साथ है क्योंकि आखिर कोई जो उस देश में महत्त्वाकांक्षा रखता है सेनेट का सद्भाव प्राप्त किये बगैर अपना मनोरथ पूरा नहीं कर सकता। सेनेट जहां एक ओर राजनीति में सर्वेसर्वा है वहाँ स्वयं वह महावणिकों का गुलाम भी है और अनेक रूप से उनका स्वार्थ-साधन भी उसका काम है। जनरल—अवकाश प्राप्त और सक्रिय दोनों—आज अमेरिका में निरन्तर 'कान्सक्रिपशन' की तैयारियों में लगे हैं उसका प्रचार कर रहे हैं। युद्ध में उनकी और महावणिकों की समान आस्था है, समान अभिरुचि है क्योंकि एक का युद्ध में सर्वस्व केन्द्रित है दूसरे का उससे बहुत कुछ लाभ है। महावणिकों के अस्त्र-कारख़ाने अपनी प्रगति युद्धों की प्रगति के अनुकूल ही क़ायम रख पाते हैं इसलिए उनकी स्थिति के लिए युद्धों का जारी रखना भी आवश्यक है। इधर अमेरिका में कोरिया के से अकिंचन राष्ट्र के साथ युद्ध के सम्बन्ध में जो विशेष दिलचस्पी ली जाने लगी है और आत्मरक्षा के एक अभिनव आतंकवाद की लहर उठा दी गयी है उसका एक मात्र कारण जनरलों और महावणिकों का स्वार्थ था। जनरल और सेनेटर अधिकतर होटलों

में रहते हैं, एस्टोरिया में, एसेक्स में और उन अनेक ख्यातनामा होटलों में जिनका नाम लोगों के दिलों में घृणा, डर और आंखों में चकाचौंध पैदा कर देता है और जिनकी आमदनी का कोई न कोई औसत वणिकों, सेनेटरों और उन जनरलों की धनसंख्या भी बढ़ाता है।

और ये होटल। इनकी मंजिलें, कमरों की परम्परा, तड़क-भड़क, शान-ओ-शौकत। दिन में इनमें कुछ खास चहल-पहल नहीं होती क्योंकि श्रीमान अपने कामों पर सुबह ही निकल जाते हैं, नौ बजे ही, और फिर शाम को जब वे लौटते हैं होटलों की दिनचर्या शुरू होती है। हाँ लंच का वक्त ऐसा ज़रूर होता है जब इनमें खासी चहल-पहल हो आती है। जब मित्र राजनीतिज्ञ और व्यवसायिक साझेदार अतिथि बनकर होटल के लन्च में शामिल होते हैं। पर वास्तविक शालीनता इनकी शाम को रूप धारण करती है जब बिजली की लाखों बत्तियाँ सहसा एक साथ जल उठती हैं। यद्यपि एक खासी तादाद में दिन में होटलों में भी आफ़िसों की ही भांति बिजली की बत्तियों का जलना वहां साधारण बात है। शाम से ही खाने का उपक्रम शुरू हो जाता है, रात का खाना अमेरिका में ६ बजे ही सम्पन्न हो जाता है। सुबह कुछ लोग बेड-टी या काफ़ी के ही आदी होते हैं और अधिकतर लोग आठ बजे ही सुबह का जलपान करते हैं, ब्रेकफास्ट। नौ-साढ़े-नौ बजे दुकानें खुलने लगती हैं, फ़र्म और कम्पनियाँ काम करने लगती हैं, आफ़िस खुल जाते हैं, साढ़े बारह बजे अधिकतर लन्च होता है। अमेरिका में तीसरे पहर चाय या कॉफी साधारणतया नहीं पी जाती वैसे तो वहां शराब के अतिरिक्त कॉफी के भी मिनट मिनट पर दौर चलते हैं। और शाम के खाने के बाद भी शराब के दौरों या कॉफी के प्यालों का तांता नहीं टूटता। होटलों में विशेषकर एस्टोरिया आदि में शाम के भोजन के बाद रात का जीवन शुरू होता है। मित्रों के जिन में मर्द और स्त्री समान रूप से भाग लेते हैं, वासना भरे गुप्त परन्तु

नितान्त विच्छृंखल गोष्ठियाँ, रंग-रास और नाच दो-दो बजे रात की सुबह तक होते रहते हैं जहाँ संसार का कोई व्यापार अछूता नहीं बच रहता। न्यूयार्क हालीवुड नहीं पर अमेरिका का कौनसा नगर है जहां हालीवुड का छोटा बड़ा संस्करण न होता रहता हो; जहाँ चित्र-तारिकाएँ लोगों के जीवन में विकलता और तन्द्रा न उपस्थित कर देती हों; जहाँ चर्च की संरक्षा में सम्पादित विवाहों से निर्मित गृह टूक-टूक न हो जाते हों।

उच्च मध्यवर्ग के नागरिक व्यापार आदि से ऊँची नौकरियों आदि से अवशिष्ट अवकाश सुख की खोज में बिताते हैं। सुख की यह खोज विविधमयी होती है जिसमें दार्शनिक नग्नता से नग्न दार्शनिकता तक सब कुछ शामिल होता है। फ़िल्मों की दुनियां में जो कुछ भी निरूपित होता है उसका अधिकांश यही जनसमुदाय प्रस्तुत करता है। इसी की अठ-खेलियां देश देशान्तरों में अमरीकन जीवन के नाम पर प्रसारित होती हैं और शायद यही आधुनिक अमेरिका के तथा-कथित सामाजिक जीवन की रीढ़ है। उसको रुपये की चिन्ता नहीं और उसकी लगन अच्छे-बुरे सभी कामों में है यद्यपि जीवन का साधारणीकरण और विशेषतः अपने सुखी जीवन का, उसके वश की बात नहीं और इसी से वह उसे सम्पन्न करने की कभी चिन्ता भी नहीं करता। हाँ, जब तब ही नहीं अक्सर वह सिमेनरियों, धर्माचारों, अस्पतालों, रेड-क्रास सोसाइटियों और इसी प्रकार के और सार्वजनिक कामों में दिलचस्पी लेता है। यद्यपि जन-साधारण की उस दिशा में कोई प्रगति नहीं हो पाती क्योंकि न जन-साधारण उसका है न वह जन-साधारण का।

निम्न मध्यवर्ग अमेरिका की पूंजीपति सरकार के लिये सिर-दर्द और बाहर वालों के लिये एक अबूझ पहेली है। कहते हैं वह मध्यवर्ग, जिसे हमने यहां निम्नमध्यवर्ग कहा है, सुखी है

और उसी का सुख अमेरिका संसार में भी आदर्श मानकर दूसरों को लभ्य कराना चाहता है। उसीके सुख-साधनों को दृष्टान्ततः सामने रख दूसरे देशों में वह प्रयास भी कर रहा है, यद्यपि उस प्रयास की परोपकारिता के पाये किस प्रकार सोने चाँदी के पाये हैं यह पार्क-स्ट्रीट और वाल स्ट्रीट के भेद की ही बात अब नहीं रह गयी है। यह तथाकथित मध्यवर्ग जो वस्तुतः निम्नकोटि का मध्यवर्ग है साधारणतः सम्पन्न कहलाता है क्योंकि उसके पास मोटर है। गृहस्थ के घर में 'अपार्टमेंट' (रहने के कमरे) हैं, रेफ्रेजरेटर है, रेडियो है और सभी कुछ। परन्तु कोई उससे पूछे कि वह सभी कुछ मोटर, अपार्टमेंट, रेफ्रेजरेटर, रेडियो क्या सचमुच उसी का है, तब शायद वह चुप हो जायगा, क्योंकि वह जानता है कि इनमें से हर एक और प्रायः सभी कुछ किराये का है अथवा इन्स्टालमेंट का, और जो सभी कभी शायद उसका नहीं हो पाता, मृत्यु तक नहीं।

इस निम्न वर्ग में बेइन्तहा संख्या उनकी है जिनकी आय दो हज़ार डालर (प्रायः ६७५० रुपये) से कम है और जिसकी विज्ञप्ति तथा संभाल की योजना अमरीकी सरकार ने अभी-अभी प्रकाशित की है, और जो उस सरकार के लिए आज एक बड़ी जटिल समस्या बन गयी है। और यह तो उन नागरिकों की स्थिति है जिनकी कुछ आय है। चाहे दो हज़ार ही डालर क्यों नहीं यद्यपि इन्हीं में शामिल स्कूलों और कालेजों के साधारण वर्गीय वे अध्यापक-अध्यापिकाएँ भी हैं जिनका वेतन २०० प्रतिमास के लगभग है और जिनका वेतन-वृद्धि का आन्दोलन आज भी वहाँ चल रहा है। यह स्थिति तो उनकी है जो सुबह से शाम तक अपना पेशेवर काम करते हैं और रात या दिन के अवकाश के घण्टे उदरपूर्ति के दूसरे साधनों को प्रस्तुत करने में लगाते हैं, जो चर्खी की भांति विश्राम की ओर पीठ कर निरन्तर चलते रहते हैं, जिनके पास त्योहारों पर बर्तने के लिए चीज़ें ख़रीदने को न तो मूल्य है और न सामाजिक मरासिमों को

सम्भालने के लिए द्रव्य। इनके पास फिर भी काम है पर उनके लिए संसार को समुन्नत करने के सपने देखने वाले इन अमेरिकन राजनीतिक श्रीमानों में कुछ करने की सद्भावना क्यों नहीं उत्पन्न होती यह अचरज की बात है। उस सरकार का अपना प्रकाशन है कि अमेरिका में साठ लाख बेकार प्राणी हैं। इनमें से अब शायद कुछ युद्ध में बेकार हो गये होंगे और शायद इसी लिए, अवांछित जनता को खपा देने के लिए युद्ध की अमेरिका को निरन्तर आवश्यकता भी है। फिर युद्ध में पशु-बलि के लिए इन बेकारों की भी देश में आवश्यकता है इस लिए ये बेकार-बेकार हैं।

और इन बेकारों की संख्या निश्चय साठ लाख ही नहीं। यह मानी हुई बात है कि अमेरिका की चालीस फ़ी सदी जनता दयनीय स्थिति में रह रही है जिसके अधिकांश के सिर के ऊपर न छत है, न बदन पर सही कपड़े, न जीवन-यापन के लिए कोई लभ्य साधन। वहां ऐसे लोगों की भी एक संख्या है, और अच्छी खासी, जो और जिनके बच्चे होटलों और रस्टोरैन्ट के दस्तरख़ानों पर छूटी हुई जूठन अन्यथा नहीं मानते, यद्यपि वह भी उनको मुयस्सर नहीं हो पाती। और यह तब जब उस जादू के देश में चीज़ों की अफ़रात है, इतनी अफ़रात कि कंगाल विदेशी उनकी बरबादी देख दिल पर हाथ रख लेता है। उस देश में वर्गों का यह वैषम्य सामाजिक अध्ययन का एक असाधारण क्षेत्र उपस्थित करता है। संसार की आवश्यक क्रय-विक्रय की दर को क़ायम रखने के लिए कपड़ों और खाद्य पदार्थों का भट्टी में झोंकना भी उसी देश के लिए सम्भव है जो संसार के कंगालों को जीवन का स्टैन्डर्ड देने की नित्य चिन्ता करता रहता है—यद्यपि स्वयं उसकी पाताल गाड़ियों के स्टेशनों में चार-चार छः-छः की तादाद में बाहर की हिमगत सर्दी से बचने के लिए एक साथ चिपके रहना सामान्य दृश्य है। प्राणी जिनके बदन पर लबादा नहीं, सूट,

नहीं, कोट नहीं केवल जाकेट और पतलून है, और यह दोनों भी ऊन की नहीं ज़ीन की बनी होती हैं!

इनसे परे निग्रो जाति की नागरिकता है जो अमेरिका के जनतन्त्रवाद की हज़ार कसमों के बावजूद भी आज इस पर व्यंग्य अट्टहास कर रही है। न्यू यार्क के दक्षिण से लगा निग्रो नगर हारलेम इस प्रकार का कुछ अकेला ही नरक नहीं अनेकों में से एक है जहां मानवता पशुता से किसी प्रकार कम नहीं और जिसका उत्तरदायित्व एकमात्र उस राष्ट्र पर है जिसके विश्व-विद्यालयों में प्रायः सर्वत्र 'ह्यूमैनिटिज़' पर वैज्ञानिक खोज होती रहती है! काग़ज़ के ऊपर संविधान में, निग्रो जाति को सब कुछ उपलब्ध है, कुछ भी अलभ्य नहीं पर इसके निश्चय कुछ माने हैं कि उस राष्ट्र के लाखों राजपुरुषों में एक भी निग्रो नहीं। इसका निश्चय एक सामाजिक निष्कर्ष है कि निग्रो बच्चों को समान रूप से देख-भाल करने की शर्त पर दान की घोषणाओं को संस्थाएँ उपेक्षित कर देती हैं क्योंकि उन्हें उन बच्चों को अपनी संरक्षकता में लेना स्वीकार नहीं।

वह दुनिया निश्चय दूसरी है जो एक ओर प्रशान्त सागर से घिरी है दूसरी ओर अतलान्तिक से पर जो संसार के सारे राष्ट्रों तक, उनके अर्थ और दर्शन पर हावी है क्योंकि अर्थ वह आधार है जिस पर दर्शन और राजनीति दोनों टिकते हैं। वास्तव में दर्शन और राजनीति दोनों अर्थ के ही प्रसार हैं उसी रूप में जिस रूप में कि समाज के अन्तरंग और बहिरंग गुप्त और स्पष्ट अर्थ के मूर्त कलेवर हैं।

भगवतशरण

: १४ :

रक्त का ताण्डव

रक्त का यह ताण्डव न काली का है न शिव का बल्कि अमेरिका का है, जापान की ज़मीन पर। हिरोशिमा और नगासाकी में।

अमेरिका ने अभी-अभी योशिदा के जापान के साथ संयुक्त-राष्ट्र-संघ के नाम पर एक संधि की है, दूसरी अपनी, केवल अपनी, अलग से। इन संधियों में चीन का नाम नहीं, इन से चीन का कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि वह जापान से किसी की होने वाली सुलह का सही साझीदार होगा। इन सन्धियों का बुनियादी कारण है वह अणुबम जिसने हिरोशिमा और नागासाकी को तब बरबाद कर दिया जब लड़ाई का दैत्य अपने आख़िरी पैरों पर खड़ा था और जो बग़ैर हुए भी अब खड़ा नहीं रह सकता था। पर अमेरिका को अणुबम का प्रयोग जो करना था और

वह रूस की तरह फैले जनहीन मैदानों में नहीं बल्कि घने आबाद नगरों में इन्सान के ऊपर !

हिरोशिमा की बरबादी का हाल यह आँखों देखा है, रेवरेन्ड फ़ादर सीमिज़ का जो उस नर-प्रलय का स्वयं दर्शक था, जिसने जीवन को तिल-तिल वहाँ मिटते देखा, जिसकी आग आज भी आस-पास वालों को झुलस देती है।

वही हिरोशिमा—१६४५ का छठा अगस्त। रेवरेन्ड सीमिज़ लिखता है—

६ अगस्त तक हिरोशिमा पर समय-समय पर बम गिरते रहे थे परन्तु उनसे कुछ ख़ास नुक़सान न हुआ। आस-पास के अनेक नगर बमबाज़ों ने बरबाद कर दिये थे; मगर हिरोशिमा अब भी बचा था। उसके ऊपर जब तब जहाज़ मँडराये थे पर उन्होंने बम न गिराये थे। हिरोशिमा के नागरिक ताज्जुब करते थे—आख़िर क्या वजह है कि अब तक उनको किसी ने न छेड़ा और वे, केवल वे, बम की भयानकता से बच रहे हैं। अफ़वाहें उड़ीं कि उस नगर के लिए दुश्मन ने कुछ ख़ास तय कर रखा है परन्तु किसी को कभी उस मुसीबत का गुमान भी न था जो एकाएक ६ अगस्त की सुबह उस विशाल नगर पर फूट पड़ी।

६ अगस्त की सुबह गर्मियों की थी, चमकती तेज़ धूप लिये। करीब सात बजे रोज़ की तरह हवाई हमले का एक एलार्म हुआ और कुछ जहाज़ नगर के आसमान में दिखाई पड़े। कोई उनकी ओर आकृष्ट न हुआ और करीब आठ बजे 'आसमान साफ़ है' का एलार्म दगा। नागत्सूके की जीसस की सोसाइटी में बैठा हुआ हूँ। पिछले छः महीनों से हमारे मिशन का एक भाग टोकियो से यहाँ आ गया है। हिरोशिमा से अपनी सोसा-इटी का भवन प्रायः दो किलोमीटर है, सागर तट पर बसे नगर और घाटी की इस पहाड़ी दीवार के बीचों-बीच। इस घाटी के बीच से होकर

एक नदी भी बहती है। मेरी खिड़की से घाटी और नगर का दृश्य बड़ा सुहावना दीखता है।

आठ बजकर चौदह मिनट हो चुके हैं। एकाएक सारी घाटी धुँधली रोशनी से भर जाती है। रोशनी बहुत कुछ उस से मिलती है जिसका हम फ़ोटोग्राफ़ी में इस्तैमाल करते हैं और अब मुझे गरम हवा का एक झोंका लगता है। जैसे गरमी की एक धारा मुझे छू लेती है। मैं उछल कर बात समझने के लिये खिड़की के पास खड़ा हो जाता हूँ। पर सिवा तेज़ पीले आकाश के कुछ दिखाई नहीं देता। दरवाज़े की ओर बढ़ता हूँ, इसका गुमान भी नहीं होता कि प्रकाश का सम्बन्ध दुश्मन के जहाज़ों से हो सकता है। खिड़की से बम फूटने की सी दूर से आवाज़ आती है और खिड़कियाँ तड़ाक से टूट जाती हैं। प्रकाश और इस आवाज़ के बीच प्राय: दस सेकण्ड बीत चुके हैं। मेरे बदन में कांच के टुकड़े चुभ गये हैं। खिड़की का फ्रेम कमरे में घुस आया है। अब मुझे लगता है कि वह बम या तो सीधा अपनी ही छत पर फूटा है या पास-पड़ौस में कहीं।

सिर और हाथों में जहाँ कांच के टुकड़े लगे हैं वहाँ से रक्त बह रहा है। दरवाज़े से बाहर निकलने की कोशिश करता हूँ पर दरवाज़ा हवा के दबाव से बाहर की ओर सरक गया है और अब बुरी तरह से भिड़ गया है। हाथ-पैरों की निरन्तर चोट से दरवाज़े के एक भाग को तोड़ कर उस हाल में पहुँचता हूँ जिस में मिशन के अनेक कमरे खुलते हैं। हर चीज़ बिखर गई है, अस्त-व्यस्त पड़ी है। सारी खिड़कियाँ टूट गई हैं, सारे दरवाज़े भीतर को घुस आये हैं। किताबों की अल्मारियाँ गिर पड़ी हैं। चूंकि बम फटने की और आवाज़ नहीं सुनता विश्वास होता है कि बम-बाज़ लौट गये। हमारे सारे साथी काँच के टुकड़ों से घायल हैं, कुछ के घावों से खून बह रहा है पर किसी को सांघातिक चोट नहीं लगी। निश्चय हम सब के सब भाग्यवान हैं। वह सामने की दीवार काँच के टुकड़ों से

जगह-जगह फट-फट गई है।

बम कहाँ गिरा है यह देखने हम सब मकान के सामने निकलते हैं। कुछ पता नहीं चलता। बम के गिरने से कहीं ज़मीन फटी हो इसका भी कोई सबूत नहीं; पर मकान का दक्खिन-पूर्वी हिस्सा बुरी तरह टूट गया है। न एक दरवाज़ा साबुत बचा है, न एक खिड़की। आँधी का झोंका दक्खिन पूर्व की ओर से जो घर में घुसा है तो नुकसान काफ़ी हुआ है। पर मकान फिर भी खड़ा है। इसकी बनावट जापानी ढंग की है, लकड़ी के फ्रेम की। पर भाई ओपर के श्रम ने इसे जापानी घरों की भाँति काफ़ी मज़बूत कर दिया है। केवल मकान से लगे गिरजे के सामने के तीन खंभे टूट गये हैं (गिर्जा जापानी मन्दिर की भाँति समूचा लकड़ी का बना है)।

घाटी में नीचे नगर की ओर हम से लगभग एक किलोमीटर दूर किसानों के अनेक मकान और घाटी के सामने के जंगल धांय-धांय जल रहे हैं। हम में से कुछ लपटों को बुझाने में मदद देने चले जाते हैं। जब तक हम लोग चीज़ें सम्हालने की कोशिश करते हैं, एक ज़ोर का तूफ़ान आता है और पानी बरसने लगता है। नगर के ऊपर धुएँ के बादल उठते और मँडराते जा रहे हैं और हल्के विस्फोटों की आवाज़ सुनाई पड़ रही है। मुझे जान पड़ता है कि भयानक विस्फोट के साथ आग लगाने वाले बम बरसाये गये हैं। हम में से कुछ ने आसमान में बड़ी ऊँचाई पर नगर के ऊपर विस्फोट के समय तीन जहाज़ देखे थे। मैंने खुद कोई जहाज़ नहीं देखा। विस्फोट के करीब आध घंटे बाद नगर से घाटी की ऊपर की ओर आदमियों की भीड़ चल पड़ती है; भीड़ लगातार बड़ी होती जा रही है। कुछ लोग हमारे मकान वाली सड़क से हमारे पास पहुँचते हैं। हम उनकी मरहम-पट्टी करते हैं और उन्हें गिरजे के अन्दर ले लेते हैं। गिरजा इसी बीच हम ने साफ़ कर लिया है और जापानी घरों के फ़र्श को साधारणतः ढकने वाली पुआल की चटाइयों

पर हम घायलों को सुला देते हैं। अनेकों की पीठ के किनारों पर भयङ्कर घाव हो गये हैं। हमारे पास जितनी भी थोड़ी चर्बी इस लड़ाई के ज़माने में बच रही थी जले घावों पर लगाने से झट खतम हो जाती है। फ़ादर रैक्टर ने पादरी होने के पहिले चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन किया था और वे इस समय अपने पुराने ज्ञान से यथासम्भव उपचार कर रहे हैं; बड़े मनोयोग से। पर मनोयोग निस्सीम होते हुए भी आख़िर पट्टियों और दवाओं की तो सीमा है। वे झट समाप्त हो जाती हैं। अब हम घावों को धो-पोंछ कर ही संतोष की साँस लेते हैं।

घायलों का ताँता बंध जाता है, एक के बाद एक, बेइन्तहा। जो कम घायल हैं अधिक घायलों को खींचे ला रहे हैं, उनमें घायल सैनिक हैं, माताएँ हैं जो गोद में जले बच्चे लिए हुए हैं। घाटी के किसानों के घरों से ख़बर आती है, "हमारे घर घायलों और मरते हुओं से भरे हैं। क्या कुछ मदद कर सकेंगे, कम से कम अधिक घायलों की सम्भाल करके?" नगर के बाहरी भागों से भी घायल चले आ रहे हैं। उन्होंने वहाँ वह तेज़ प्रकाश देखा था, उनके मकान सहसा गिर पड़े थे और अपने कमरों के रहने वालों को अपने मलबे में समेट लिया था। जो बाहर थे वे सहसा जल उठे, विशेषतः शरीर के नंगे अथवा हलके ढके अंग। जगह-जगह नगर में आग लग गई और वह आग बढ़ती हुई मुहल्लों को भस्मसात् करने लगी। अब ऐसा लग रहा है कि विस्फोट नगर के किनारे जोकोगावा स्टेशन के पास हुआ था जो हम से तीन किलोमीटर दूर है। फ़ादर क्वैप की हमको बड़ी फ़िक्र हो रही है। आज सुबह ही वे ग़रीबों के 'बहनों' के चर्च में 'मास' पढ़ने गये थे। वहीं नगर से सटा बच्चों का एक अनाथालय भी है। और फ़ादर अब तक नहीं लौटे।

दोपहर होते-होते हमारे गिर्जे का हॉल और पुस्तकालय घायलों से भर जाते हैं और यह घायल बुरी तरह घायल हैं। नगर से शरणार्थियों की भीड़

लगातार चली आ रही है। आखिर एक बजे फ़ादर क्वीप 'बहनों' के साथ लौटते हैं। 'बहनों' का घर और पास का सारा मुहल्ला जल कर खाक में मिल चुका है। फ़ादर क्वीप के सिर और गर्दन से खून बह रहा है और उनकी दाहिनी हथेली पर जलने से एक बड़ा घाव हो गया है। मालूम हुआ कि वे भिक्षुणियों के मठ के बाहर खड़े थे और घर लौट ही रहे थे, एकाएक उन्होंने प्रकाश देखा, गरम हवा का झोंका उन्हें लगा और हाथ पर एक बड़ा सा फफोला उठ आया। खिड़कियाँ हवा के झोंकों से टूट गईं। उन्होंने समझा कि पास ही कहीं बम फटा है। उस मठ को भी भाई ग्रोपर ने ही बनाया था। लकड़ी की वह इमारत तो पहले बची रही पर आग जो निरन्तर पड़ोस के मकानों को चाटती बढ़ी आ रही थी, उसे भी देखते ही देखते निगल जायेगी। पानी की एक बूँद कहीं नहीं। शायद घर में से चीज़ें निकाल-निकाल कर खुले में कहीं गाड़कर रख दी जा सकती हैं परन्तु मकान अब लपटों के भीतर है और उसमें रहने वाले लपटों से मार करते भाग रहे हैं नदी के किनारे-किनारे जलती सड़कों के भीतर होकर।

तुरन्त खबर आती है कि सारा नगर विस्फोट से बरबाद हो चुका है और उसमें आग लगी है। फ़ादर सुपिरियर और सैन्ट्रल मिशन तथा पारिश हाउस के तीन और पादरियों का क्या हुआ, नहीं पता। अब तक हमने उनके बारे में नहीं सोचा था क्योंकि यह अन्दाज़ न था कि सारा शहर आग की लपटों में है। फिर हम जब तक निहायत ज़रूरी न हो शहर में जाना भी नहीं चाहते थे क्योंकि हमने सोचा कि नगर की जनता का दिमाग़ बिगड़ा हुआ है और विदेशियों को वे कहीं अपना दुश्मन समझ उनसे अपना बदला न लेने लग जाएं। कुछ अजब न था कि वे हमें दुश्मनों के भेदिये तक समझ लें या कम से कम अपनी मुसीबत को खुशी से देखने वाला ही।

फ़ादर स्टोल्ट और फ़ादर एरलिंधामिन सड़क पर नीचे की ओर जाते

हैं। सड़क शरणार्थियों से भरी है। दोनों सड़क के किनारे पड़े और चलने में असमर्थ घायलों को उठा कर गांव के स्कूल में मरहम-पट्टी के लिये ले जाते हैं। घावों पर आयोडीन तो लगाई जाती है पर घाव धोये नहीं जाते। किसी प्रकार की सही मरहम या घाव धोने के लोशन उपलब्ध नहीं। जो घायल लाये जाते हैं फ़र्श पर डाल दिये जाते हैं; कोई उनकी इससे अधिक मदद या परवाह नहीं कर सकता। जब कोई ज़रिया मौजूद नहीं तो कोई कर ही क्या सकता है ? उस परिस्थिति में तो घायलों को वहाँ लाना ही बेकार था। आने-जाने वालों के पास अनेक घायल पड़े हैं। इस अप्रत्याशित विपत्ति ने अपनी भयंकरता से लोगों को इतना स्तब्ध कर रखा है कि लोग इधर से उधर निरुद्देश्य दौड़ रहे हैं पर किसी को सहायता संगठित करने की नहीं सूझती। उन्हें केवल अपने परिवार के बचाव की फिक्र है। हमें इन दिनों पहली दफ़ा ऐसा लगा कि आने वाली विपत्ति से बचाव के लिये जापानियों में संगठन की चातुरी या तैयारी बिलकुल नहीं। सहयोग से उस मुसीबत में भी कुछ संभाला जा सकता था पर रक्षा का कार्य जापानी नहीं संगठित कर सके और उन्होंने प्रारब्ध को घटने के लिये सर्वथा छोड़ दिया। जब हमने रक्षा कार्य में भाग लेने के लिये उन्हें प्रोत्साहित किया तब वे सर्वदा सब कुछ करने को राजी हुए पर अपने आप वे कुछ विशेष न कर सके। विपत्ति ने उन्हें सर्वथा मूढ़ कर दिया था।

तीसरे पहर करीब चार बजे धर्मशास्त्र का एक विद्यार्थी और किंडर गार्टन स्कूल के दो बच्चे, जो जले हुए पारिश हाउस और पास की इमारतों में रहते थे, आए और उन्होंने बताया कि फ़ादर सुपीरियर लासाल तथा फ़ादर शिफ़र बुरी तरह घायल होगये हैं और नदी के किनारे आसानो पार्क में उन्होंने शरण ली है। प्रगट है कि हमें जाकर उन्हें लाना है क्योंकि वे पैदल यहाँ आने में सर्वथा अशक्त हैं।

हम तेज़ी से दो स्ट्रेचर लेकर सात जन नगर की ओर दौड़ पड़ते हैं। फ़ादर रैक्टर कुछ भोजन और दवा ले आते हैं। जैसे-जैसे हम शहर की ओर बढ़ते हैं बरबादी के भयंकर सबूत मिलते जाते हैं और मलबों के बीच राह बनानी कठिन हो जाती है। नगर के बाहरी ओर के मकान बुरी तरह टूट गये हैं। अनेक गिर चुके हैं और जल-जलकर गिरते जा रहे हैं। नगर के भीतर के मकान भी जल गये हैं। जहाँ नगर खड़ा था अब वहाँ एक जला हुआ विस्तार है। हम अपनी राह नदी तट की सड़क से चल रहे हैं, जलते खण्डहरों और धुआँ फैंकते मलबों के बीच होकर। दो दो बार हमें गर्मी और धूप से भाग कर नदी में उतरना पड़ा।

भयानक रूप से जले हुए लोग हमें इशारों से बुलाते हैं। सड़क के किनारे दोनों ओर मुर्दे पड़े हुए हैं, कुछ ऐसे भी हैं जो निरे मरे नहीं पर मर रहे हैं। नगर के भीतर जाने वाले मिसासी पुल के ऊपर हमें उन सिपाहियों की एक लम्बी भीड़ मिलती है जो जलने से बुरी तरह घायल हैं। वे किसी तरह डंडों के सहारे अपने को घसीट रहे हैं या अपने अपेक्षाकृत कम घायल साथियों की मदद से सरक रहे हैं—अभागों का कितना लम्बा जलूस है यह।

अपनी बगलों पर जलने के बड़े-बड़े घाव लिए सिर झुकाये अनेक घोड़े पुल पर खड़े हैं। उन्हें वहीं छोड़ दिया गया है। दूर उधर सीमेन्ट की बनी जलने से बची अकेली अस्पताल की इमारत खड़ी है। इसका भी भीतरी भाग सारा जल ही गया है परन्तु इसको देखकर राह पाने में आसानी होती है।

अन्त में हम अपने गन्तव्य के द्वार पर पहुँच जाते हैं। वहाँ विशाल भीड़ ने पनाह ली है लेकिन पास के ही पार्क के पेड़ चारों ओर अब भी जल रहे हैं। पुल और रास्ते जले हुए पेड़ों के गिर जाने से बेकार हो गये हैं।

लोग कहते हैं कि जलते हुए नगर की गरमी से पैदा हुई भयंकर आँधी ने इन विशाल पेड़ों को उखाड़ डाला है। अब अँधेरा हो चुका है। थोड़ी-थोड़ी दूर पर लगी आग ही अब कुछ उजाला किए हुए है।

पार्क के दूर के उस कोने में नदी के किनारे आखिरकार हमारे साथी हमें मिलते हैं। फ़ादर शिफ़र ज़मीन पर प्रेत की तरह पीले पड़े हैं। उनके कान के पीछे एक लम्बा घाव है जिससे इतना खून बह चुका है कि हमें उनके बचने में सन्देह होने लगा है। फ़ादर सुपीरियर की टाँग के निचले भाग में एक बड़ा सा घाव है, पर घावों से इतना नहीं जितना थकान से वे निर्जीव से पड़े हैं।

हमारे लाए भोजन को खाते हुए वे हमसे देखी बातों का बयान करते हैं। वे पारिश हाउस के अपने कमरों में थे, सवा आठ बज चुके थे। ठीक तभी हमने भी नागत्सुके में विस्फोट सुना था। जब बड़ा तेज़ प्रकाश हुआ और फर्नीचर, दीवारों और खिड़कियों के टूटने की आवाज़ सुन पड़ी, टूटती दीवारों के टुकड़े और काँच के टुकड़े उन पर बरस पड़े। फ़ादर शिफ़र दीवार के एक भाग से दब गये और सिर में बड़े ज़ोर की चोट आई। फ़ादर सुपीरियर की पीठ में भी टूटे टुकड़े घुस गये जिससे बड़ा रक्त बहा। चीजें सहसा कमरे में चारों ओर बिखर पड़ीं, यद्यपि मकान का लकड़ी का फ्रेम पूर्ववत् बना रहा। भाई ग्रोपर की महनत की मज़बूती एक बार फिर ज़ाहिर हुई।

जैसे नगत्सुके में हमें जान पड़ा था, उन्हें भी जान पड़ा कि बम बिलकुल पास ही कहीं फटा है। गिर्जाघर, स्कूल और पड़ोस के सारे मकान एक साथ गिर पड़े। स्कूल के मलबे के नीचे से बच्चे मदद के लिये चीखने लगे। बड़ी कठिनाई से वे निकाले गये। फ़ादर सुपीरियर और फ़ादर शिफ़र तक ने अपने घावों के बावजूद दूसरों की मदद की और इस बीच अपने शरीर का बहुत लहू खोया।

इसी बीच कुछ दूर पर जो आग जल रही थी वह पास बढ़ती हुई मालूम हुई। ऐसा लगा कि जैसे सभी उसकी लपटों में समा जाएंगे। पारिश हाउस से बहुत सी चीजें जल्दी निकाल कर गिर्जाघर के सामने गाड़ दी गईं। पर अनेक कीमती और जरूरी चीजें उस घबड़ाहट और भाग-दौड़ में खो गईं। अब समय न था और बढ़ती हुई लपटों ने सब कुछ छोड़कर सिवा भागने के और कोई राह न रखी। मिशन के मन्त्री फुकाई होश में नहीं हैं। वह घर छोड़कर जाने को राजी नहीं और कहते हैं कि वे अपनी पितृ-भूमि की वरबादी के बाद जिन्दा नहीं रहना चाहते। उनको किसी प्रकार की चोट नहीं लगी। फ़ादर क्लाइमसोर्ग उन्हें अपनी पीठ पर घर से बाहर खींच लेते हैं और बलपूर्वक फुकाई खींच लाए जाते हैं। बहुत से लोग सड़क के बराबर के मकानों में दबे पड़े हैं और वे बढ़ती आती लपटों से बचने के लिए चिल्ला रहे हैं। पर उनकी कोई मदद नहीं की जा सकती। उनको उनके भाग्य पर ही छोड़ देना होगा। नगर के जिस भाग में पनाह मिलने की सम्भावना है उधर की राह बन्द है। आसानोपार्क मात्र शरण के लिये बच रहा है। उधर ही जाना होगा। फुकाई आगे जाने को तैयार नहीं, अड़कर बैठ जाते हैं, उसके बाद उनकी कोई ख़बर नहीं मिलती। पार्क में नदी के किनारे हम शरण लेते हैं। इसी समय एक भयानक बवण्डर उठता है जो बड़े-बड़े पेड़ों को उखाड़कर हवा में बहुत ऊँचे उछाल देता है और यह बवण्डर जब जल को छूता है तब सौ सौ मीटर ऊँचे पानी का फ़व्वारा उठ पड़ता है। भाग्यवश तूफ़ान की इस भयंकरता से हम बच जाते हैं। कुछ दूर पर ही शरणार्थियों ने शरण ली है। उनका बचाव नहीं हो पाता और उनमें से अनेक तूफ़ान से उड़कर नदी में खो जाते हैं। पड़ोस के सभी लोग घायल हैं और उनके सम्बन्धी गिरे मकानों के मलबों में दबकर नष्ट होगये हैं। घायलों की कोई मदद नहीं हो पाती और वे निरन्तर मरते जा रहे हैं।

जो आस-पास मरे पड़े हैं उनकी फ़िक्र भला कौन करे ?

अपने खुद के घायलों को ढोना हमारे लिए कठिन है। अँधेरे में उनके घावों पर पट्टी करना मुमकिन नहीं और ज़रा सा हिलने से ही उनसे खून बहने लगता है। हम जब उन्हें पार्क के गिरे पेड़ों के ऊपर से अंधेरे में हिलती डोलियों में लिये चलते हैं तब उन्हें असह्य पीड़ा होती है और रक्त की मात्रा बेहद उनके शरीर से निकल जाती है। इस मुसीबत में एक जापानी प्रोटेस्टैन्ट पादरी देवता की तरह हमारी रक्षा करता है। वह एक नाव लेकर आया है और हमारे घायलों को नदी से ले चलने को तत्पर है। पहले हम फ़ादर शिफ़र वाली डोली को नाव में रख देते हैं और दो आदमी उनके साथ जाते हैं। विचार है कि फ़ादर सुपिरियर के लिये नाव को दूसरी बार लौटा लायें। नाव आध घण्टे बाद लौटती है और हमारा दयावान माँझी हमसे उन दो बच्चों की रक्षा करने की प्रार्थना करता है जो नदी में देखे गये हैं। हम उन्हें बचा लेते हैं। उनके शरीर पर अनेक जले घाव हैं। हम उन्हें पार्क में लाते हैं। उनको ठंड लग जाती है और वे तत्काल उसी पार्क में मर जाते हैं।

फ़ादर सुपिरियर को नाव पर उसी प्रकार पहुंचा देते हैं जैसे फ़ादर शिफ़र को पहुँचाया था। धर्मशास्त्र का विद्यार्थी और मैं उनके साथ हो लेते हैं। फ़ादर चीज़लिक नागात्सुके तक हम लोगों के साथ ही पैदल चलने की हिम्मत करते हैं परन्तु फ़ादर क्लाइमसोर्ग इतनी दूर नहीं चल सकते इसलिए हम उन्हें कल ले जाने का वादा कर पीछे छोड़ जाते हैं। नदी के दूसरी ओर से घोड़ों के हिनहिनाने की आवाज़ आती है। आग जो बढ़ती जा रही है उनके ख़तरे का कारण बन गई है। हम किनारे पर उतर जाते हैं। मगर किनारा उन सारे घायलों से भरा है जिन्होंने वहाँ पनाह ली है। वे मदद के लिये चिल्ला रहे हैं क्योंकि उन्हें डर है कि समुद्र के ज्वार के साथ नदी का पानी बढ़ते ही किनारा डूब जायेगा। वे

स्वयं कमज़ोरी के कारण हिल नहीं सकते, पर हम भी रुक नहीं सकते। हम आगे बढ़ते हैं और अन्त में उस जगह पहुंचते हैं जहां फ़ादर शिफर को लिए साथी इन्तज़ार कर रहे हैं।

यहाँ एक रक्षा-दल चावल की रोटियों से भरा बक्स लिए पहुँच गया है परन्तु वहाँ कोई नहीं जो घायलों में उन्हें बाँट सके। घायल चारों ओर पड़े हुए हैं। हमारे आस-पास जो घायल हैं उनको हम रोटियां देते हैं और खुद भी खाते हैं। घायल 'पानी-पानी' चिल्ला रहे हैं और कुछ को हम पानी पिला देते हैं। दूर से मदद मांगने की आवाजें आती हैं पर हम उन खण्डहरों की ओर नहीं जा सकते जहां से आवाजें आ रही हैं। सिपाहियों का एक दल सड़क पर आता है और उनका अफ़सर सुनता है कि हम एक अजनबी ज़बान बोल रहे हैं। झट वह अपनी तलवार खींच लेता है और चिल्ला कर पूछता है कि 'तुम कौन हो?' मार डालने की धमकी भी देता है। फ़ादर लौरेन्स जूनियर उसकी बांह पकड़ लेते हैं और बताते हैं कि हम जर्मन हैं, वह फिर शान्त हो जाता है। पहले उसने सोचा था कि शायद हम अमेरिकन हैं और पैराशूट से उतर आये हैं। शहर में चारों ओर पैराशूट सिपाहियों के उतरने की अफ़वाह फैल रही है। फ़ादर सुपिरियर जो केवल कमीज़ और पतलून पहने थे सर्दी से कांप रहे हैं यद्यपि रात गर्मी की है और शहर गर्मी से जल रहा है। हम में से एक के पास कोट है जो उन्हें दे दिया जाता है। मैं अपनी कमीज़ भी उन्हें दे देता हूँ। मुझे गर्मी में कमीज़ अलग कर देने से आराम मिलता है।

इसी बीच आधी रात हो जाती है। हमारे पास इतने आदमी नहीं हैं कि चार-चार डोलियों को उठा सकें। इसलिए हम पहले फ़ादर शिफर को नगर के बाहर ले जाने का निश्चय करते हैं। वहां से दूसरा दल उन्हें नागात्सुके तक ले जायेगा और यह पहला दल फ़ादर सुपिरियर को लेके लौट आयेगा। मैं भी डोली उठाने वालों में से एक हूँ। धर्मशास्त्र का

विद्यार्थी हमको तार, शहतीरें, खण्डहरों के टुकड़ों आदि से आगाह करने को आगे-आगे चलता है। रास्ता इन सब चीज़ों से भरा है और बार-बार गिर जाने का डर लगता है। फ़ादर कुप्र गिरते हैं और साथ ही डोली भी गिर जाती है। फ़ादर शिफर दर्द से प्रायः बेहोश हो जाते हैं और उल्टी करने लगते हैं। जाते हुए हमने जिस घायल को जलते और गर्म खण्डहरों में देखा था वह अब भी वहीं बैठा है और हम उसे पीछे छोड़ते चले जाते हैं।

मिसासा पुल के ऊपर फ़ादर ताप्पे और फ़ादर लुम्सरे से मुलाक़ात होती है। वे हमारे लिए नागात्सुके से आये हुए हैं। उन्होंने सड़क से पचास मीटर दूर के गिरे हुए घर से एक समूचे परिवार को खोद निकाला। कुटुम्ब का पिता पहले ही मर चुका था। दो लड़कियों को मलवे से खींच कर उन्होंने सड़क के किनारे लिटा दिया था। उनकी माँ अब भी गिरी-धरणों के नीचे फँस गई थी। उन्होंने वह रक्षा का काम पूरा कर हमें लेने आना चाहा था। नगर के बाहर हमने डोली रखदी और दो आदमियों को वहाँ छोड़ भी दिया था कि वे नागात्सुके से आने वालों का इन्तज़ार करें। बाक़ी हम फ़ादर सुपिरियर को लेने लौट पड़े।

अधिकतर खण्डहर जल चुके हैं। अँधेरे ने ज़मीन पर गिरे खण्डहरों को छिपा लिया है। केवल जब-तब तेज़ी से बढ़ते हुए हम उनके गिरने की आवाज़ सुन लेते हैं। हम में से एक कहता है कि उसे जलती हुई लाशों की गन्ध आ रही है। सीधी बैठी शक्ल जिसे हमने खण्डहरों में दो बार देखा था अब भी वहीं है।

हमारी डोली तख़्तों की बनी है और उस पर फ़ादर सुपिरियर को ले जाना बड़ा तकलीफ़-देह है क्योंकि उनका बदन चुभे हुए काँच के टुकड़ों से भरा है। सँकरी राह में एक मोटर आने से हमें सड़क के किनारे की ओर झुक जाना पड़ता है। बाईं ओर से डोली उठाने वाले दो मीटर

गहरी खाई में गिर जाते हैं। फ़ादर सुपिरियर नीरस मज़ाक द्वारा अपना दर्द छिपाने की कोशिश करते हैं लेकिन डोली टूट गई है और उसके टुकड़े उन्हें अब सम्हाल नहीं सकते। हम वहीं रुकना तय कर लेते हैं। किंजी ठेला-गाड़ी लेने चला जाता है। एक गिरे हुए घर से ठेला लिये जब वह लौटता है तब हम फ़ादर सुपिरियर को उस पर लिटा देते हैं और सड़क की गन्धकियों से बचते ठेला खींचते नागात्सुके की ओर बढ़ते हैं।

सुबह साढ़े चार बजे के क़रीब हम अपने निवास पर पहुँचते हैं। हमारे इस रक्षा-कार्य में पूरे बारह घन्टे लग चुके हैं। साधारण तौर पर दो घन्टे में आदमी शहर जाकर लौट सकता है। अब तक हमारे घायलों में से दो की पहली बार सही-सही पट्टी की जा चुकी है। मेरी चारपाई किसी और ने ले ली है, इसलिए मैं फ़र्श पर ही दो घन्टे सो लेता हूं। बाद में प्रार्थना करता हूँ। यह सातवीं अगस्त है। हमारी सोसाइटी की सालगिरह का दिन। उसके बाद हम फादर क्लाइसलोर्ग और दूसरे परिचितों को नगर से लाने के लिए तैयार होते हैं।

ठेला-गाड़ी लेकर हम फिर चल पड़ते हैं। चमकते दिन में अब हम उस भयानक नज़ारे को देखते हैं जिसे रात के अँधेरे ने अंशतः छिपा रखा था। जहाँ कभी नगर खड़ा था वहाँ जहाँ तक नज़र जाती है केवल खण्डहर और राख का विस्तार दिखाई पड़ता है। केवल नगर के बीच में जहाँ-तहाँ समूचे जले हुए मकानों के पंजर खड़े हैं। दरिया के दोनों किनारे मरे और घायलों से भरे हुए हैं। नदी के बढ़े हुए जल ने जहाँ-तहाँ लाशों को ढक लिया है। हाकुशीमा मुहल्ले की चौड़ी सड़क पर जले हुए नंगे प्राणियों की संख्या विशेष है। उनमें अनेक घायल अभी ज़िन्दा हैं; कुछ जली हुई कारों और ट्रामों के नीचे रेंगकर पहुँच गये थे। भयानक रूप से घायल शक्लें हमें इशारों से बुलाती हैं और सहसा गिर कर ढेर हो जाती हैं। एक बुढ़िया एक लड़की को खींचती हुई जैसे-तैसे

हमारी ओर आती है और हमारे पैरों के पास गिर जाती है। हम उन्हें अपनी गाड़ी में चढ़ा लेते हैं और अस्पताल पहुँचा देते हैं जिसके द्वार पर मरहम-पट्टी का इन्तज़ाम है। अस्पताल की फ़र्श पर घायलों की कतार की कतार पड़ी है। केवल बड़े-बड़े घावों की ही मरहम-पट्टी हो सकी है। हम एक और बुढ़िया और सैनिक को वहाँ पहुँचाते हैं मगर आख़िर हम भी उन सारे घायलों को जो धूप में पड़े हुए हैं नहीं ले जा सकते। आख़िर उनकी कोई सीमा नहीं और इसमें सन्देह है कि जिनको हम वहाँ तक खींच कर पहुंचा भी दें वे वहाँ से ज़िन्दा निकल सकेंगे। बात यह है कि यहाँ भी उनकी कुछ विशेष मदद नहीं हो पा रही है। बाद में हमें पता चला कि अस्पताल के हाल में घायल दिनों पड़े रहे और अन्त में मर गये।

हमको अपने लक्ष्य पार्क में पहुंचना है और मजबूरन इन घायलों को राह में छोड़ देना पड़ता है। हम उस जगह पहुंचते हैं जहाँ कल तक हमारा गिरजा-घर खड़ा था। वहाँ से हमें वह चीज़ें निकालनी हैं जो कल गाड़ दी गई थीं। सब चीज़ें सही सलामत हैं। बाकी सब इमारत के भीतर की चीज़ें पूरी तरह जल चुकी हैं। खण्डहर में पवित्र बर्त्तनों के कुछ टुकड़े गले हुए मिले। पार्क में मकान की देख-रेख करने वाले और एक माँ और उसके दो बच्चों को गाड़ी पर चढ़ा लेते हैं। फ़ादर क्लाइमसोर्ग ब्रदर नोब्रुहारा की मदद से खड़े होते हैं और पैदल ही घर चलना चाहते हैं। लौटते हुए हमें फिर हाकुशिमा में मृतों और घायलों का सामना करना पड़ता है। फिर वहाँ कोई रक्षा-दल काम करता नज़र नहीं आता। मिसासा पुल पर अब भी वह परिवार पड़ा है जिसकी खण्डहरों से कल फ़ादर ताप्पे और लुम्सरे ने रक्षा की थी। टिन का एक टुकड़ा धूप से उन्हें बचाने के लिए उन पर डाल दिया गया है। हमारा ठेला भर चुका है, इसलिए हम उन्हें नहीं ले सकते। हम उन्हें पीने को पानी देते हैं और बाद में लौट कर उन्हें

ले जाने का निश्चय करते हैं। तीसरे पहर तीन बजे हम नागात्सुके पहुँच जाते हैं।

कुछ खा लेने के बाद फ़ादर स्तोल्ते, लुम्मरे, एरलिंघागन् और मैं उस परिवार को लेने एक बार फिर चल पड़ते हैं। फ़ादर क्लाइनसोर्गी की प्रार्थना है कि हम उन दोनों बच्चों को भी बचायें जिनकी माँ मर चुकी है और जो पार्क में उनके पास ही पड़े थे। राह में कुछ अजनबी हमारे दयापूर्ण कार्य से प्रभावित होकर हमें बधाई देते हैं। कुछ ऐसे लोग भी मिलते हैं जो दलों में विभक्त होकर घायलों को डोलियों पर ले जा रहे हैं। मिसास पुल पहुँचने पर मालूम होता है कि वह परिवार ले जाया जा चुका है, सैनिकों का एक दल कल के मुर्दों को भी हटा रहा है।

पहले सरकारी रक्षा-दल के कार्य आरम्भ करने के पहले तीस घण्टों से ज़्यादा गुज़र चुके थे। पार्क में हमें दोनों बच्चे मिल जाते हैं। इनमें से छः साल का लड़का घायल होने से बिल्कुल बच गया है और बारह साल की लड़की सिर-हाथ और पैरों में जल गई है। तीस घण्टे दोनों बग़ैर किसी की मदद के इसी पार्क में पड़े रहे हैं। लड़की के चेहरे का बायाँ भाग और बाँई आंख खून और पीप से भरे हैं। पहले हमने समझा कि वह आंख फूट भी गई है पर जब घाव धोया जाता है तो हम देखते हैं कि आंख बच गई है, केवल पलकें सट गई थीं। लौटते हुए हमने तीन और शरणार्थी अपने साथ लिए। पहले उन्होंने हमसे पूछा कि हम किस राष्ट्र के हैं। उनको भी डर था कि हम कहीं पैराशूट से उतरे हुए अमेरिकन न हों। नागात्सुके तक पहुँचते पहुँचते अंधेरा छा गया था।

हमारी रक्षा में इस समय पचास शरणार्थी थे जो अपना सब कुछ खो चुके थे। इनमें से अनेक घायल थे और कुछ बुरी तरह जल गये थे। जो कुछ दवाइयाँ हम इकट्ठी कर सके उनके ज़रिये फ़ादर रेक्टर ने भरसक घावों का इलाज किया। अधिकतर उन्होंने उन्हें धो डाला। बात

यह है कि कम जले हुए लोग भी बेहद कमज़ोर हो चुके थे और सभी को दस्त आ रहे थे। पड़ोस के किसान-घरों में प्राय: सर्वत्र घायल भरे हैं। फ़ादर रैक्टर नित्य गश्त लगाते हैं और सेवक तथा डाक्टर दोनों रूप में भरसक उनका इलाज करते हैं। ईसाईमत को इधर दो चार दिनों के काम से जो मर्यादा हमने दी वह सालों के परिश्रम से भी उसे वहां न मिली थी।

हमारे घर में रखे घायलों में से तीन अगले ही दिनों में मर गये। सहसा उनकी नाड़ी और खून का दौरा बन्द हो गया। निश्चय यह हमारी सेवा का ही परिणाम था कि थोड़े ही मरे। सरकारी अस्पतालों में आधे तिहाई से अधिक संख्या में घायलों की मृत्यु हुई। वहां घायल बग़ैर किसी मदद के पड़े रहे और अन्त में उनके जीवन का चिराग़ बुझ गया। हर चीज़ की कमी थी, डाक्टरों की, सहकारियों की, पट्टियों की, दवाओं की। पास के गांव के एक स्कूल में दवा दारू का एक स्टेशन खोला था जहां कई दिनों तक सिपाहियों के एक दल का काम केवल घायलों को ले जाना और मरने पर स्कूल के पीछे उन्हें जला देना था।

अगले कई दिनों तक हमारे मकान के पास से सुबह से रात तक मातम के जलूस निकलते रहे। पास की घाटी में वे मरे हुओं को ले जाते वहां उन्हें जलाने के लिए छः जगहें मुकर्रर थीं। लोग अपनी लकड़ी लाते और अपने आप उन्हें जला देते। फ़ादर लुम्सरे और फ़ादर लौरेन्स को पास के मकान में एक मुर्दा मिला जो फूल गया था और बड़ी दुर्गन्ध दे रहा था। वे उसे घाटी में ले गये और वहाँ स्वयं जलाया। देर रात तक उस घाटी में चिताएं जलती रहतीं।

अब हमने अपने परिचितों और शरणार्थियों के कुटुम्बों के ढूँढने का बाकायदा इन्तज़ाम किया। हफ्तों बाद अक्सर कोई दूर के गांव में या अस्पताल में मिल जाता पर अधिकतर नहीं मिल सके। ज़ाहिर है कि

वे मर चुके थे। पार्क से जिन दो बच्चों को हम उठा लाये थे उनकी मां को हमने एक दिन ढूंढ निकाला। पहले ख़्याल था कि वह मर चुकी है। तीन हफ़्तों बाद उसने अपने बच्चों को फिर देखा। इस पुनर्मिलन के आनन्द में उन्होंने भी अपने आंसू गिराये जो अब गुज़र चुके हैं और जिन्हें हम कभी नहीं देख सकते।

छः अगस्त को हिरोशिमा में जो प्रलय काण्ड हुआ उसका दिमाग़ी अन्दाज़ धीरे-धीरे मुझे लगने लगा। मैंने जाना कि उस प्रलय के बीच रहकर भी मैंने केवल उसकी चमक ही देखी है मगर उस चमक ने हम को उसकी एक साधारण तस्वीर देखने का मौक़ा दिया है। नगर में वास्तव में क्या घटा उसका एक साधारण ब्योरा यह है।

सवा आठ बजे बम फटने से सारा नगर एक चोट में नष्ट हो गया। केवल दक्षिण और पूरब के नगर के बाहरी मुहल्ले समूची बरबादी से कुछ बच रहे। बम नगर के बीच में फटा था। उसके परिणाम में जो आंधी उठी उससे पांच किलोमीटर के व्यास में—जिसमें ९९ फ़ी-सदी नगर के मकान शामिल थे—छोटे मकान नष्ट हो गए। कुछ गिर गये, कुछ उड़ गये, जो लोग घरों में थे वे ज़िन्दा-दरगोर हो गये, जो बाहर खुले में थे उनको बम से निकली किरणों की गर्मी ने जला डाला। जहां बम का द्रव्य अधिक मात्रा में गिरा वहां आग लग गई और वह आग तेज़ी से चारों ओर फैल चली।

नगर के बीच से जो गर्मी उठी उससे एक बवण्डर उठ गया और उसने आग की लपटों को शहर के कोने-कोने तक पहुँचा दिया। जो खण्डहरों में फँस गए थे और जो झट न बचाए जा सके, उन्हें आग की ज्वाला ने खा लिया। केन्द्र से प्रायः ६ किलोमीटर के भीतर के सारे मकान गिर गए, उड़ गए या जल गए। १५ किलोमीटर तक दूर तक के मकानों की खिड़कियाँ टूट गईं। अफ़वाह थी कि दुश्मन जहाज़ों ने

विस्फोटक और प्रज्वलक पदार्थ नगर पर छिड़क दिये और फिर उनमें आग लगा दी। कुछ का कहना है कि उन्होंने जहाज़ों को एक पैराशूट गिराते देखा जिसमें से कुछ निकलकर हज़ार मीटर की ऊँचाई पर आसमान में फट पड़ा। समाचार-पत्रों ने उस बम को 'एटम-बम' (अणु-बम) कहा और लिखा कि हवा की ताकत यूरेनियम के अणुओं से प्रादुर्भूत हुई और फलस्वरूप 'गामा' किरणों से वातावरण भर गया। परन्तु वास्तव में बम के स्वरूप के सम्बन्ध में किसी को सही ज्ञान न था।

इस नर-संहार में कितने व्यक्तियों की बलि हुई? जो लोग उस प्रलय के समय वहाँ मौजूद थे उनका मरे हुओं की संख्या का अन्दाज़ कम से कम एक लाख है। हिरोशिमा की जन-संख्या चार लाख थी। पहली सितम्बर तक मरे हुओं की संख्या सरकारी रिपोर्ट में ७० हज़ार आँकी गई। जिनमें गायब व्यक्तियों की गणना नहीं की गई थी। इनमें से करीब एक लाख तीन हज़ार संख्या घायलों की थी, ४३ हज़ार ५ सौ बहुत घायलों की। हमारे अन्दाज़ से मरे हुओं की एक लाख संख्या किसी तरह से ज़्यादा नहीं है। हमारे पास ही दो बैरक हैं, उनमें से प्रत्येक में ४० कोरियन मज़दूर रहते थे। विस्फोट के दिन वे हिरोशिमा की सड़कों पर काम कर रहे थे। चार ज़िन्दा एक बैरक को लौटे और १६ दूसरे को। प्रोटैस्टैन्ट-बालिका-स्कूल की ६०० छात्राएँ एक कारखाने में काम करती थीं, जिनमें से केवल ३०-४० लौटीं। पड़ोस के किसान परिवारों में से कोई न कोई नगर में जरूर मर गया। हमारे पड़ोसी तमूरा के दो बच्चे उसमें नष्ट हुए और स्वयं तमूरा को जो उस दिन शहर गये हुए थे एक बड़ा घाव होगया। हमारे यहाँ जो लेखक था उसके घर में दो आदमी मरे, बाप और बेटा दोनों। इस प्रकार पाँच के परिवार में कम से कम दो मर गए। और यह संख्या घायलों को छोड़कर है। नगर का मेयर, बिचले जापान मुहल्ले

का प्रधान, नगर का सेनापति, हिरोशिमा में अफ़सर की हैसियत से रहने वाला एक कोरियन राजकुमार और अनेक उच्च पदाधिकारी मरे। यूनीवर्सिटी के प्रोफ़ेसरों में से ३२ मरे या बुरी तरह घायल हुए। सबसे अधिक संहार सैनिकों का हुआ। पायोनियर रेजीमेन्ट का एक-एक आदमी नष्ट होगया क्योंकि प्रायः बैरकों के पास ही बम फटा था।

अगर इलाज आदि का सही इन्तज़ाम सही वक्त पर हो गया होता तो निश्चय मरे और घायलों की संख्या इतनी न होती और हज़ारों घायल बचा लिये गये होते। बात यह भी है कि इतनी बड़ी आफ़त का अन्दाज़ तो कभी लगाया नहीं जा सकता था, इस वजह से उससे रक्षा की तैयारी की भी किसी ने चिन्ता न की थी। फिर चूँकि यह स्तब्ध करने वाली अकेली चोट एक साथ सारे नगर पर पड़ी, जो कुछ रक्षा के लिए प्रस्तुत था वह भी उसके साथ ही विनष्ट होगया। नगर के बाहरी मुहल्लों में रक्षा-कार्य के लिए तो ख़ैर कोई इन्तज़ाम ही न था। बहुत से घायल जो मर गये वे अधिकतर इसलिए कि उनको सही खाना न मिला और उनकी कमज़ोरी बराबर बढ़ती गई। जो अपनी ताकत कायम रख सके उनका घाव धीरे-धीरे भर गया पर उसके लिये उनकी बड़ी सेवा करनी पड़ी। कुछ तो बम फटते ही तत्काल मर गये, कुछ अपने घावों के कारण हफ्ते भर बाद मरे जब उनका घाव फूलकर फट गया। बाद में जो कमीशन बैठाया गया उसने बताया कि विस्फोट के समय बम से गामा नाम की किरणें निकली थीं जिनके स्पर्श से शरीर के भीतर की बनावट बिखर जाती है और जिनके कारण खून के सफ़ेद कारपस्सल नितान्त कम हो जाते हैं।

बाद में अनेक ऐसे व्यक्तियों का पता चला जो बगैर किसी घाव या जलन के सीधे मर गये। इनमें से कइयों को मैं जानता था। फ़ादर क्लाइमसोर्ग और फ़ादर चिज़लिक जो विस्फोट के केन्द्र के पास ही रहे

थे और जो जलने से बच गये थे प्राय: १५ दिन बाद बड़े कमज़ोर हो गये। अब तक छोटे छोटे उनके घाव भर गए थे। पर तब तक जो घाव भर न पाये थे बदतर हो गये और अब भी जब सितम्बर में मैं यह लिख रहा हूँ, वे घाव जैसे के तैसे हैं। डाक्टर का कहना है कि किरणों के स्पर्श से निश्चय खून पर असर होगया है। पर मेरा अपना यह विचार है कि वस्तुत: इसका कारण शरीर की कमज़ोरी भी था। इसकी भी बड़ी अफ़वाह उड़ी कि नगर के मलबों से प्राणघातक किरणें निकल रही हैं और जो कार्य-कर्त्ता लाशों को हटाने में वहाँ मदद करने गये खुद मर गये। लोगों का कहना है कि नगर का मध्यवर्ती मुहल्ला कुछ काल तक बसने लायक न रहेगा। मैं नहीं कह सकता कि इस बात में कहाँ तक सच्चाई है। इतना सही है कि कुछ दिनों बाद उन्हीं मलबों को हटाने का काम करने वाले मजूर जिन्दा हैं।

उन दिनों हममें से किसी ने किसी जापानी की ओर से अमेरिकनों के विरुद्ध कोई उद्‌गार न सुना और न किसी ने वहाँ प्रतिहिंसा का कोई सबूत पाया। जापानियों ने यह भयानक चोट युद्ध की आपत्तियों के रूप में ही सह ली जिसे बगैर किसी शिकायत के सहना होता है। इस युद्ध में मित्र-राष्ट्रों के प्रति विशेष घृणा की भावना हमने लोगों में अपेक्षाकृत कम पाई यद्यपि समाचार-पत्रों ने इस भावना को बढ़ाने की काफी कोशिश की। युद्ध के आरम्भ की विजयों के बाद शत्रु के प्रति निश्चय ख़ासी घृणा थी पर जब मित्र-राष्ट्रों का हमला ज़ोर पकड़ चला और विशेषत: जब शालीन बी-२६ का आगमन हुआ तब अमरीकी यान्त्रिक कुशलता आश्चर्य और प्रशंसा का विषय बन गई।

नीचे की घटना जापानियों की स्पिरिट पर प्रकाश डालती है। एटम-बम के विस्फोट के कुछ दिनों बाद यूनीवर्सिटी का मन्त्री हमारे पास यह कहने आया कि यदि वे चाहें तो उतने ही भयानक बम द्वारा वे

सैन-फ्रांसिसको को बरबाद कर सकते हैं। इसमें सन्देह है कि स्वयं उसका ऐसा विश्वास था। वह हम विदेशियों को केवल इस बात से प्रभावित करना चाहता था कि जापानी भी इस प्रकार की चीजें ईजाद कर सकते हैं। अपने राष्ट्रीय गर्व के कारण वह यह कह रहा था और कुछ अजब नहीं कि वह इसे इतनी बार कहे कि इस पर धीरे-धीरे विश्वास भी करने लगे। जापानियों ने यहाँ तक कहा कि नए बम का सिद्धान्त एक जापानी खोज का ही फल है। उनका कहना था कि केवल कच्ची सामग्री का अभाव ही अणु-बम बनाने में बाधक हुआ। जापानी कहते थे कि उन्हीं के सिद्धांत का जर्मनों ने उपयोग किया और इस खोज को इतनी दूर ले गए कि इस बम का निर्माण सम्भव होसका।

हममें बहुत दिनों तक अणु-बम के प्रयोग की नैतिकता पर वाद-विवाद होता रहा। कुछ ने उसे ज़हरीली गैसों की भांति माना और नागरिक जनता के विरुद्ध उसका इस्तेमाल नाजायज़ ठहराया। कुछ ने कहा कि जिस प्रकार का युद्ध जापान में हुआ है उस सार्वभौम युद्ध में नागरिकों और सैनिकों में कोई अन्तर नहीं किया जा सकता। और यह कि उस बम का मक़सद ही रक्तपात बन्द करना और जापान को आत्म-समर्पण के लिए सावधान कर समूचे प्रलय को रोकना था। मुझे यह युक्ति-संगत लगता है कि जो सिद्धान्त सार्वभौम युद्ध का समर्थन करते हैं वे नागरिकों के प्रहार की शिकायत नहीं कर सकते। प्रश्न तो यह है कि क्या सही उद्देश्य का साधक होता हुआ भी सार्वभौम युद्ध इस रूप में न्याय-संगत है? क्या इसका परिणाम इसके तथाकथित श्रेयस्कर फलों से कहीं अधिक भयानक नहीं? हमारे आचार-शास्त्री भला कब तक इस प्रश्न का हमें उत्तर देंगे?

भगवतशरण

: १५ :

यह पागल नहीं जो कभी राजा था

निश्चय यह पागल नहीं है। इसने कभी सरकार बनाई थी। यह केरेन्स्की है। १९१६ की रूसी-क्रान्ति जो लेनिन और उसके बहादुर सहकारियों द्वारा संघटित हुई केरेन्स्की के लिए बड़े काम की सिद्ध हुई। उसने ग़ज़ब की सूझ से पैंतरे बदले और रूस का भाग्य-विधाता बन गया। वह क्रेमलिन की ज़ार वाली गद्दी पर जा बैठा। पर जनता के सच्चे नुमाइन्दों को यह सिद्ध करते देर न लगी कि वह उसका दुश्मन है, उसके हितों का शत्रु। काम कुछ आसान न था, ख़ासकर जब वह प्रतिगामी शक्तियों को अपने पीछे छुपाये अपनी सरकार बनाये जमकर बैठा था। पर लेनिन और स्तालिन ने उसे रूस से उखाड़ फेंका। वह कहाँ-कहाँ फिरा, खुदा जाने, पर आज वह अमेरिका में है। इसमें संदेह नहीं और अस्सी के लगभग उम्र

में भी जिन्दा है, और सपने जो वह देखता है, नहीं समझ आता जागते के हैं या सोते के।

डाक्टर वाल्टमन ने पहले-पहल एक शाम की गोष्ठी में उसका ज़िक्र किया। मुझे काफ़ी कुतूहल हुआ और विशेषकर यह जानकर कि सन् '१६ में रूस में नई सरकार बनाने वाला केरेन्स्की अभी जिन्दा है। वाल्टमन ने कहा कि अगर देखने का कुतूहल दबाते न बनता हो तो उससे मिलाने का यत्न, कुछ असम्भव नहीं, किया जा सकता है। कुतूहल सचमुच कुछ ऐसा था कि जो दबाया न जा सकता था, और उसके चारों ओर यद्यपि रूस का वह सपना भूल चुका था, जो एक धुएं की दीवार खड़ी हो गई थी उसको भेद उसे देखने की इच्छा प्रबल हो उठी। डाक्टर वाल्टमन से यत्न करने की प्रार्थना कर दी और होटल लौट आया।

फिर एक दिन एक सज्जन से मुलाकात हुई जो प्रोफेसर हैं परन्तु जिनका नाम देना यहाँ संगत नहीं जान पड़ता। उन्होंने फ़ोन किया कि वे केरेन्स्की से मिला देने की युक्ति सोच चुके हैं। फिर ऐसा हुआ कि जब एक रात मैं सोने जा रहा था फ़ोन से ख़बर मिली कि कल सवेरे फ़लाँ स्थान में अमुक संख्या के मकान पर मुलाकात होगी। दूसरे दिन प्रातः तैयार होकर ६ बजे निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गया। सड़क पर साफ-सुथरा प्रायः पांच मंज़िल का मकान और उसकी तीसरी मंज़िल पर एक फ्लैट जो कुछ धुँधला सा नज़र आता था जिसका धुँधलापन उस और भी धुँधले चित्र के लिये समुचित था जो जैसे आया था वैसे ही भुला भी दिया गया। केरेन्स्की की याद मुझे कात्स्की, लूडेनडॉर्फ और हिन्डेनबर्ग के साथ आया करती थी। न जाने यह कैसा भावनाओं का समावेश था पर यह सही है कि उनकी याद मुझे एक साथ आया करती थी।

उनमें से केरेन्स्की मेरे सामने है। आज उसे जुकाम है। कल ही बाहर से आया है; बाहर आता-जाता रहता है। कहाँ जाता है, कहाँ से

आता है शायद ही कोई जानता हो पर नगर और देहात में दोनों जगह, लगता है, उसके ठिकाने हैं।

कल बड़ी सर्दी थी जिसे उसका रूसी जिस्म भी किसी प्रकार संभाल न सका और जुकाम जकड़ गया। आज शायद वह मुझसे न मिलता पर सम्भवत: उसने सोचा यह बला झट दूर हो और उसने मुझे बुला लिया।

मैं कुछ देर तक उसे देखता रहा जो उसकी झल्लाहट का सहज कारण बना। एक तो बुढ़ापा, दूसरे चित्ती पलट जाने के कारण छिन्न-भिन्न जीवन तीसरे अस्वस्थता और चौथे अजनबी का इस प्रकार घूरना!

'कहिये, कैसे आए ?'

'जी, मिलने आ गया था।'

'क्यों ?'

मैं चुप था। मैंने इस प्रश्न का उत्तर देने की आवश्यकता न समझी।

'मैंने आप से कुछ पूछा!' आवाज़ कुछ कड़ी हो गई थी, कठोर।

मैं इस प्रश्न के लिये तैयार न था। मैंने कहा, 'समझा नहीं।'

'न समझने की तो कोई बात नहीं। मैं पूछ रहा हूँ—क्यों आए ?'

कैसे आए की बात तो मैं समझ सकता था यद्यपि उसका सम्बन्ध आने के ज़रिये से होता। पर इसका क्या उत्तर दूँ। समझ में सचमुच नहीं आया। किसी प्रकार मैंने कहा: 'आपको देखने।'

इसी बीच प्रोफेसर ने, जो मेरे साथ आये थे और मेरे बैठ जाने पर भी अभी पास ही खड़े थे, कुछ बोलने का उपक्रम किया। अपनी कड़ी दृष्टि केरेन्स्की ने जो उन पर डाली तो वे धीरे से कमरे से बाहर निकल गए।

'जी हाँ, बुढ़ापा और कमज़ोरी देखने की ही चीज़ें हुआ करती हैं।' केरेन्स्की के शब्दों में व्यंग्य भरा था।

'आप क्षमा करेंगे मेरी मन्शा किसी मात्रा में आपको कष्ट देने की न थी।' मैंने कहा।

'फिर आए क्यों?'

'इसलिए कि उस कुतूहल को दबा न सका जिसकी आवाज़ थी कि उस हस्ती को देख लूँ जिसने कभी रूस की सरकार बनाई थी।' मैंने उत्तर दिया।

मेरे शब्दों में, जहाँ तक मैं डाल सकता था, शिष्टता की झंकार थी पर फल उलटा हुआ।

'पर मुझे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला। मैं पूछता हूँ, मेरे पास आने की ज़रूरत क्या थी?'

मैं चुप रहा क्योंकि मेरे पास कोई उत्तर न था—

केरेन्स्की ने फिर पूछा—'आप क्या पत्रकार हैं?'

मैंने कहा, 'नहीं। और मेरा विश्वास है जो कुछ मैं हूँ प्रोफेसर ने आपको बता दिया होगा।' अब तक मैं भी एक हद तक झल्ला चुका था और अब मैं वहां से चला भी जाना चाहता था यद्यपि मुझे वहां जाने का अफ़सोस न हुआ क्योंकि मैंने उसे देख-समझ लिया जिसकी महत्वाकांक्षाओं के आज तार-तार हो गये हैं।

पन्द्रह मिनट गुज़र चुके थे और पन्द्रह ही मिनट हम दोनों के मिलने की अवधि थी। मैंने जाने का उपक्रम किया पर इसी समय केरेन्स्की की जैसे डरी हुई आवाज़ फिर सुन पड़ी—

'आप शायद बताना नहीं चाहते कि मुझ से मिलने क्यों आए?'

अब मुझ से रहा न गया और मैंने साफ़ कह दिया कि 'मुझे यहाँ आने का अफ़सोस है। पर आया मैं यहाँ इसलिए कि आपने मुझ से मिलना मंजूर कर लिया था।'

'मिलना मन्जूर कर लिया था इसलिए कि दिनों वह प्रोफेसर का बच्चा मेरे दामन से लटका रहा था।'

'अच्छा, धन्यवाद, अब जाता हूँ।' यह कह कर मैं चल पड़ा। न केरेन्स्की ने हाथ बढ़ाया न मैंने।

× × ×

मैंने इस व्यक्ति को 'बीती संख्या' समझा था परन्तु 'बीती संख्या' वह नहीं है। वह अमेरिका में शायद बड़ा डरा-डरा इसलिए रहता है कि त्रात्स्की के दुर्भाग्य का अन्देशा है। वह भूल रहा था कि उसके नामपर उँगली तक हिलाने की न किसी को फुरसत है न ख्वाहिश। फिर भी वह 'बीती संख्या' नहीं क्योंकि वह भग्न मनोरथों की समाधि है और प्रतिगामिता का खण्डहर जिसकी गिरती दीवारों पर फिर भी हल्की-फुल्की फूस की छत डाली जा सकती है।

वह 'बीती संख्या' नहीं है क्योंकि प्रगटतः वह अमेरिका का वेतन भोगी था और उसी के आदेश से आज वह भगोड़े रूसियों का पश्चिमी यूरोप में संगठन कर रहा है। उसकी मन्शा है कि वह रूस को घेर यूक्रेन उससे छीन ले। उसकी बड़ी मन्शा है सही पर मन्शाएँ तो बहुतों की बहुत हैं और 'चमार के शाप से झिंगुर नहीं मरता।' किसी ने कहा—'मैं कब्रों से सोई आत्माएँ बुला लूँगा!' किसी दूसरे ने कहा—'सही, पर क्या वे आयेंगी?'

: १६ :

जहाँ आइन्स्टाइन ब्रह्माण्ड के अन्तरंग में झाँकता है

फुल्ड हाल, जहाँ आइन्स्टाइन ब्रह्माण्ड के अन्तरंग में झाँकता है, जहाँ ओपेनहाइमर विश्व के विध्वंस के लिए एटम बम प्रस्तुत करता है।

आइन्स्टाइन—डाक्टर ऐल्बर्ट आइन्स्टाइन सुन्दर सरल मुखड़ा, मृदु चेष्टाओं से पुलकित, बालवत् वृद्ध ७२ साल का गोल चेहरे पर झबरी मूछें, सिर के सफेद लम्बे केश कन्धों को छूते हुए। फ़ाइलों-काग़ज़ों-मेज़ की पुस्तकों के पीछे छिपा-सा, सामने नीचे रखे काग़ज़ पर कुछ हल करता हुआ। हल्के बोलता है पर बालक सा हँसता है ज़ोर से। इतने ज़ोर से कि वाक्य के पिछले शब्द उस हंसी में खो जाते हैं।

भगवतशरण

कृपालु, अत्यन्त कृपालु, जैसा सरल, चकित कि संसार की अमित सम्मृद्धि के बीच संसार इतना कराल क्यों ? ग्रीक नगर-राज्यों की स्वतंत्रता के प्रति रूसो की सी श्रद्धा। यह बताने पर कि ग्रीक नगर-राज्यों में स्वतंत्र नागरिकों और गुलामों का औसत एक और चार का था, कुछ झल्ला-जाता है, झल्ला कर कहता है—हाँ तब की गुलामी गुलामी थी, आज की गुलामी उस से बदतर है।

इस फुल्ड हाल में द्वार से बाएं कारीडर में दूर छिपा सा आइन्स्टाइन का कमरा है, बड़े कमरे से लगा जिसमें विश्व के उस महान् द्रष्टा की सेक्रेटरी बैठती है। आइन्स्टाइन स्वयं उस पास के छोटे कमरे में बैठता है। आइन्स्टाइन, विश्व विख्यात गणितज्ञ और वैज्ञानिक, जर्मन-ज्यू है, जर्मनी में उत्पन्न हुए यहूदी, ब्रह्माण्ड के अभिसृष्टि सम्बन्धी 'सापेक्ष्य-सिद्धान्त' का विधाता, १६०५ में, २६ वर्ष की तरुण आयु में, उसने 'रिलेटिविटी' (सापेक्ष्य-सिद्धान्त) की खोज कर विश्व विश्रुत वैज्ञानिकों को चकित कर दिया, वैसे ही जैसे न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण की खोज कर पहले विज्ञान की अगली खोजों का आधार प्रस्तुत किया था। आइन्स्टा-इन के इस सापेक्ष्य-सिद्धान्त के आधार पर ही १६४५ के एटम बम की खोज हुई।

उस एटम बम का निर्माता ही इस फुल्ड हाल का आज 'डाइरेक्टर, प्रधान है—ओपेनहाइमर।

ओपेनहाइमर—डाक्टर जे. राबर्ट ओपेनहाइमर हिरोशिमा और नागासाकी के विध्वंसक अणु बम का विधाता द्वार के दखिन अपने बड़े आफ़िस में बैठता है। वहां और कोई नहीं, बस आज भी केवल ४६ साल का न्यूयार्क में जन्मा ओपेनहाइमर, एक पुराना युद्ध 'वेटरन', बुडी, एक जर्मन व्याघ्रकाय कुत्ता, और पास के कमरे में रखी तिजोरी की रक्षा के लिए २४ घंटे वहां रहने वाला संतरी। अध्ययन-कक्ष में कान्फ्रेन्स की मेज़

आइन्स्टाइन और ओपेनहाइमर, वैज्ञानिक परामर्श में

के चारों ओर ब्राउन चमड़े की गद्देदार कुर्सियां हैं और पीछे भित्याकार तख्ता स्याह नरकट की तरह ऊंचा, कुछ झुका, विद्युत-अणु की ही भांति सदा चलायमान, ओपेनहाइमर निरन्तर मुस्कराता रहता है पर उस की मुस्कराहट भी बिजली सी ही है, क्षण-क्षण चमकने और ग़ायब हो जाने वाली। प्रश्न पूछे जाने के पूर्व ही वह उसे समझ लेता है और उत्तर आपके समझने के पहले दे देता है।

६ अगस्त १९४५ के पहले वैज्ञानिकों के अतिरिक्त कम लोगों ने ओपेनहाइमर का नाम सुना था यद्यपि वैज्ञानिकों के बीच 'ओपेनहाइमर फ़िलिप्स— रिएक्शन' और 'ओपेनहाइमर—फ़ुरी रिवीज़न' नाम के अपने सिद्धान्तों द्वारा वह काफ़ी प्रसिद्ध हो गया था। छठी अगस्त को समाचार पत्रों ने हिरोशिमा के विध्वंस की कथा छापी और ओपेनहाइमर सहसा विख्यात हो उठा। लास एलामो की अणुशाला में साढ़े तीन हज़ार वैज्ञानिकों को जोत कर पहले एटम बम का उसी ने आविष्कार किया जिस की पहली चोट एशिया पर पड़ी, हिरोशिमा और नागासाकी पर जिसकी अमरीकी धमकी से संसार आज भी आक्रान्त है। एचेसन—लिलिएन्थल (अणुबमीय) रिपोर्ट का भी प्रधान निर्माता यही ओपेनहाइमर था।

ओपेनहाइमर हारवर्ड कैलिफ़ोर्निया, गोटिन्गेन, केम्ब्रिज, लेडेन, ज्यूरिक में पढ़ चुका है, स्पेनिश, इटालियन, फ्रेंच, अंग्रेज़ी, जर्मन, डच, ग्रीक, लेटिन और संस्कृत जानता है। दो-दो समूची प्रोफ़ेसरी (केलिफ़ोर्निया का टेक्निकल इन्स्टिट्यूट और केलिफ़ोर्निया युनिवर्सिटी) उसके पास हैं। फ़ुल्ड हाल के पास ही १८ कमरों के प्रासाद में दो बच्चों और बीवी के साथ वह रहता है। जीवन सादा है पर महत्त्व का। अणु बम के निर्माण में पचीस सेर शरीर का मांस गला चुका है (वज़न घटा चुका है)।

फ़ुल्ड हाल। न्यूजर्सी (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका) में प्रिंस्टन नगर और प्रिंस्टन

की युनिवर्सिटी के बाहर यह फुल्ड हाल है जिसमें उच्चकोटीय अध्ययन की संस्था—'इन्स्टिट्यूट ऑफ़ एडवान्स्ड स्टडी'—कायम है, आइन्स्टाइन का, जिसमें संसार के अनुपम मेधावी एकत्र खोज करते हैं। जहाँ संसार के विश्वविद्यालयों के चुने हुए रत्न हैं और जो अध्यापन के वातावरण से दूर केवल चिन्तन में प्रयत्नशील हैं। वहाँ पढ़ाने का कार्य नहीं होता केवल खोज का होता है, विचार और दर्शन का। ओपेनहाइमर स्वयं हफ्ते में केवल तीन बार अपने विद्यार्थियों—अनुगामी खोजियों—से मिलता है, वह भी 'सेमिनार' में। स्वयं आइन्स्टाइन ने वहाँ के अपने पिछले चौदह साल के आवास में केवल एक लेक्चर दिया है। पिछले वर्ष उस अद्वितीय गणितज्ञ ने सापेक्ष्य-सिद्धान्त वाले अपने ग्रन्थ में एक नया प्रकरण जोड़ा। नया प्रकरण केवल चौदह छपे पृष्ठों का २८ गणित के फ़ामूलों का संग्रह। परन्तु ये चौदह पृष्ठ द्रष्टा के अमूल्य तीस वर्षों के प्रगाढ़ अनुशीलन और चिन्तन के परिणाम थे।

आइन्स्टाइन की इस अध्ययनशाला की लाल ईंटों की इमारत फुल्ड-हाल अपने सादे जार्जियन कलेवर में प्रायः वन प्रान्त में ऊँचे पेड़ों की झुरमुट के पीछे अपने ही खुले मैदान में खड़ा है। दिन साफ़ रहने पर इसके शिखर का गुम्बज दूर से ही दिखाई देता है। मैं जब वहाँ गया, कुहरा छाया हुआ था फिर भी वह अभिराम अध्ययनशाला अपनी आभा से प्रसन्न लगी जैसे उसकी बुर्जी के ऊपर आइन्स्टाइन की मानवता छाई हुई थी, ओपेनहाइमर की मारक खोजों के बावजूद भी।

अमेरिका के शिक्षामना डाक्टर फलेक्सनर को यूरोपीय विश्वविद्यालयों में बड़ी श्रद्धा थी। वह चाहता था कि अमेरिका में कोई ऐसा स्थान हो जहाँ युनिवर्सिटियों से भी अलग मेधावियों का समागम हो और खोजों के लिए शान्त वातावरण हो, जहाँ खोजियों को कल के भोजन की चिन्ता न रहे। उसकी साधना सिद्ध हुई जब नवार्क के सौदागर लुई

बांबगर और उसकी भगिनी श्रीमती फेलिक्स फुल्ड ने पचास लाख डालर का दान कर संस्था स्थापित कर दी। पहले १६३१ में गणित का विभाग खुला, प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी में ही, और आठ साल बाद यह अपने ५,०० एकड़ की विस्तृत भूमि पर खड़ा हुआ। इसके विधाताओं ने सदा यह नीति रखी कि इस संस्था का विधायक (डाइरेक्टर) अमेरिकन हो। पहले उसका डाइरेक्टर फ्लेक्सनर हुआ, फिर डा० फ्रैंक आइडेलोट, फिर अब ओपेनहाइमर। आइन्स्टाइन इसका अन्वेषक सदस्य मात्र है, जैसे अन्य अनेक हैं—जान फान न्यूमान (मूलनिवास हंगरी, गणितज्ञ), ओस्वाल्ड वेब्लेन (गणितज्ञ), बेंजमिन डी० मेरिट (ग्रीक पुराविद) एडवर्ड मीड अर्ल (प्रसिद्ध अमेरिकन इतिहासकार), जर्मनी निष्कासित कला के इतिहास का प्रकाण्ड पण्डित एर्विन पानोफ्स्की, साम्राज्यवादी तेजस्वी अंग्रेज़ इतिहासकार ट्वायनबी, होमर टामसन (ग्रीक पुराविद जो सालों से एथेन्स में अगोरा की खुदाई करा रहा है) आदि। कभी यहाँ टी० एस० एलियट, नोएल बोर, उल्फगैंग पौली और हिदेकी युकावा भी थे। संस्था के पास दस करोड़ रुपये हैं, उस सात लाख प्रति वर्ष की आय के अतिरिक्त जो इसके सदस्यों और उनके परिवार पर खर्च किए जाते हैं।

इस फुल्ड हॉल की अपनी अध्ययन शाला के लिए बहत्तर साल का आइन्स्टाइन मसर स्ट्रीट के अपने बंगले से पैदल चल पड़ता है। इस संस्था का उद्देश्य आइन्स्टाइन की राय में "अन्तर्जातीय वैज्ञानिक खोज और चिन्तन है" परन्तु ओपेनहाइमर का अध्ययन और प्रकार का है—किस प्रकार के अणुओं से प्रकृति का निर्माण होता है, किस रूप से वे तोड़े जा सकते हैं? आइन्स्टाइन वहाँ लिखता है—"तिक्त और मधुर बाहर से आते हैं। कठोर भीतर से, अपने कर्मों के परिणामस्वरूप। साधारणतः मैं वही करता हूँ जो मेरी प्रवृत्ति होती है...मैं उस एकान्त में जीता हूँ जो यौवन के लिए अभिशाप है पर जो प्रौढ़-परिपक्व आयु का उपास्य है,

मधुर साध्य ।"

फुल्ड हाल जाने वाले व्यक्ति को चिन्तन का पीठ होने से स्वाभाविक ही वह शान्ति का संस्थापक लगता है । पर वहां से लौट कर हृदय दुविधा में पड़ जाता है । शंका करने लगता है—फुल्ड हाल मानवतावादी आइ-न्स्टाइन का है या युद्धवादी वेब्लेन का, अणुबमवादी ओपेनहाइमर का ?

इस संस्था के अनेक सदस्यों ने पिछले युद्ध में मारक यंत्रों के अन्वेषण का कार्य किया था । उनमें ओपेनहाइमर के अतिरिक्त प्रधान वेब्लेन था । सशस्त्र सेना के उपकरण ही तब उसके विचार्य बिन्दु थे । उसने सबमेरिन-युद्ध की तत्परता में नौ-सेना की सहायता की थी और इंग्लैंड की वायुयान सेना के साथ वह रहा था । 'डिस्पैचों' में वह अमर कर दिया गया —'उसने कोणगत सही (गणित सही) बमबाज़ी के विकास में प्रभूत सहायता की ।'

अब उस संस्था में एक और व्यक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है—जार्ज एफ़. केनान का । जार्ज केनान स्टेट विभाग का नीतिनिर्माता, राजनीति-विश्लेषक और रससंबंधी विषयों का विशेषज्ञ है । केनान, कहा जाता है, वहाँ 'बौद्धिक आराम' के लिए गया है, अपना राजनीतिक अध्ययन चोखा करने, अर्ल के 'सेमिनारों' में शामिल होने । क्या सचमुच केनान का वहाँ जाने से अभिप्राय केवल 'बौद्धिक आराम' है ? यह न भूलना चाहिए कि वहीं 'मार्शल प्लान' का विशेषज्ञ-मंत्रदाता अर्थशास्त्री विन्फ़ील्ड रिफ़लर भी है और रौकफ़ेलर फ़ाउन्डेशन बोर्ड का चेयरमैन वाल्टर स्टुअर्ट भी । कुछ भी हो, यह भूलना आसान नहीं कि वहीं विध्वंसक अणुबम का स्रष्टा ओपेनहाइमर भी है और बमबाज़ी का विशेषज्ञ वेब्लेन भी ।

वहीं जहां ओपेनहाइमर डाइरेक्टर (विधायक) है जहाँ आइन्स्टाइन संस्था का साधारण सदस्य है । और वहीं जहाँ ओपेनहाइमर एटमबम के

निर्माण और प्रयोग के समर्थन में अपनी नीली आंखें गड़ाकर कहता है —
'समय भयंकर है। चारों ओर विचारों का भय हो रहा है परन्तु शायद आज़ादी की रक्षा और पुनर्प्राप्ति के संघर्ष में ऐसा होना अनिवार्य है' आइन्स्टाइन भी वहीं अपने उदार मुखमण्डल की झुर्रियों को तिरस्कृत करता रहता है कि 'अणुबम का प्रयोग किसी स्थिति में जाइज़ नहीं, कभी शान्ति का पुजारी ईमानदार अन्वेषक राष्ट्र के मानवताविरोधी युद्ध में अपने विज्ञान का योग न देगा, न देगा।'

भगवतशरण

: १७ :

'क्वीन ऐलिज़ाबेथ'

न्यूयार्क का बन्दर अभी दूर है। पर बहुत दूर नहीं, थोड़ी ही दूर, इतनी कि हम यहां से उसे देख लेते हैं। एक धुंधली निरन्तर रेखा दूर के क्षितिज पर उठती और आकार धारण करती जा रही है। दूरबीन के सहारे तो लिबर्टी का स्टैच्यू (स्वतंत्रता की प्रतिमा) भी दीख रहा है जो समुद्र के ऊपर उठता आसमान के बीच जैसे खड़ा है, प्रतीकतः सुन्दर पर सावधि पृष्ठ-भूमि का मिथ्या रूप।

जहाज़ जो अब तक तेज़ी से चलता जा रहा था सहसा रुक गया है। बन्दर में ले जाने के लिए शायद पाइलट आने वाला है और यहीं शायद पुलिस के कर्मचारी और इमीग्रेशन अफ़सर भी आयेंगे। वे यात्रियों के पासपोर्ट देखेंगे और ब्रूकलीन के बन्दरगाह में प्रवेश करने

की हमारे जहाज़ को इजाज़त देंगे। यह रवय्या हर बन्दर का रहा है; न्यूयार्क का तो निश्चय विशेष है क्योंकि इस देश में आने वाले विदेशियों पर इधर कुछ हफ्तों से ख़ास नज़र रखी जाने लगी है। कुछ ही दिनों पहले अमेरिका ने एलान किया कि जो यात्री ग्यारह अक्टूबर के पहले के वीज़ा लेकर दाख़िल होंगे उनके साथ पुलिस कार्रवाई होगी और उनको लाने वाले जहाज़ों पर भारी जुर्माना होगा।

मेरे पास भी वीज़ा पुराना है पर मैं विशेष शंकित नहीं हूँ। आगे का कुछ इन्तज़ाम सोच और कर लिया है, और अब डेक पर खड़ा फैले समुद्र की ओर देख रहा हूँ जहाँ क्षितिज पर एक धुँधला बिन्दु धीरे-धीरे गहरा होता जा रहा है। डेक पर और लोग भी हैं, उनमें से अनेकों के पास भी अपनी-अपनी दूरबीनें हैं। हम सब उस बिन्दु के बढ़ते हुए आकार को तन्मयता से देख रहे हैं।

बिन्दु बढ़ता जा रहा है। बिन्दु से वह धुँधला धब्बा हुआ; वह धुँधला धब्बा अब फैले आकार में बढ़ चला। गोल ज़मीन दूर के जल तल को जैसे उठाये हुये है, एक ऊँचाई के रूप में जिसमें पीछे से यह धब्बा चढ़ता आ रहा है। अब उसने आकृति धारण कर ली है, काफ़ी बड़ी, और चारों ओर से आवाज़ आ रही है, 'क्वीन एलिज़ाबेथ'।

'एलिज़ाबेथ' आ रहा है इसका अन्दाज़ किसी को न था, परन्तु क्षितिज पर उठते हुए उस आगन्तुक जहाज़ का आकार बादल-सा बड़ा होने के कारण सहज ही उसे एलिज़ाबेथ की संज्ञा मिल गई है। और यह संज्ञा भूठ भी नहीं। पाइलट जो अभी-अभी हमारे डेक से कप्तान के कमरे की ओर गुज़रा है बताता जा रहा है कि एलिज़ाबेथ खाड़ी में अब दाख़िल ही होने वाला है। हम स्वयं भी उसके सैकड़ों हज़ारों गवाक्ष की सी उन खिड़कियों से यह अन्दाज़ लगा सकते हैं जो अब धीरे-धीरे दृष्टि-पथ में उठने लगी हैं। उस जहाज़ का विशाल आकार अब क्षितिज

के एक भाग को जैसे भर रहा है और पानी की ज़मीन को रौंदता सा हमारी ओर तीव्र गति से बढ़ता आ रहा है।

एलिज़ाबेथ! प्रायः दो हज़ार से ऊपर यात्री। प्रायः दो हज़ार से ऊपर माँझी, ख़लासी, कर्मचारी और अफ़सर। कुल प्रायः पाँच हज़ार प्राणी। और उनके अपने बोझ के साथ अपने सामान का भार। परन्तु यह दूसरा जहाज़ भी नहीं स्वयं 'एलिजाबेथ' है जो एक महान् साम्राज्य का प्रतीक है जिसका नाम इङ्गलैण्ड की उस शासिका से संबंधित है जिसने अंग्रेजी साम्राज्य के निर्माण में पहला क़दम उठाया था।

एलिज़ाबेथ जहाज़ को अपना नाम देने वाली साम्राज्यवादिनी सम्राज्ञी एलिज़ाबेथ। वह नाम कुछ साधारण नहीं जो एक ओर आरमेडा की ओर संकेत करता है, दूसरी ओर शेक्सपियर की ओर; और जो महान् अकबर का समकालीन है। रानी ने, कहते हैं, तप का जीवन बिताया था, तप का जीवन कि उसने वैधव्य के सारे लक्षण अपने ऊपर लागू किये, जिसने विवाह की तृष्णा पास फटकने तक न दी, जिसने स्काटलैण्ड, फ्रांस, स्पेन के राजाओं को अपने चरित्र, नीति और भय से अपनी सीमाओं में रुके रहने को मजबूर किया।

एलिज़ाबेथ जिसकी रोमानी प्रवृत्तियों की ओर शेक्सपियर ने जहाँ तहाँ इशारा किया है, जिसके अभिमत कटाक्ष के लिए तत्कालीन अंग्रेजी दरबार के वीर छैले अपने कंधे रगड़ते रहते थे, जिसकी रूह में एसेक्स का प्यार उन्माद बनकर बैठा और जो निकला तो उस आकर्षक सामन्त की जान लेकर। जिसकी अनाकर्षक, स्पष्टतः भोंडी, आकृति की लौ पर अनेक उदीयमान बाँके शलभ बनकर टूटे, जिसके नाम पर भय को चुनौती देते माँझियों ने विकराल समुद्र लांघा, पृथ्वी को परिक्रमा करली, जिसने अपने डाकुओं को, डाकू जहाज़ों को अपनी संरक्षकता की छाया दी और स्पेन के अमेरिका से लौटते चाँदी सोने से भरे जहाज़ों को लूटने

के लिये उत्साहित किया, जिसने अपने डाकू जहाज़ों की तय्यारियों में धन-जन की सहायता की और जिनकी लूट में उसने हिस्सा बटाया।

उसी एलिज़ाबेथ का नाम इस तेज़ी से हमारे पास पहुँचते विशाल जहाज़ के आगे और बाजू पर लिखा है। यह जहाज़ यात्रियों के स्वप्न का जहाज़ है। अनेक यात्री सालों इस पर चढ़ने के सपने देखते हैं और इससे सफ़र कर अपने को धन्य मानते हैं। यही वह एलिज़ाबेथ है जो प्रायः पाँच दिनों में इंग्लैंण्ड के साउथैम्पटन से चल कर एटलान्टिक लांघ अमेरिका में न्यूयार्क पहुंचता है, जिसके भण्डार पेय और खाद्यों से भरे हैं। न्यूयार्क और लन्दन में शायद खाद्य-पेयों की कभी कमी हो जाय पर इस जहाज़ के गोदामों में उनकी कभी कमी नहीं हो सकती। मदिरा—पोर्ट, विस्की, शैम्पेन, शैरी, शीराज़ और क्या-क्या; दूध—उसके बीसियों विकार; फल—उसके अनन्त प्रकार; साग—असंख्य और विविध; अन्न—विभिन्न और प्रभूत—क्या नहीं जो उस एलिज़ाबेथ में मौजूद न हो और बराबर उसके विस्तृत भोजनागार की मेज़ों पर परसा न जाता हो।

और माँस के उसके भण्डार, जैसे शिकागो के कसाईखाने ही इस जहाज़ के अन्तराल में खुल पड़े हों। कितने प्रकार के, कितनी मात्रा में माँस का इस जहाज़ के कुठारों में संचय है कहना मुश्किल है। पर इतना सही है कि कितने प्रकार के प्राणियों का मनुष्य अपने उदरार्थ हनन करता है यह यदि किसी को जानना हो तो वह इस जहाज़ पर चला जाय और जिन जानवरों के उसने नाम तक न सुने हों उनकी अन्तराकृति वह नंगी आंखों देख लेगा। जिन प्राणियों का स्मृतियों के प्रसंग में विचार नहीं, जिनका उल्लेख अशोक की निषेध तालिका में नहीं वे तक एलिज़ाबेथ की खाद्य सूचि में मिल जायेंगे। मनुष्य विशेषतः जो इन मांसों का आहार नहीं करता अथवा वह भी जो इनका आहार करके भी

प्राणियों की वैयक्तिक चेतना को समझ सकता है, अनेक बार चकित हो पूछता है—क्या सचमुच यह सारा मनुष्य का आहार है, प्राणी का आहार प्राणी! पर प्राणी का आहार क्या प्राणी नहीं है? ऋषि ने कहा था—आहार अच्छा बुरा कुछ नहीं आहार केवल एक है, मूर्ख और वह बुद्धिमान का। सो प्राणी प्राणी का आहार है और उसका सबसे बड़ा प्रतीक यह एलिज़ाबेथ है। इंग्लैण्ड का वह छोटा सा देश, प्रकृति की देन के समक्ष वह अभागा देश जिसके चारों ओर समुद्र टकराता है, अपनी छोटी दुनियाँ से निकल कर फैली दुनियों का स्वामी बन बैठा—शायद इसीलिये प्राणी होकर उसने प्राणी को आहार बनाने की चिन्ता की थी। अपने इसी अध्यवसाय से उसने जहाज़ों के बेड़े तैयार किये, वे बेजोड़ बेड़े जिन्होंने दुनियां की जल-थल की शक्तियों की हस्ती मिटा दी, जिसने पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर उन अभागे देशों को जकड़ा जिनकी पीठ पर उसकी प्रभुता क़ायम हुई।

प्राणी प्राणी का आहार दो तरह बनता है। दो प्रकार से उसको मूढ़ बना लिया जाता है। उसे मूढ़ बना लेना आवश्यक है क्योंकि जाग्रत और जीवित को खाया नहीं जा सकता, कम से कम खाकर हज़म नहीं किया जा सकता। मकड़ी जब अपना शिकार डकार जाना चाहती है तब पहले वह उसे अपने तन्तुओं में कसती है और एक बार उसे बाँध लेने पर वह निरन्तर अपना तन्तु ओढ़ाती जाती है जब तक कि उसका शिकार सर्वथा शिथिल बेबस और मरणोन्मुख नहीं हो जाता। सो प्राणी को मार कर ही या कम से कम मूर्छित करके ही आत्मसात् किया जा सकता है। इंग्लैंड भी बराबर इसी प्राकृतिक आचरण का पोषक रहा है। उसकी व्यथा बराबर गिरे हुओं को देखकर बढ़ती रहती है और अपने अधिकार के लम्बे जीवन में उसने बराबर अनुकम्पा और दायित्व से काम लिया है। मूढ़ बनाने का एक तरीका तो सीधा छिपकली या मकड़ी की तरह प्राणी को मारकर बेबस

कर देना है। दूसरा तरीका उसको अपनी प्रभा-प्रतिभा से चकित-चमत्कृत कर देना है। इंग्लैंड ने बराबर दोनों में से किसी एक नीति का उपयोग किया है यद्यपि उसे दूसरी नीति अधिक प्रिय रही है।

एलिज़ाबेथ उसी देश का जहाज़ है। उसी साम्राज्य का जहाज़, साम्राज्य की उस पहली निर्माता रानी एलिज़ाबेथ का नामधारी जिसने न केवल खाद्य प्राणियों को अपना आहार माना है वरन् अपने समान विचार और मान्यताएँ रखने वाले मनुष्य तक को, और जिसने न केवल व्यक्तिगत मनुष्यों को ही बल्कि समूचे राष्ट्रों को ही उदरस्थ कर लिया है। एलिज़ाबेथ उसी साम्राज्य की संज्ञा है और अब इस समय उसे हम अमेरिका के समुद्र पर पुरानी और नई दुनिया के बीच खड़ा देख रहे हैं। उसके पीछे इतिहास के सबसे बड़े साम्राज्य इंग्लैण्ड का विस्तार पड़ा है, उसके आगे भविष्य के विश्वव्यापी साम्राज्य का स्वप्न देखने वाले अमेरिका का सम्पन्न बन्दर न्यूयार्क खड़ा है।

यह एलिज़ाबेथ है, सात मञ्जिलों का ऊँचा जहाज़। लगता है जैसे विशाल महल पानी पर डोल रहा हो। महल कहना वास्तव में उसकी शान में बट्टा लगाना है, उसकी आकृति नगर की है, उसकी जनसंख्या छोटे-मोटे नगर से कम नहीं, और यह जनसंख्या साधारण नगर की सी नहीं, चुनी हुई अधिकतर दूध की धोई मानवता की है, बड़े से बड़े, नये से नये, शक्तिमान से शक्तिमान नगर के मक्खन सी—श्रीमानों की।

श्रीमानों की, जिनकी चाल में अजब बोझ है, जिनके पहनावे में कहीं सिकुड़न नहीं, जिनकी गर्दनों के कॉलर फ़ौलाद से कड़े हैं और जिनकी ठुड्डी के नीचे आधी दर्जन ठुड्डियां बनी हुई हैं। यही संसार के भाग्य विधाता हैं। संसार के बाज़ार इन्हीं के इशारों पर नाचते हैं, अपने पट खोलते और बन्द करते हैं और इन्हीं के आक्रोश से दुनिया के दूर-दूर के रहने वाले अपनी जीवन लीला समाप्त कर देते हैं। इनके

तेवरों में मृत्यु का उतना ही घना निवास है जितना कि इनकी मुस्कानों में।

फ़र्स्ट क्लास के केबिनों से लगा यह फैला कीमती 'लौंज' है जहां शराब दुनियां से तिगुनी कीमत पर मिलती है, जहां तम्बाकू और सिगरेट अपनी कीमत पर बिकती हैं और जहां मनुष्य की जन्म-दात्रियां नंगी होकर इन आधी दर्जन दुड्डियों वाले अतिमानवों के इशारे पर नाचती हैं। लौंजों में शराब ढलती है, ताश जमता है, जुआ चलता है और घर बसाए-बिगाड़े जाते हैं। उसी लौंज में नाचने का हॉल है, बीच में रस्सियों से घिरा जहां भीतर से घिनौने लोग ऊपर से चमकते हाथों के सहारे प्रेयसियों का संचालन करते हैं और जब जोड़े आर्केस्ट्रा की आवाज़ का सहारा पा लेते हैं—जिस आवाज़ में आसपास की आवाज़ खोयी रहती है और जिसकी गूंज बैठे लोगों के कानों को भर देती है—तभी जोड़े अपनी वासना के सूत्र हल्के से एक दूसरे को सरका देते हैं जिनका अन्त कहां होता है नहीं कहा जा सकता। और उसी लौंज में उसी ज़मीन पर जहां लकड़ी के फ़र्श पर जोड़े छलकते हैं, घुड़-दौड़ होती है, घुड़-दौड़, जो सच्चे घोड़ों की नहीं झूठे घोड़ों की है जिस पर श्रीमानों के मन-बहलाव के लिए दांव लगाये जाते हैं। दांव प्रगटतः नगण्य होते हैं पर भीतर भयानक, जिनसे घर बरबाद तक हो सकते हैं, पर घर बरबाद न होने के ठेकेदार कुछ ये ही थोड़े हैं, ऐसा उनका विश्वास है।

और वह उधर डेक पर जो अनगिनत जीवन रक्षिका (लाइफ़ बोट) नावें रक्खी हैं उनकी कहानी भी अद्भुत है। सही; उनकी अपनी-अपनी कहानी है, अपने-अपने भेद हैं क्योंकि ये खूबसूरत बड़ी नावें वास्तव में इतना जीवन की रक्षा नहीं करतीं (क्योंकि जहाज़ अक्सर डूबा नहीं करते) जितनी भेदों की रक्षा करती हैं। और इन भेदों की क्या चर्चा की जाय! चर्चा करने से जीभ ऐंठ जायेगी क्योंकि लन्दन का सारा हाइड-

ार्क, पैरिस का समूचा शाँज़ेलीज़े, रोम का कोलोसियम के सामने वाला सविस्तर खंडहर सभी सिमट कर उन नावों के पीछे आजाते हैं जब कामुकों के निःस्पन्द जोड़े उधर सरक जाते हैं। गोधूलि नगरों में, गाँवों और जनपदों में धूल उड़ाती आती है और उस धूल पर रात अपने अंधियाले की छाया डाल देती है। एलिज़ाबेथ की गोधूलि में धूल नहीं, उसकी सांझ में फेनिल समुद्र का अट्टहास है। नीले आकाश के नीचे नीले समुद्र का उन प्राणियों के प्रति धिक्कार है जो हज़ारों जानों से खेलकर इस जहाज़ में दम लेने आते हैं।

वास्तविक दम तो वे पेरिस के क्लबों में लेते हैं जहां धन पानी की तरह बहता है। धन जिसकी कोई कीमत नहीं जो खुद अनेक प्राणियों की कीमत है। और ये प्राणी! पेरिस के क्लबों में दिन की सी चमकती रात के उजाले में कमनीय नग्न मूर्तियां जो ऋषि को भी बेबस कर दें, फिरती हैं, स्वच्छन्द डोलती हुई बोलती ह पर क्या बोलती हैं या तो वे नहीं जानतीं और यदि जानती भी हैं तो उसका अर्थ नहीं समझ पातीं। उनका डोलना-बोलना सब उनकी तनख़्वाह का परिणाम है और यह तनख़्वाह उनके स्वामियों के ज़रिये एलिज़ाबेथ के श्रीमान्, न्यूयार्क के वाल-स्ट्रीट और पार्क-स्ट्रीट के श्रीमान, सम्पन्न करते हैं। क्योंकि अपने भरे जीवन की थकान से ऊबकर दम लेने वे यहां आते हैं, उस पेरिस में। पेरिस वालों का कहना है कि वे विवश हैं क्योंकि धारासार सम्पत्ति के सामने उनकी क़समें टिक नहीं पातीं, और सच ही जो वे टिक पातीं तो उस पार के ये श्रीमान भला वहां कैसे टिक पाते?

यह 'क्वीन एलिज़ाबेथ' है, वही एलिज़ाबेथ जो साउथैम्पटन और न्यूयार्क के बीच निरन्तर चक्कर लगाया करता है और जो आज इस समय, इस अंटकी सांझ के समय हमारे सामने खड़ा हमारे उठते और फैलते स्वप्नों को रूप दे रहा है। मेरे आस-पास खड़े लोग, नर और

नारी, खुदा के बन्दे, पादरी और भिक्षुणियां बस एक स्वप्न देख रहे हैं—'एलिज़ाबेथ' में कभी सफ़र करना। पर मेरे सामने तो 'एलिज़ाबेथ' केवल वह शृंखला है जिसने पश्चिम को पूर्व से जोड़ा है और जिसकी जोड़ने वाली शृंखला में कड़ियों के रूप में सारे पूर्वी देश जकड़ गये हैं!

: १८ :

ये ज़ुल्म में भी पनपते हैं

ये ज़ुल्म में भी पनपते हैं—ये डेन्मार्क के साहित्यकार। अभी उस दिन जो कोपेनहेगेन पहुंचा तो साहित्यिकों की धर-पकड़ का बाज़ार गर्म था। वे पकड़े गये और कुछ ही घण्टों में छूट भी गये।

वे पकड़े गये क्योंकि उन्हों ने शान्ति की आवाज़ उठाई थी। शान्ति की आवाज़ डेन्मार्क में! डेन्मार्क में शान्ति की आवाज़ उतनी ही भयानक समझी जाती है जितनी संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में। अमेरिका में जान हावर्ड लासन, सैमुएल ओर्निट्स, ट्रम्बो, रिंगलार्डनर, अल्वा बेसी, हावर्ड फ़ास्ट आदि अनेक बार जेल भेज दिये गये क्योंकि उन्होंने उस फौजी शस्त्र सम्मत देश में शान्ति की रक्षा के प्रयत्न में आवाज़ बुलन्द की की थी। उन्होंने कहा था कि प्रशान्त महासागर के पार अमेरिका के

नौनिहालों को भी उन्हीं तोपों का आहार बनाना इन्सानियत के असूलों के खिलाफ़ है और एन्चेसन की सरकार ने उनके मुहों पर, आमद-रफ्त पर, मिलने-जुलने पर, लिखने-पढ़ने पर ताले ठोक दिये, परन्तु फ़ौलादी शिकंजे के बाहर फिर भी उनकी आवाज़ आती, उठती और पसरती रही—हम युद्ध नहीं चाहते, हम शान्ति चाहते हैं, बिना लड़े जीने का अधिकार।

वही आवाज़ डेन्मार्क में भी उठी, उठती रही, आज भी उठ रही है। इसलिए विशेष कि अमेरिका अतलान्तिक पार यूरोप तक पसर कर फैल गया है और वहाँ भी इन्सानियत का दम घोंटने के उसके प्रयत्न जारी हैं। जँग-परस्ती का सब से बड़ा मन्दिर उसी डेन्मार्क में खड़ा किया जा रहा है, जहां अमेरिका का बेइन्तहा धन पानी की तरह बह रहा है, जहाँ निक्सो की बूढ़ी मगर ताकतवर और ऊँची आवाज़ उठ-उठ कर दिगन्त को भरती जा रही है—नहीं, हम लड़ाई नहीं चाहते, वैसे ही जैसे हम डालर नहीं चाहते क्योंकि हम अमन चाहते हैं, क्योंकि पिछली लड़ाइयों की मार से यूरोप बरबाद हो चुका है, डेन्मार्क तबाह हो चुका है और इन्सानियत का खून काफ़ी बह चुका है। अब उसे पथ्य चाहिए, शस्त्र नहीं।

पर उस बूढ़े निक्सो की आवाज़ दबाई जा रही है। उसकी लेख-मालाएँ आग के सुपुर्द की जा रही हैं। पर आवाज़ उसकी भी, उसके साथियों की भी, दिन-दिन और बुलन्द होती जा रही है, दिन-दिन उसकी लेख-मालाएँ जनता के हाथों में पहुंचती जा रही हैं यद्यपि 'पोली तिकेन' और 'बर्लिंग्स के टिडिंडे' के कालमों में छपने की सम्भावना न तो उसके लेखों की है और न उसके साथियों के लेखों की। फिर भी उनकी आवाज़ डेन्मार्क के आसमान पर छायी जा रही है।

जनरल आइज़न-हावर का पश्चिमी यूरोप का सबसे बड़ा शस्त्राधार

डेन्मार्क में ही कायम हो रहा है। डेन्मार्क ने सदियों के दौरान में साम्राज्य बनाया, आस पास के देशों को जीता। ग्रीनलैएड पर अब भी उसका अधिकार है और नार्वे का राजा भी उसी के राजपरिवार का एक व्यक्ति है। आज इधर कुछ दिनों से उसने अपने अर्थ की एक नयी योजना निकाली और उसको इस रूप से पूरा करना चाहा कि साधारणतः उसका रूप आकर्षक दीखने लगा है, उसकी बीमा की योजना, बूढ़ों की देखभाल का इन्तज़ाम, प्रौढ़ साक्षरता की योजना सभी कुछ आकर्षक लगते हैं, लेकिन यह सारा आकर्षण डालर की बुनियाद पर खड़ा है जिसकी बुनियाद पर आइज़न-हावर का शस्त्राधार निर्मित हो रहा है।

उन्हीं डालर केंद्रित योजनाओं के लिए डेन्मार्क ने अपने को अमेरिका के हाथों बेच दिया है और उसी बिक्री के विरोध में बूढ़ा निक्सो अपने जवान अनुयायियों के साथ आवाज़ उठा रहा है। निक्सो आज प्रायः ६३ साल का है—मार्टिन एएडरसन निक्सो। डेन्मार्क हान्स एएडरसन का देश है जिसने संसार के आधुनिक साहित्य को आमूल प्रभावित किया है, उसी एएडरसन की लगायी बेल का मार्टिन निक्सो असाधारण प्रसून है।

निक्सो आज ६३ वर्ष से अधिक साल का है, नितान्त बूढ़ा, लेकिन आज भी उसकी लेखनी में असुर का सा बल है, उसके विचारों में ग़ज़ब का तेज है और उसकी वाक्यावली में असामान्य प्रतिभा। डेन्मार्क ही नहीं सारे पश्चिमी यूरोप के साहित्यिक जगत का निक्सो नेता है। पिछले ५० वर्षों से उसने उस जगत का नेतृत्व किया है। ज़माने बदलते गये हैं, बिस्मार्क कैसर को बागडोर दे सरक गया, कैसर हिटलर को, मगर निक्सो के प्रगतिशील दृष्टिकोण में अन्तर न पड़ा। अधिकारों की लड़ाई यूरोप में वह बराबर लड़ता रहा है, आज भी लड़ रहा है। उसने बिस्मार्क की सेनाओं को देखा, पहले महासमर की तोपों की गर्जना सुनी। दूसरे

महासमर के बमबाज़ों की भी, परन्तु शान्ति के सम्बन्ध में उसने अपना रुख नहीं बदला और आज भी वह शान्ति का संसार-प्रसिद्ध महान् पुजारी है।

नात्सियों का जब दबदबा बढ़ा और हिटलर ने जब डेन्मार्क पर अधिकार कर लिया तब उसके वीर अनुयायियों को पकड़कर जेलों में डाल दिया गया, वह स्वयं एक ज़माने तक 'कन्सेन्ट्रेशन कैम्प' में कैद रहा। तब वह कपड़े पर लिखता था, आज भी उसे अनेक बार कपड़े पर ही लिखना पड़ रहा है मगर न वह तब चूका और न आज, और उसकी लेखनी निरन्तर सत्ता के विरोध में आग उगलती रही जैसी आज भी वह उगलती जा रही है। निक्सो ने अभी इस भरे बुढ़ापे में 'जीवन के गान' नामक एक उपन्यास लिखा है जिसमें जनता के संघर्ष की कहानी सबल लेखनी से प्रस्तुत हुई है। निक्सो का यह दावा है कि वह सदा जनतन्त्र, शान्ति और आज़ादी की लड़ाई में बलिदान करती हुई मानवता का सहायक होगा, उसी के पक्ष में वह लिखेगा, अन्य किसी जनेतर प्रसंग को लिखकर वह अपनी लेखनी कभी कलुषित नहीं करेगा। अपने भरे लम्बे जीवन में कभी उसने अपनी प्रतिज्ञा झूठी न होने दी।

निक्सो के सामने जब मैं खड़ा हुआ, मैंने अपने सामने बिखरे जनतन्त्र को जन साहित्य और शान्ति की केन्द्रीभूत एक धवल राशी खड़ी देखी। वृद्धावस्था ज़ोर कर रही है, आख़िर लोहा भी समय के प्रभाव से चूर-चूर हो जाता है, पर निक्सो की आकृति में मैंने शान्ति और शक्ति को एक साथ केन्द्रित पाया। सहज, सधारण, नितान्त सामान्य उसकी चेष्टा, पर उसके रोम रोम से शान्ति की आवाज़ उठती हुई, कुचली मानवता की रक्षा में, उसकी वाणी में बहुरती हुई शक्ति, मधुर गिरा में अनन्त सहानुभूति, एकस्थ मैंने उस आज के भीष्म निक्सो में पाया।

"डेन्मार्क पर तो अमेरिका का राहु छाये जा रहा है, आप क्या उसकी रक्षा कर सकेंगे ?" मैंने पूछा।

"निश्चय !" बुढ़ापे की आवाज़, पर बुलन्द, वातावरण को अपने कम्पन से भरती हुई इस शक्ति के साथ उच्चरित हुई कि मैं चौंक उठा और क्षण भर इसमें सन्देह करने लगा कि क्या वह आवाज़ उसी आधार से उठी है जो मेरे सामने है। पर भला इसकी सत्यता में किसे सन्देह हो सकता था, विशेष कर जब वह उसी आधार से अनवरत उठती आवाज निरन्तर सतेज होती गयी—"निश्चय, हमें अपने उपकरणों में, अपने अध्यवसाय में, शान्ति की अपनी कामना में और साथ ही अमरीकी विषमताओं में सन्देह नहीं। अन्तिम विजय सर्वहाराओं की होगी और अमन का बोल बाला होगा, इन्सानियत अपने स्वाभाविक अधिकारों से फूले फलेगी।"

"आपका उपन्यास क्या पूरा हो गया?"

"प्रायः हो चुका है, उसकी दूसरी आवृत्ति भी कर चुका हूँ।"

"आपको लिखने के लिए काग़ज़ मिल जाता है! काग़ज़ पर तो यहाँ, सुना है, बड़ा भयानक कन्ट्रोल है।"

"हाँ, कन्ट्रोल है और बुरा कन्ट्रोल है। विशेषतः इसलिए कि वह अपने भयानक रूप में प्रगतिशील लेखकों के विरोध में ही बर्त्ता जाता है। प्रगतिशीलों ने काग़ज़ के अभाव में किन-किन साधनों से लिखने के लिए काग़ज का प्रबन्ध किया है यह बता सकना कठिन है, आप उनका अन्दाज़ा भी नहीं लगा सकते। फिर भी हम लिखते जा रहे हैं और लिखी हुई सामग्री की निरन्तर खपत भी होती जा रही है। जनता में हमारी चीज़ों की माँग है और हम अपनी बात उससे कहना चाहते हैं और दोनों के इस नित्य सम्बन्ध में कोई शक्ति चाहे वह कितनी भी शक्तिमती क्यों न हो अन्तर नहीं डाल सकती।"

"सुना है आपका नाम पाठ्य पुस्तकों से हटाया जा रहा है, क्या यह सच है?"

"सच है । परन्तु उससे हमारे काम में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती । यशः शरीर को बनाये रखने की कभी कामना नहीं हुई क्योंकि विचारों के अटूट प्रवाह का जीवन मृत्यु के बाद भी जिन्दा रहता है और जिस परम्परा के हम पोषक हैं और जो परम्परा हमें इन्सानियत की दाय के रूप में मिली है उसको मेरे बाद भी क़ायम रखने और ले चलने वालों की कमी नहीं । इससे हम न रहे या हमारी वैयक्तिक यशः चेतना न रहे तो क्या ? अफ़सोस इसका नहीं है कि नाम पाठ्य पुस्तकों से हटाया जा रहा है, परेशानी इसकी है कि लिखने को काग़ज़ नहीं मिल रहा है । हाँ, पर लिखना बन्द नहीं, न उसमें किसी प्रकार की रुकावट है । सुबह के उजेले के पहले अंधेरा बड़ा गहरा होता है ।"

निक्सो को महापुरुष कहना उसके आकार को छोटा करना है । वह *तो अविकृत जीवन का वह स्वरूप है जिसमें मानवता सांस लेती है ।* उसका धर्म वैयक्तिक नहीं, युग-धर्म नहीं, वह पारस्परिक धर्म है जिसकी दाय का वह रक्षक है और जो जनता में संघर्ष और अधिकार चेतना में निरन्तर प्राण फूंकता जा रहा है ।

गद्-गद् वहाँ से विदा हुआ । निक्सो के कर स्पर्श के बाद उससे विदा लेते समय उसके हाथ का अपनी पीठ पर स्पर्श आज भी याद है जो कण-कण में स्फूर्ति पैदा कर देता है । मार्टिन एण्डरसन निक्सो डेनिश राष्ट्रीय शान्ति समिति का सदस्य है और वार्सा की शान्ति परिषद् का भी । अन्तर्राष्ट्रीय स्तालिन पुरस्कार की ज्यूरी का भी वह सदस्य है । जीवन में उसने कटुता का अमित व्यवहार पाया है । परन्तु उसके स्पर्श से वह सारा मधुर बन गया है । जितना तिक्त व्यवहार उसे छूता है वह सारा मधुर होकर सर्वत्र व्याप्त हो जाता है । निक्सो बड़ी आशा से भविष्य के निर्माताओं की ओर देख रहा है और उसका विश्वास है कि उनके निर्माण कार्य में उसकी साँस बराबर बसेगी ।
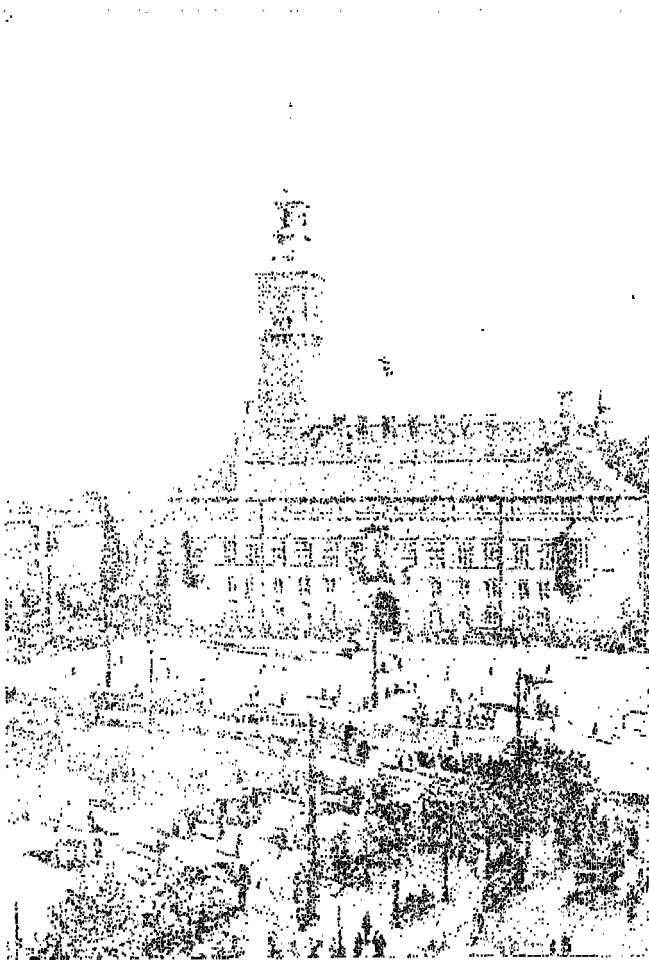
कोपेन हेगेन का टाउन हॉल

हैन्स कर्क डेन्मार्क की उसी सम्पदा का रत्न है जिसको उत्पन्न कर जीवित रखने का श्रेय मार्टिन निक्सो को है। हैन्स कर्क के उपन्यास 'गुलाम' की कहानी अद्भुत है। कहानी का कथानक इतना नहीं जितना उसके निर्माण की परिस्थितियाँ अद्भुत हैं। नात्सी शासनकाल में डेन्मार्क के अनेक प्रतिभाशाली प्रगतिशील साहित्यिक और कलाकार उसके शिकार हुए, उसके कन्सेन्ट्रेशन कैम्पों में एक ज़माने तक कुचले जाते रहे, उन्हीं में कर्क भी था। बड़ी कठिनाइयों से काग़ज़ और लिखने लायक कपड़े का इन्तज़ाम कर उसने कैद में ही अपना वह अद्भुत उपन्यास पूरा किया। उसके जेलरों को उस उपन्यास का पता लग गया और उन्होंने पाण्डु लिपि छीन ली। उसे उन्होंने अग्नि को समर्पित कर दिया। कर्क ने उपन्यास फिर लिख डाला। पाण्डु लिपि फिर पकड़ी गई। कर्क ने कैम्प के बिजली वाले तारों को चमत्कृत कर स्वीडन की राह ली। दुश्मन देखते ही रह गये। वह स्टाकहोल्म जा पहुँचा और तीसरी बार अपना 'गुलाम' लिख डाला। मैंने पूछा, "भला आप एक के बाद दो दो बार नष्ट किये उपन्यास को कैसे लिख सके?" "क्योंकि जिस आधार पर उपन्यास की इकाइयां टिकी थीं वह आधार मेरे दिमाग में था और मैं स्वयं नष्ट न हो गया था। अनुभूतियां इतनी प्रखर, इतनी जीवित मेरी स्मृति में थीं कि उनसे भिन्न मेरा कोई अस्तित्व न था और अगर नात्सी भेड़िये सौ बार भी उसे नष्ट कर देते तो भी मैं उपन्यास एक-सौ-एकवीं बार फिर लिख लेता। हान्स कार्क ने जब प्रण के रूप में अपना यह निश्चय कहा तब उसकी मुट्ठी की उँगलियाँ कस गयी थीं और चेहरे पर ग़ज़ब का नूर रोशन था।

ओटो गैल्स्टेड का नाम 'उठो और मशाल जला दो!' नामक कविता-संग्रह से डेन्मार्क की भौगोलिक परिधि पार कर चुका है। उस देश के काव्याकाश में गैल्स्टेड प्रखर नक्षत्र है। उसकी एक दूसरी कविता—'हमारी नियत में नात्सीवाद' दिलों को टटोलने वाली एक असाधारण चीज़ है।

अपने एलानों से व्यवहार में हम कितने दूर हैं इसका भण्डाफोड़ इस कविता में पंक्ति-पंक्ति पर किया है। पिछले महासमर के बाद के यशस्वी कवियों में गैल्स्टेड का स्थान अक्षुण्ण है।

शेरफ़िग की कान्ति दिन-ब-दिन प्रखर होती जा रही है, उसी मात्रा में जिस मात्रा में उसकी लेखनी शान्ति और सत्य के शत्रुओं का पर्दा फाश करने में अनवरत चल रही है। युद्ध के पूर्व के लेखकों में हान्स शेरफ़िग का स्थान काफ़ी ऊँचा है। आदर्शवादियों के अपार्थिव दृष्टिकोण का अपने 'वह अफ़सर जो गायब हो गया' में उसने भयानक भंडाफोड़ किया है। यह उसकी अद्भुत व्यंगात्मक कृति है जिसमें उसने निम्न मध्यमवर्ग की वस्तु-स्थिति को तार तार करके रख दिया है। स्वयं प्रयास न करके भी प्रतिष्ठापित साम्यवादी समाज के लाभों के सपने देखने वाले 'फ़िलिस्टीनों' का इतना सुन्दर और सजीव वर्णन अन्यत्र उपलब्ध नहीं।

विलियम हाइनेसन का उपन्यास 'काली कढ़ाई' पहले पढ़ चुका था पर उनके दर्शन न हुए थे। मिलने को लालायित था। मिला और 'काली कढ़ाई' के लेखक के असामान्य तेवर देखे। हाइनेसन डेनमार्क के उन लेखकों में से है जो व्यंग्य को कुठार बनाकर शत्रु और मित्र दोनों पर आघात करते हैं। शत्रु पर विजय पाने के लिए और मित्र पर उसके सन्देहों के काया-कल्प के लिए, अग्नि परीक्षा के लिए।

डेन्मार्क में एक प्रकार की श्रमिक सरकार कायम है, श्रमिक सरकार उसी अर्थ में जिस अर्थ में वह नार्वे, स्वीडन, हालैन्ड, बैल्जियम, फ्रांस और इटली में भी कायम है, और जिस अर्थ में वह इंग्लैंड में भी अभी हाल तक कायम रही है। यानी उसके एलानों पर श्रम के आभास का पानी चढ़ा हुआ है पर जिसके अंतरंग पर अंकिल सैम क़ाबिज़ है।

: १६ :

विज्ञान और कला

जूलियो क्यूरी और पिकासो ।

मँझोला क़द, गठा बदन, सादे बाल, हँसोड़ चेहरा, खुली हँसी, स्पष्ट आवाज़—जूलियो क्यूरी ।

होटल से फ़ोन कर दिया था और उत्तर आ गया था कि तीसरे पहर अणु बम के प्रख्यात विज्ञानवेत्ता जूलियो क्यूरी कालेज के ही अपने कमरे में मिलेंगे । पहुंचते ही बुला लिया और तपाक से मिले । मिलते ही कहा अँग्रेज़ी में गति उतनी ही है जितनी तब थी जब हिन्दुस्तान गया था । धीरे धीरे बात करने पर अँग्रेज़ी भली भांति समझ लेते थे । कोई दुभाषिया नहीं बुलाया । उसका एक विशेष कारण भी था जिसे बताने की यहाँ आवश्यकता नहीं ।

भगवतशरण

नाम मालूम था और मुझे आश्चर्य हुआ जब उन्होंने मेरे कुल नाम, व्यक्ति नाम तक का स्पष्टतः उच्चारण किया। कहा पार्टिजन पीस-कांग्रेस के दिनों से ही नाम याद है। फिर बहुत कुछ कहा जो वहां की सरकारी नीति से सम्बन्ध रखता है, जनान्दोलनों से, शान्ति के आयोजनों से जिनके संचालन और मूर्तन में जूलियो क्यूरी का विशेष हाथ रहा है।

जूलियो क्यूरी शुद्ध विज्ञान के ही पण्डित नहीं, अणुबम के अंतरंग के ही ज्ञाता नहीं, बल्कि जनतत्व के भी असाधारण द्रष्टा हैं। जीवन के नैतिक पहलुओं को न केवल उन्होंने अत्यन्त निकट से देखा है बल्कि उनका एक ज़माने से संचालन भी किया है। अपनी यात्रा के क्रम में मुझे अनेक विद्वानों और वैज्ञानिकों से मिलने का अवसर मिला था परन्तु जहाँ औरों को अधिकतर नितान्त अन्तर्मुख अथवा अपने विषय की प्राचीरों से जकड़े पाया वहाँ क्यूरी को सर्वथा उन्मुक्त पाया। लेबो-रेटरी में उनका कार्य चाहे जितना भी लाक्षणिक होता हो पर उनकी क्रियाशीलता कितनी मानव प्रधान है, यह यहां कहना न होगा।

फ्रांस के वामपक्षीय जनान्दोलन निरन्तर जूलियो क्यूरी की ओर देखते हैं और जूलियो क्यूरी सर्वत्र अपने अध्यवसाय, अपनी लगन और सूझ से उनका संचालन करते हैं। मार्क्सवाद के प्रति निष्ठा ने जो उन पर एक सार्वभौम चेतना का जादू डाला है उससे वे अपनी वैज्ञानिक परिधि छोड़कर मिलने वालों के निकट सम्पर्क में स्वभावतः आ जाते हैं। एक तो उनकी आकार चेष्टा ही जनप्रिय है, सार्वजनिक अभिरुचि से जाग्रत, दूसरे उनकी निष्ठा और जीवन-सिद्धान्त भी उन्हें साधारण जन-समाज की ओर बरबस आकृष्ट करते हैं।

फ्रांस, अमेरिका, इँग्लैण्ड और भारत की अनेक सार्वजनिक, विशेषतः शान्ति की, समस्याओं पर हम देर तक बात करते रहे। आइन्स्टाइन के एटम बम विरोधी इन्टरव्यू की जब मैंने उनसे बात कही,

जूलियो क्यूरी

तब वे सहसा चुप हो गये। उन्हें उस सम्बंध में सचमुच कुछ विशेष कहना न था। एटम बम के वैज्ञानिक होते हुए भी, एटम बम कमीशन के कभी के सदस्य रहते हुए भी, उन्हें उस ओर से जैसे प्रत्यक्ष उदासीनता थी। परन्तु वास्तव में वह निष्क्रिय न थी क्योंकि सैकड़ों-हज़ारों बार जो इस विज्ञान के सक्रिय महापण्डित ने एटम बम के विरोध में अपनी आवाज़ उठाई थी वह शान्ति के पक्ष में कार्य करने वालों के लिये एक शक्ति बन गयी थी। दूसरे वैज्ञानिकों की उस मारक यन्त्र के प्रति शान्ति के पक्ष में जहां केवल मौखिक और प्रायः उदासीन वृत्ति थी, जूलियो क्यूरी के लिये उसकी चर्चा उतने ही महत्व की थी जितनी उसके प्रहार के परिणाम की। आध घण्टे तक क्यूरी ने उस बम के विध्वंसात्मक रूप का खाका खींचा और उसका उपयोग करने वालों को मानवता का शत्रु कहा। जब वे एटम बम सम्बन्धी चर्चा कर रहे थे निःसन्देह वे अकेले बोल रहे थे और कमरा उनके शब्दों से भर और गूँज रहा था। उनका वह विस्फोट मेरी समझ में मानवता की आशा था। धीर-गम्भीर वाणी में देर तक वे युद्ध की संहारक योजनाओं की बात कहते रहे और विशेष जलन उनको अपने वर्ग के उन वैज्ञानिकों से थी जो मानव-संहारक उपादानों को प्रस्तुत करने में अपना योग दे रहे हैं। उनका कहना था कि सरकार के सारे अनुरोधों और धमकियों से ऊपर उठ कर वैज्ञानिकों को गुप्त अस्त्रों की खोज में भाग लेने से सर्वथा इन्कार कर देना चाहिये।

इसी समय उनके सेक्रेटरी ने कमरे में आकर काग़ज़ का एक टुकड़ा दिया जिसे पढ़ कर जूलियो क्यूरी ने मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने काग़ज़ पढ़ा पर फ्रेंच में होने से मैं उसकी इबारत समझ न सका यद्यपि चीन और चैकोस्लोवाकिया के नाम मैंने उस पर स्पष्ट पढ़े। क्यूरी ने बताया कि साइंस कांग्रेस पेरिस में करने वाले हैं, उसके अधिवेशन के लिये दिन-रात हम लोग प्रयत्न कर रहे हैं और इधर हमारी बेवकूफ़ सरकार ने

चीनी और चेक वैज्ञानिकों को फ्रेंच वीज़ा देने से इंकार कर फ्रांस में उनका आना रोक दिया है। फिर एक बार उनकी भारती मुखरित हुई, कुछ अंग्रेजी और कुछ फ्रेंच में। और जब उनको मेरा ध्यान आया तब हँसते हुए उन्होंने फ्रेंच बोलने के कारण मुझसे क्षमा मांगी। मैंने उनसे कहा कि भाषा का जो अनवरत और स्वाभाविक प्रवाह चल रहा था उसे चलने दें, अनजाना होता हुआ भी वह मुझे स्पष्ट है क्योंकि प्रसंग जानकर उसके प्रति उद्रेक की भी मैं कल्पना कर सकता हूं और उस उद्रेक की परिधि की भी। क्यूरी ने अपनी सरकार की आलोचना कष्ट के साथ की।

जूलियो क्यूरी के भावोद्रेक का साक्ष्य मुझे एक बार और करना पड़ा। सुबह के नौ बजे थे। मैं उठकर बाहर जाने की तैयारी में था। एक सज्जन मिलने आये थे। उनको विदा कर अंग्रेज़ी अखबार के शीर्षकों पर बिस्तर पर बैठा तकिये पर झुका नज़र दौड़ा रहा था कि फ़ोन की घण्टी बजी। चोंगा कान पर रखते ही क्यूरी साहब की आवाज़ सुन पड़ी—

"जग चुके हैं ?"

"कब का। अब तो बाहर जाने की तैयारी में हूं। कहिये क्या हुक्म है ?"

अभी अपनी बात मैंने ख़त्म भी न की थी कि जूलियो क्यूरी की कुछ परुष आवाज़ सुन पड़ी। उनकी आवाज़ प्रकृतितः मधुर है, बड़ी प्यारी, पर इस बार मुझे कुछ कठोर लगी, क्योंकि जो उन्होंने कहा वह निश्चय क्षोभ में कहा गया था।

"यह आपका ऐम्बेसेडर (राजदूत) कैसा आदमी है ?" उन्होंने पूछा।

मैं समझ गया कि बात कुछ बेतुकी है और मैंने पूछा भी—"क्या बात है ?"

"बात निःसन्देह अजब है। आज के समाचार-पत्रों ने बड़े शीर्षकों में छापा है कि मुझे हिन्दुस्तान की सरकार ने वीज़ा देने से इन्कार कर दिया। समझ में नहीं आता कि यह ख़बर अख़बारों में किसने भेजी और इसका मूलाधार क्या है। मैंने वीज़ा के लिए भारत सरकार को कभी आवेदन नहीं भेजा, पेरिसस्थ भारतीय दूतावास के किसी कर्मचारी से एक ज़माने से मिलना भी नहीं हुआ, समझ में नहीं आता कैसे इस प्रकार की ग़ैर-ज़िम्मेदार बात कही गई।"

मैं इसका उत्तर भला उन्हें क्या देता कि हमारा ऐम्बेसेडर किस क़िस्म का आदमी है। मैं स्वयं नहीं जानता सिवा इसके कि वह कनाडा रह चुका है और अब पेरिस के भारतीय दूतावास का प्रधान है। जो नीति नेहरू की सरकार विदेशों में भारतीय दूतावासों के सम्बन्ध में बरतती रही है उससे अनेक चिन्तनशील व्यक्तियों को क्षोभ हुआ है। जिस मात्रा में राजा-महाराजों, उनके दूसरे-तीसरे बेटों और सिविल सर्विस के अधिकारियों की नियुक्ति विदेशों में इधर हुई हैं, उसने भारत की परराष्ट्र-नीति को न केवल ख़तरे में डाल दिया है, बल्कि इस देश की मान्यताओं को गहरी क्षति पहुँचाई है। दूसरे देशों की निगाह में हिन्दुस्तान का जो स्तर था, वह कहीं नीचे खिसक आया है और खिसकता आ रहा है और इसका विशेष कारण इन अवांछनीय अधिकारियों की नियुक्ति है, जिनको न भारतीय संस्कृति आदि का कोई ज्ञान है, न पण्डित नेहरू की नीति में कोई निष्ठा और न संसार की शांति से कोई दिलचस्पी।

× × × ×

पिकासो। पिकासो फ्रांस के आकाश का आज सबसे अधिक देदीप्यमान नक्षत्र है। सल्वादोर डाली की तरह स्पेन छोड़ पिकासो भी निहायत

कम उम्र में फ्रांस चला गया था। फ्रांस के लिए यह कहा जाता है, और सही, कि वह आज भी कला के क्षेत्र में संसार का नेतृत्व कर रहा है। कला में यह फ्रांस का नेतृत्व आज विशेषकर पिकासो के कारण है। किस प्रकार यह विदेशी पेरिस जा कर वहां की कला का प्राण बन गया और किस प्रकार उसने प्रायः आधी शताब्दी तक उसका नेतृत्व किया है, यह बहुतों के लिए आश्चर्य की बात है।

पिकासो का यह नेतृत्व अपने ढंग का आप है। चित्रकला के क्षेत्र में आज के फ्रांस में और फलतः संसार में कोई 'कलम' नहीं जिसका आरम्भ पिकासो ने न किया हो। मूर्ति-कला का भी नेतृत्व अनेकांश में उसका रहा है, यद्यपि चित्रकला के ही आदर्श विशेषतः उसकी तूलिका से गौरवान्वित हुए हैं।

पिकासो ने 'कुर्ब' के कुल प्रयोग किये। दो चार तस्वीरें बना डालीं और वह आगे बढ़ गया। उसकी प्रगतिशीलता उसे अपने पिछले भावांकन से बांधे न रह सकी और वह निरन्तर चित्रकला में नए रूप सिरजता आगे बढ़ता गया। दूसरे लोग उसकी कृतियां बटोरते और उन पर शैलियों के ढब खड़े करते गये, पर पिकासो बढ़ता गया, चित्रकला में नई खोजें करता, कला के नए मानदण्ड खड़ा करता। अमूर्त भावांकन, अणुप्रभवक चित्ररेखा, क्यूबीज़्म आदि सबका उसने बारी-बारी आरम्भ किया और इनके बाद उस 'सुरियलिज़्म' का जिसका दार्शनिक आधार फ्रायड ने प्रस्तुत किया था।

पर पिकासो वहाँ भी रुका न रह सका। उसके सामने से दो-दो महासमर गुज़र गये थे और दोनों ने अपनी साँघातिक चोट फ्रान्स और उसके हृदय पेरिस पर की थी। पिकासो दोनों का साक्षी था और साथ फ्रांस की जनता की सहन-शक्ति और धीरज का भी। अब उसकी तूलिका प्रयोगों की परिधि को पार कर चुकी थी और उसने जन-प्रेरणाओं पर

पिकासो

अपने चित्रों का आधार रखा। समाजवादी यथार्थवाद उसका आज का निकटतम अभ्यास है जिसके परे जाना अब उसे काम्य नहीं। 'सुर्रियलिज़्म' की अन्तर्मुख दुनिया से निकलकर वह यथार्थवाद के वातावरण में खड़ा हुआ और उस सफल चितेरे ने नंगे-भूखों के चित्र बनाये, पोलैण्ड की विपद्ग्रस्त नारियों के, हिटलर की करतूतों के और अन्त में रूसी 'बैले' के लिए। उसके व्यंग्य चित्र, यथार्थवादी और परम्परा विरोधी चित्र, जब सन् ४६ में लन्दन में प्रदर्शित हुए, तब वहाँ की कला-परिषद् के प्रधान ने घोषणा की कि इस प्रदर्शनी के चित्र कला और बुद्धि के नाम पर न केवल आपदाजनक हैं, बल्कि अपमानजनक हैं। परन्तु दुनिया ने जाना कि जिस कलम में पिकासो की तूलिका का योग नहीं, वह आज अपूर्ण है।

जन-भावना से सम्बन्धित हो जाने के बाद तो पिकासो की तूलिका ने असाधारण क्षमता और गति प्राप्त कर ली है। नात्सियों के फ्रांस पर किये आक्रमण का उसने अपनी 'गेरनिका' में प्रतिशोध लिया। 'गेरनिका' वह छोटा नगर था जिसने पिछले महासमर में नात्सी साम्राज्यवाद और शस्त्रवाद को खुली चुनौती दी थी। फलस्वरूप नात्सियों ने उस नगर पर अधिकार कर उसे ज़मींदोज़ कर दिया। एक मकान भी वहाँ खड़ा न रह सका जो उसका स्मरण भी करा सकता। उस नगर के बलिदानों ने पिकासो के ब्रुश को आकृष्ट किया और परिणाम स्वरूप 'गेरनिका' नाम के उस चित्र की अभिसृष्टि हुई जो कला के इतिहास में अमर हो गया।

गेरनिका का चित्र जो पिकासो के अद्‌भुत कृतीत्व का प्रतीक है, जो गेरनिका के नर-नारियों की कुर्बानियों का अंकन है, पिकासो की चित्रशाला (स्टूडियो) में टंगा हुआ था। नात्सी सैनिकों ने पिकासो को ढूँढा और उसे अपनी स्टूडियो में चित्र-लेखन में संलग्न पाया। उन्हें पिकासो के उस चित्र की भी ज़रूरत थी और उस से बढ़कर उसके निर्माता पिकासो

की, जिस ने नात्सी नृशंसता का इतना सबल और जीवित रूप सृज दिया था कि उसकी रेखा-रेखा से, कोने-कोने से, रंगों के कण-कण से नात्सीवाद को धिक्कार उठती थी। पिकासो काम कर रहा था, तूलिका उसने नीचे धर दी और उन बनैले जन्तुओं को चुपचाप देखने लगा जिनके आतंक ने संसार को ख़तरे में डाल दिया था। गेरनिका पर उनकी नज़र गयी और उन्होंने चित्र की ओर इशारा कर पिकासो से पूछा—"यह क्या तुम्हारी करतूत है ?" कलाकार चुप था, सर्वथा मूक। उसकी पेशानी पर एक शिकन न थी, भय उसे छू न सका, उसने शान्त पर दृढ़ शब्दों में उत्तर दिया—"नहीं, तुम्हारी !" निश्चय वह कृति पिकासो की थी पर उसमें जिस करतूत ने रूप धारण किया था वह नात्सियों की थी।

पिकासो आज वृद्ध हो चला है। सत्तर वर्ष से उसकी आयु अधिक है पर उसकी तूलिका और लम्बकूर्च आज भी निरन्तर चल रहे हैं, निरन्तर जनतान्त्रिक सिद्धान्तों के पोषण में उसकी तूलिका चित्र उगलती जा रही है। साम्राज्य-विरोधी, युद्ध-विरोधी उसकी आवाज़ वर्ण और रेखा में आज मुखरित हो रही है। पिकासो शान्ति का सबसे बड़ा पुजारी और भक्त है। फ्रांस में रह कर उसने अपने देश स्पेन को बरबाद होते, टूक-टूक हो जाते देखा है, पेरिस से उसने फ्रांस और आसपास के देशों को समर की संहारक चोटों से हताहत होते देखा है और उसकी तूलिका ने अपना एकांगीपन छोड़कर जन-कल्याण की भावना से अपना कृतीत्व पवित्र किया है। आज की पिकासो की कृतियाँ केवल शान्ति के अवयवों का मूर्तन करा रही हैं। गॉग ने कभी एलान किया था—"मैं मानवता, मानवता, केवल मानवता का चित्रण करूँगा।" पिकासो आज "शान्ति, शान्ति, केवल शान्ति" का चित्रण कर रहा है।

कला-क्षेत्र के इस वृद्ध नेता का नेतृत्व पाँच दशाब्दियों पार आज सदियों का संभार लिए हुए है। पचास वर्ष के सक्रिय जीवन में जो

कुछ पिकासो कर सका है वह पचास चोटी के कलाकारों के लिये भी सम्पन्न कर सकना सम्भव न था। इधर जो उसने शान्ति के प्रतीक स्वरूप कबूतर का चित्रण किया है, वह प्राचीन रोमन सेनाओं और अर्वाचीन फाशिस्ती तथा नात्सी सेनाओं के पशु-बल के प्रतीक ईगल का समर्थ उत्तर है, और साथ ही शान्ति-प्रिय जनता के आश्वासन का प्रतीक भी। संसार की शान्ति-प्रचारक संस्थाओं और अग्रणी जन-सेवकों ने उसे अपना लाक्षणिक अंकन मान लिया है। पिकासो ने बहुत चित्र बनाये, अनेक जीवन-काल के लिए पर्याप्त, परन्तु जो सार्थकता उसके इस शान्ति-वाहक कबूतर के चित्रण की है, वह इस युद्ध-शंकित, समर-संत्रस्त संसार के लिए और किसी की नहीं।

पिकासो का शान्त और गम्भीर पर बालवत् सरल चेहरा मिलने वालों पर अपनी छाप छोड़े बिना नहीं रहता। आज उससे मिले कितने ही महीने हो गये पर लगता है वह अब भी सामने बैठा अपने चित्रों के पार अपने सृजित संसार के ऊपर उठकर सहानुभूति द्वारा अन्तस्तल को छू रहा है। पिकासो अपने लिए नहीं जीता दूसरों के लिए जीता है। वह न केवल अपने क्षेत्र में बल्कि मानव आदर्शों के क्षेत्र में भी नितान्त ऊंचा, कल्पलनातीत महान् है। महान् कौन है? वह "जिसका नाम लेखनी गुणियों की गणना के आरम्भ में ससंभ्रम लिख दे।" न केवल कला के क्षेत्र में, न केवल मानवता के उद्‌बोधन में बल्कि उसकी अनुकूल शान्ति की स्थापना में पिकासो का नाम आज सर्व प्रथम लिया जा रहा है।

जूलियो क्यूरी और पिकासो विज्ञान और चित्र-सम्पदा से ऊपर उठ गए हैं। विज्ञान और चित्रांकन दोनों जीवन के लिए आवश्यक हैं और साधक उनकी परिधि में बहुत कुछ साधना करता है, परन्तु जब उनकी सम्पदा लिए वह मानव कल्याण के द्वार पर सेवार्थ खड़ा होता है, तभी उसकी श्री आलोकमती होती है, तभी उसकी साधना सफल होती है। क्यूरी

और पिकासो दोनों ने अपनी साधनाएं मानव कल्याण के मार्ग में बिखेर कर सफल की हैं। विज्ञान और चित्रण अपने आधार से उठ कर आज जन कल्याण की भावना से पवित्र हुए हैं, कम से कम उस मात्रा में जिस मात्रा में उनका साहचर्य क्यूरी और पिकासो ने किया है।

विज्ञान का एक मारक स्वरूप वह भी है जिसने आज की दुनिया को आक्रान्त कर रखा है, जिसके लिए आज की युद्ध-प्रिय सरकारों ने अनेक-अनेक वैज्ञानिक प्रयोगशालाएं खड़ी कर रखी हैं। परन्तु जो महाभाग वैज्ञानिक मानवता के संहार के विरुद्ध खड़े हों, अपने अनुसन्धानों का प्रयोग उसके कुल को भरने में लगायेंगे उनकी साधना निश्चय धन्य होगी। क्यूरी आज फ्रांसीसी युद्धवाद के तेवरों का शिकार है। पुलीस के चरों से घिरा है पर उसकी साधना तनिक भी भय से विकृत नहीं हो पाती। पिकासो के सामने भी सोने की दीवार, अगर वह चाहे, खड़ी हो सकती है। (फ्रांस में सोना दुनिया के देशों में सबसे अधिक है) पर पिकासो अपने अर्थ, अपनी आवश्यकताओं, अपने लाभों को भुला कर सर्वहारा संसार की ओर देख रहा है। संसार अपनी मान्यताओं तथा सहानुभूति का कवच दोनों पर डाले हुए है—क्यूरी पर भी, पिकासो पर भी।

: २० :

यूनेस्को

१९५० के दिसम्बर में जब मुझे संयुक्त-राष्ट्र-संघ की बैठकें लेक सक्सेस और फलशिंग मेडो में देखकर निराशा हुई और जब मैंने उस संबन्ध की अपनी प्रतिक्रिया प्रगट की तब मुझे सलाह दी गयी कि मैं यूनेस्को की बैठकें देखूँ जहां मानवता को जगाने और उसके कल्याण के अर्थ प्रयत्न हो रहे हैं। मेरा अपना भी ख्याल था कि यद्यपि संयुक्त-राष्ट्र संघ की राजनैतिक कार्य-प्रणाली राष्ट्रों के, विशेषकर राष्ट्र प्रमुखों के, स्वार्थ से विकृत हो चुकी है, उसके इर्द-गिर्द काम करने वाली संस्थाओं का कार्य अनिंद्य है। यूनेस्को के प्रति भी तभी से विशेष आकर्षण हुआ था यद्यपि सिद्धान्तः मन में सन्देह उत्पन्न हो गया था कि जब प्रधान संघ की यह प्रवृत्ति है तब भला उसके गौण उपकरण कहां तक श्लाघ्य कार्य कर सकेंगे।

भगवतशरण

फिर भी जब पैरिस गया तो वहां जाने का एक विशेष आकर्षण यह यूनेस्को ही था। डाक्टर राधाकृष्णन् ने आक्सफोर्ड में ही बुलाकर मुझे यूनेस्को के प्रधानों से अपने सार्वभौम सांस्कृतिक और इतिहास सम्बन्धी योजनाओं की चर्चा करने की ताकीद कर दी थी। ओस्लो में आल्फ़ समरफेल्ट ने भी विशेष तरह से डाक्टर तोमा और टोरेस बोदेत से इस सम्बन्ध में परामर्श करने का अनुरोध किया था। और यद्यपि अपनी प्रतिक्रियाओं के कारण मैं उस दिशा में कुछ खास आशा नहीं करता था यह निश्चय था कि अपनी ओर से भी वहां कुछ करने धरने से जहां तक संभव हुआ न चूकूँगा।

संसार के सबसे प्रख्यात जीवित नृशास्त्र के वृद्ध पण्डित पालरिवे ने पैरिस में मेरे पहुँचते ही बुलाकर मुझ से मेरे मानव इतिहास सम्बन्धी विचारों पर अपना अनुकूल मत प्रगट करते हुए यूनेस्को सम्बन्धी मेरे प्रयत्नों की बात सुन मुस्करा दिया था। उस मुस्कराहट में व्यंग्य और वेदना दोनों का स्पष्ट सम्मिश्रण था जिसने मेरे उत्साह को और भी कमज़ोर कर दिया। बाद में उनके सेक्रेटरी ने मुझे बताया कि मेरे ही उसूलों से मिलते-जुलते विचारों के प्रति उपेक्षा के कारण ही पण्डितवर पालरिवे को यूनेस्को से इस्तीफ़ा देना पड़ा था। पालरिवे ने फिर भी मेरी योजनाओं को सद्योजनाएँ कहकर उनमें अपनी प्रगाढ़ निष्ठा प्रगट करते हुए उनकी सफलता की कामना प्रदर्शित की और मैं यूनेस्को की ओर चला।

पेरिस में रहते मुझे प्राय: दस दिन हो गये थे और नित्य मैंने यूनेस्को के प्रभुओं से मिलने का प्रयत्न किया था। पिछले सात दिनों से निरन्तर मैं टेलीफ़ोन की घण्टी बजाता रहा था और उस संस्था के विविध विभागों के प्रधानों को कुछ समय मुझे देने के लिए उत्सुकतापूर्वक अनुरोध करता रहा था। मेरे आग्रह के साथ ही संयुक्त-राष्ट्र-संघ के तत्कालीन प्रधान नसरुल्ला इन्तज़ाम का भी आग्रह मिला था परन्तु उस

दिशा में कुछ विशेष सफलता न मिली। यानी हफ्ते भर कोशिश करके भी मैं यूनेस्को के शासक-वर्ग से न मिल सका। यूनेस्को का द्वार खट-खटाते मुझे ठीक वैसा ही लगा जैसा अक्सर राष्ट्रीय सरकारों के प्रभुओं से मिलते समय लोगों को लगा करता है, जब वे निरन्तर कार्य-भार का एक मिथ्या वातावरण का जाल फैलाये रहते हैं और उनसे मिलना कठिन हो जाता है।

यूनेस्को के डायरेक्टर-जनरल टोरेस बोदेत से मिलने में तो मुझे प्रायः पन्द्रह दिन लग गये। बार-बार मुझे कहा गया कि उनके पास समय नहीं है फिर भी वह समय निकालने की कोशिश कर रहे हैं। मुझे सप्ताह भर पेरिस में रुकने की भी सलाह दी गयी जिसके बाद, कहा गया कि इंग्लैंड जाकर लौट आने पर डायरेक्टर-जनरल को शायद कुछ अवकाश मिल जाय। परिणामतः उनसे मिलने वाले अधिकतर ऐसे ही लोग होते हैं जिन्हें अपने राष्ट्रों के तोड़ों की सहायता उपलब्ध होती है और जो पेरिस की सी खर्चीली जगह पर बेकार भी हफ्तों गुज़ार सकते हैं। वैसे ऐसों के लिए वहां बेकार समय गुज़ारने की कोई बात नहीं क्योंकि पेरिस आख़िर पेरिस है जो वह सदियों से रहा है और जो ऐसों के लिए सदा स्वप्न का देश रहा है।

मुझे यूनेस्को के प्रभुओं के इस पलायन और अनुधावन से निश्चय हो गया था कि मेरा काम वहाँ नहीं बनने का, फिर भी चूंकि पेरिस में मुझे एक-आध सप्ताह और कारणों से ठहरना था मैंने फिर यूनेस्को का द्वार खटखटाने का निश्चय किया। टोरेस बोदेत ने मिलने पर कहा कि विशेषतः मैं इस लिए आपसे मिल रहा हूँ कि अभी हाल में भारत से लौटा हूँ। मैंने उनकी इस महती कृपा के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करते हुए कहा कि मेरा दावा आप पर इस या उस देश का निवासी होने के कारण नहीं वरन् ठीक उसके विरोध में संसार के नागरिक होने

के नाते है। बातचीत दुभाषिये के ज़रिये हुई क्योंकि टोरेस बोदेत फ्रेन्च बोलते थे और मैं अंग्रेज़ी और यद्यपि साधारणतः वे अंग्रेज़ी बोल लेते थे विचारों के पेच को अंग्रेज़ी में रखना या उसके ज़रिये समझना उनके लिए सम्भव न था।

टोरेस बोदेत मंझोले कद के, सुपुष्ट शरीर के व्यक्ति हैं; प्रत्यक्षतः अत्यन्त सक्रिय और सुदर्शन। जितनी थोड़ी देर प्रायः आध घण्टा हमारी उनकी बात हुई, उनको समय का अभाव खटक रहा था अथवा शायद उनके समय का अभाव मुझे खटक रहा था और मैं यह स्पष्टतः प्रगट करने से न चूका कि यूनेस्को के प्रत्येक सार्थक व्यक्ति को उस योजना को सुनने और समझने के लिए काफी समय होना चाहिये जिसे लिये हुए मैं देश-विदेश फिरता रहा हूँ। यूनेस्को भी, जो शान्ति और मानवता के नाम पर एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन कर रहा है, यदि अपने कार्य सम्भार में वही रुख लेगा, वही आचरण करेगा जो सरकारें करती हैं तब तो उसकी अन्तर्राष्ट्रीयता केवल अभिनय सिद्ध होगी। मैं, चूंकि मुझे किसी राष्ट्र या संस्था या व्यक्ति की सहायता उपलब्ध न थी, अपने ही साधनों द्वारा उस पक्ष और अन्तर्जातीय स्थिति का प्रचार अथवा अनुसन्धान कर रहा था जो प्रकृतितः यूनेस्को का कार्य होना चाहिए था और यदि मेरे लिए भी खास यूनेस्को में सुविधाएँ उपलब्ध नहीं, तो नहीं जानता औरों के लिए कहां तक होंगी।

मानवजाति के एकत्र इतिहास की योजना जो मैंने उनके सामने रखी और संस्कृतियों के अन्तरावलम्बन की बात कही तब उन्होंने बताया के मानव इतिहास प्रस्तुत करने की यूनेस्को की अपनी योजना है। मैंने स्वाभाविक ही पूछा कि भला वे कौन लोग होंगे जो इस प्रकार का इतिहास प्रस्तुत करेंगे। टोरेस बोदेत ने बताया कि देश-देश के इतिहास-कार जो अपने क्षेत्र में काफी नाम कमा चुके हैं। जब मैंने उन्हें यह

सुझाया कि इसी कारण इस प्रकार की योजना को सफल बनाने में सबसे बड़ी रुकावट वे हैं और यदि योजना को अनिवार्यतः असफल करना हो तो उनके सहकार की अपेक्षा दूसरा कदम उस दिशा में अधिक प्रभावोत्पादक न होगा, तब वे जैसे सोते से उठ बैठे। उन्होंने दुभाषिये को एक ओर करते हुए बड़ी उत्सुकता से पूछा—आप का मतलब क्या है। मैंने कहा—मेरा मतलब स्पष्टतः यह है कि जिन लोगों ने पिछले चालिस वर्षों से बराबर अपने देश के राष्ट्रीय इतिहास लिखे हैं, जिन्होंने स्वदेश के आक्रमणशील विजेताओं की प्रशस्तियाँ प्रस्तुत की हैं, जिनकी लेखनी ने अपने देश की हमलावर नीति की सराहना करते हुए निरन्तर अपने ऐतिहासिक वीरों के घृणित अभियानों को सराहा है वे अन्तर्जातीय इतिहास हरगाज़-हरगिज़ प्रस्तुत नहीं कर सकते।

फिर, मैंने पूछा, आख़िर इन इतिहास-कारों को चुनने की कसौटी क्या रही है? टैरेस बोदेत ने, जिनके ऊपर मेरे शब्दों का अब कुछ असर होने लगा था, कुछ विमन होकर उत्तर दिया, 'उनकी प्रतिभा'; मैंने उन्हें सुझाने की कोशिश की कि आवश्यक दृष्टिकोण के अभाव में प्रतिभा योजना की समाधि भी बन सकती है। आख़िर नीत्से और रोज़ेनबर्ग में प्रतिभा की कमी न थी पर दृष्टिकोण ही इतना भयानक और मानवता-विरोधी था कि जिसने आर्य-अनार्य, ज्यू-जर्मन, नार्डिक-सेमेटिक आदि विषमताओं को सिरज कर मानवता का गला घोंट दिया। टोरेस बोदेत के सामने, जहाँ तक मैं समझ सका, मेरी आलोचना मूर्तिमान होने लगी थी। मैंने फिर पूछा कि आख़िर इन इतिहास-लेखकों की सूचि कौन तैयार करेगा? उन्होंने बताया कि प्रत्येक देश की अपनी-अपनी राष्ट्रीय-परिषदें हैं जो अपने-अपने इतिहासकारों के नाम प्रस्तुत करेंगी। अब स्पष्ट था, मुझे और टोरेस बोदेत दोनों को, कि राष्ट्रीय-परिषदें निश्चय राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त और मानव इतिहास लिखने में

इसी कारण विशेषतः असफल व्यक्तियों के हाथ में यह योजना छोड़कर निश्चिन्त हो जायगी !

कुछ देर तक और इस सम्बन्ध में मेरी उनकी बातचीत हुई मगर कोई अर्थ न निकला, यद्यपि यह प्रगट हो गया कि यूनेस्को की यह योजना दूर तक न जा सकेगी। मैंने बोदेत साहब से फिर पूछा, जब तक यह मानवता का इतिहास, अगर किसी तरह यह उचित अथवा अनुचित रीति से प्रस्तुत भी किया जा सका, तरुण विद्यार्थियों के हाथ में पहुँचेगा, क्या तब तक राष्ट्रीय या झण्डा-गानों, राष्ट्रीय-वीरों के आख्यानों और राष्ट्रीय विजयों की पठनावृत्ति से उनका हृदय अन्तर्राष्ट्रीय कल्पनाओं के विरुद्ध पुष्ट न हो चुका होगा ? और तब क्या उनकी अन्तरात्मा मानव जाति के अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास की सी किसी भावना को स्वीकार कर पायेगी ? टोरेस बोदेत के पास इसका कोई उत्तर न था और हम दोनों एक दूसरे का मुँह देख रहे थे। मैंने उन्हें सुझाते हुए फिर पूछा—क्या यूनेस्को के लिए यह सम्भव नहीं कि वह तत्काल सारे देश के शिशु-शिक्षण पर अपना अधिकार कर ले और अपनी पाठ्य पुस्तकों आदि के द्वारा उनके हृदय में एक अन्तर्जातीय सहानुभूति की पूर्व-भूमि प्रस्तुत कर दे जहाँ यूनेस्को द्वारा योजित मानव जाति का इतिहास, जब वह उपलब्ध हो सके, आसानी से अंगीकृत हो जाय ? टोरेस बोदेत ने इसके उत्तर में जो बात कही उसने सिद्ध कर दिया कि यूनेस्को चाहे दवाओं की कुछ सुइयाँ संसार के देशों के बच्चों को लगवा ले—जो स्वयं निश्चय कुछ साधारण कार्य नहीं और जो अपेक्षणीय भी है—उसके किये कोई भी स्थायी और दूरगामी अन्तर्राष्ट्रीय कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। टोरेस बोदेत ने बताया कि बच्चों के पाठ्य-क्रम पर अधिकार कर सकना असम्भव है क्योंकि राष्ट्रों की सरकारें इस बात को बड़े सन्देह से देखती हैं कि कहीं उनके बच्चों के चरित्र-गठन में स्थानीय वीरों के पराक्रमों का योग न होना

उन्हें अकर्मण्य न बना दे! डायरेक्टर-जनरल ने स्पष्ट कहा कि उस दिशा में राष्ट्र हमें कोई भी कार्य नहीं करने दे रहे हैं।

कहना न होगा कि जब शान्ति के विरोध में राष्ट्रों में प्रबल राष्ट्रीयता का प्रचार किया जा रहा है, जब शान्ति के नाम पर अस्त्रीकरण का धावा बोला जा रहा है, जब बेबुनियाद के आतंकवाद और उससे लड़ने की तैयारियों के नारे लगाये जा रहे हैं तब भला यह कैसे सम्भव है कि उन बच्चों को जिन्हें राष्ट्रीय सिपाही बनकर दूसरे राष्ट्रों को समर में आवाहन करना है अन्तर्जातीय उसूलों पर सिखाया पढ़ाया जाय?

टोरेस बोदेत मैक्सिकन हैं, पारदर्शी कवि और कवि होने से, विशेषकर ऐसे कवि होने से जैसे वे हैं, निश्चय इस बातचीत के बावजूद भी अन्तर्मुख हो सकते हैं परन्तु जो राष्ट्रों के इस तथ्य को देख-समझ रहा है उसे समझते देर न लगेगी कि यूनेस्को का कार्य-भार और उसका क्रियात्मक प्रदर्शन निश्चय एक अभिनय सिद्ध होगा, उसी प्रकार जिस प्रकार राष्ट्र-संघ की शान्ति सम्बन्धी योजनाएँ अभिनय सिद्ध हो रही हैं।

टोरेस बोदेत से मिलने के पहले संस्कृति विभाग के अध्यक्ष डाक्टर तोमा से भी मिला था और फिर एक बार उनसे मिलने का लोभ संवरण न कर सका। उनसे मिला और डायरेक्टर-जनरल के साथ बातचीत का हवाला दिया। हम दोनों जब एक दूसरे की आँखों में देर तक न देख सके तब छत की ओर देखने लगे और मैंने यूनेस्को से सहायता की आशा छोड़ देना ही मुनासिब समझा। क्लेबेर की सड़क का वह विशाल भवन छोड़ मैं सड़क पर आ खड़ा हुआ।

क्लेबेर का वह विशाल भवन। क़िले की तरह उसकी विशाल आकृति और उसके कलेवर में बिखरे हुए असंख्य कमरे जिनमें टेलीफ़ून की घँटियों की गूंज और टाइप राइटरों की बज-बज। संसार की युद्ध-विरोधी आशाओं का यह मूर्तिमान संभार कितना निराशाजनक है,

कितना मिथ्या ! इसका रूप वही है जो किसी भी राष्ट्र के सेक्रेटेरियट का। इसके कर्मचारी नीचे से ऊपर तक, उसी प्रकार जीवन-साधनों के लिए कार्यशील हैं जैसे दूसरे आफ़िसों के लोग। कितनी ही योजनाएँ संसार और मानवता के नाम पर वहां से निकलेंगी, संसार के पत्रों में गूंजेंगी और फिर उसके गह्वरों में समाधिस्थ हो जायंगी और संसार अपने सपने, शान्ति और मानवता के, देखता रहेगा !

पालरिवे से एक बार फिर मिलना हुआ। उनके उस विशाल संग्रहालय में जो मानव-शास्त्र का संसार में एक मात्र संग्रहालय है—लोम्म। रिवे संसार के उन इने-गिने लोगों में से है जो समझते हैं कि उस इतिहासकार की शिक्षा न केवल अधूरी है बल्कि ग़लत जिसने कभी इतिहास को मानव विकास के साथ न जोड़ा; जिसने एन्थ्रोपोलोजी, एथनोलोजी, तुलनात्मक भाषाशास्त्र, तुलनात्मक ललित कलाओं, तुलनात्मक धर्म और पुरातत्व को अपने अध्ययन का आधार नहीं बनाया और जब तक वह इन शास्त्रों को जो मानव जाति को एक इकाई के रूप में देखते हैं अपना आधार न बनायेगा तब तक सही इतिहास का प्रणयन सम्भव न होगा।

रिवे और मैं लोम्म म्यूज़ियम की गैलरियों में घूमते हुए, पेरू के सांस्कृतिक भग्नावशेषों को देखते वहाँ जा खड़े हुए जहाँ जगत्-विख्यात दार्शनिक, देकार्त की खोपड़ी रखी थी। देकार्त की खोपड़ी—सूखा कपाल जिसके ललाट पर रेखाएँ इतस्ततः बिखरी हुई थीं और ब्रह्मलेख की बिडम्बना उपस्थित कर रही थीं। देकार्त के बराबर दूसरी ओर एक और खोपड़ी थी और मैंने निश्चय कोई भूल न की अगर यह सोचकर रिवे से पूछा कि यह दूसरी भी देकार्त के कपाल से कुछ कम महत्व की न होगी ! रिवे हँसे और उन्होंने कहा, 'वह खोपड़ी जाने हुए सबसे भयंकर क्रिमिनल (अपराधी) की है।' मैंने दोनों को फिर देखा, फिर और

फिर। निश्चय मैं उनका अन्तर न पढ़ सका। रिवे की ओर मैंने विलुप्त-सा ज्ञान के लिए देखा। वे फिर हँसे, एक असहाय हँसी जिसका अर्थ था कि उस दिशा में वे उतने ही अनभिज्ञ हैं जितना कि मैं।

होटल लौट आया। बार-बार विचारता, सोचता, उत्साहहत, पर नयी प्रेरणाओं के साथ, क्योंकि बार-बार लग रहा था कलेवर का वह विशाल-भवन कितना सूना है, लोम्म संग्रहालय का वह दूसरा विशाल-भवन निर्जीव होकर भी कितना भरा। और वह देकार्त का कपाल और उस अपराधी का याद आया। उसी तरह यूनेस्को का वह भवन भी। देकार्त और अपराधी, लोम्म और यूनेस्को, रिवे और बोदेत !

: २१ :

रोम का महन्त

पेरिस में ही प्रोफ़ेसर मासिन्यो ने पोप से मिलने की सलाह दी थी। सलाह क्या निश्चय मिलने का वादा ले लिया था। चाहते थे कि एक बार वह जान ले कि मैं क्या कर रहा हूँ। मैंने एक बार पेरिस में प्रोफ़ेसर के सामने कह दिया था कि 'ईसा से अधिकाधिक प्रेम करना ईसाई से अधिकाधिक घृणा करना है।' और वे रीझ गए थे। इससे उन्होंने कुछ अन्दाज़ लगा लिया था कि यदि मैं पोप से मिला तो क्या बातें होंगी।

पोप का राज्य वैटिकन संसार की सबसे छोटी रियासत है, पर सर्वथा स्वाधीन। उसके अपने गृह, वैदेशिक आदि विभाग हैं, विदेशों में अपने दूतावास और राजदूत हैं, अपनी टकसाल और सिक्के हैं, अपनी डाक

है। और ये वैटिकन राज्य और नगर (या राजधानी) रोम में ही क़ायम हैं। पोप, ईसा का पार्थिव प्रतिनिधि उसका सर्वेसर्वा है।

पेरिस से ही वैटिकन स्टेट के सेक्रेटरी को लिख दिया था कि इटली आ रहा हूं, पोप से मिलना चाहूंगा। उसका उत्तर भी आ गया था— रोम पहुँच कर फ़ोन कर लेना। रोम पहुँचते ही फ़ोन किया। मालूम हुआ कि पोप ने मिलना स्वीकार कर लिया है, पर एकान्त का मिलना न होगा, सबके साथ होगा।

मैंने कह दिया उससे मेरा काम न चलेगा क्योंकि मेरा धर्म से कोई ताल्लुक़ नहीं, शान्ति से है, और यदि उन्होंने मुझे समय दिया तो मैं शान्ति के संबन्ध में कुछ बात कहूँगा, कुछ सुनूंगा। सैक्रेटरी ने मेरी बात सुनकर पोप से सिफ़ारिश करने का वादा किया और कहा कि अनुकूल समाचार मिलते ही मुझे फ़ोन करेगा।

तीसरे पहर सेक्रेटरी का पत्र लेकर एक आदमी आया जिसमें लिखा था कि पोप ने मुझ से अकेला मिलना स्वीकार कर लिया है। सिलोने और मादाम सिलोने से भी मैंने इसकी चर्चा की। सिलोने इटली के संसार-प्रसिद्ध साहित्यकार हैं और इनका 'फ़ोन्तामारा' अनेक भाषाओं में अनूदित हो चुका है, एकाध भारतीय भाषाओं में भी। मादाम सिलोने भी साहित्य में अच्छी गति रखती हैं।

सिलोने दम्पति के यहां मेरा दूसरे दिन खाना था। उसी दिन बारह बजे पोप से मिलना भी था। सोचा एक बजे तक वैटिकन से फ़ुरसत मिल जाएगी, फिर डेढ़ बजे तक सिलोने के यहां खाने पहुँच जाऊँगा। पोप से मिलने चल पड़ा।

सैन्ट पीटर के गिरजे के पीछे वैटिकन का शहर-पनाह से घिरा नगर है। इस नगर के नागरिक केवल पोप, इसके अनुचर, राज्य के पदाधिकारी, सेना आदि हैं। पोप पायस बड़े चतुर नीतिज्ञ माने जाते हैं जिन्होंने

बिशप के पद पर कभी बड़ा नाम कमाया था।

यह सोच कर कि वहां कुछ आवश्यक कृत्रिमता समय ले लेगी, मैं पोप के नगर में नियत समय बारह बजे से प्रायः दस मिनट पहले ही दाखिल हो गया था। नगर के भीतर सर्पाकार गलियों से होती मेरी कार पोप के निवासस्थल के द्वार पर ही जा खड़ी हुई। द्वार साधारण है जो सामने के आंगन में खुलता है।

द्वार पर शस्त्रधारी सैनिक-प्रहरी खड़े थे। उनका लिबास प्राचीन 'स्विस गार्ड' का था। उनके पास ही खड़े एक आदमी ने मेरा नाम पूछा, कमरे के किसी आदमी से कुछ कहा-सुना और मुझे अन्दर ले लिया। उसके साथ मैं भीतर चला, अनेक लंबे बरामदों, खुले द्वारों से होता। एक अफ़सर मुझे कुछ दूर तक ले जाता, फिर दूसरे के साथ कर लौट जाता, दूसरा मुझे तीसरे को सौंपता, तीसरा चौथे को।

इस प्रकार मैं पोप के महलों में पहुँचा। एक लम्बे-चौड़े कमरे में अनेक व्यक्ति खड़े थे। उनके अतिरिक्त अनेक सशस्त्र 'स्विस गार्ड' भी थे। उनमें से कई नंगी तलवारें लिए घूम रहे थे। कमरे की दीवारें प्राचीन चित्रकारों की भित्ति-कृतियों से भरी थीं। वे छतें भी जिनकी ज़मीन बीच-बीच में सुनहरी लकीरों से उत्खचित थीं। वहां खड़े व्यक्तियों ने मेरा पास देखा फिर अपने काग़ज़ों को देखा और मुझे एक आदमी के सुपुर्द कर दिया।

अनेक कमरों से होता स्विस गार्डों की खिंची तलवारों के पास से गुज़रता मैं उस कमरे में पहुँचा जहां प्रायः तीस नर नारी बैठे पोप की अनुकम्पा की प्रतीक्षा कर रहे थे। संसार के अनेक देशों से ये उसके दर्शनों और आशीर्वाद के लिए आए थे।

इसके बाद ही एक कमरा और था और उसके पीछे भी एक कमरा यहीं से दीख रहा था। ये सारे कमरे अपनी चित्रित सुन्दरता में लासानी

थे। रफाइल आदि पुराने आचार्यों की अनेक कृतियों का यह वैटिकन धनी है। उसके पास जितने क़ीमती चित्र हैं संग्रहालयों तक के पास नहीं।

मुझे उस कमरे में देर तक रुकना पड़ा और मैं आते जाते बिशपों आर्कबिशपों भिक्षुणियों आदि को देखता रहा। नंगी तलवारें लिए स्विस गार्डों का प्रभाव भी मुझ पर कुछ कम न पड़ा। अनेक बार अचरज हुआ कि फ्रेडरिक के 'पार्स्डम जैंटो' की भांति ये शस्त्रधारी यहां क्या करते होंगे? क्या ईसा के नाम पर प्रेम और दया के सर्वस्व और शान्ति के रक्षक पोप को भी तलवारों की आवश्यकता है? गांधी की याद स्वाभाविक थी जिसने खूनी जन्तुओं से भरे नोआखली की पैदल यात्रा की और अधिकतर उन्हीं के पास ठहरा जहां खतरे का अन्देशा था!

पर पोप केवल साधु ही तो नहीं, साधुओं का राजा भी तो है। उसका अपना एक राज्य है जिसकी रक्षा के लिए सैनिकों की आवश्यकता है। मैंने पूछा नहीं कि उसके शस्त्रागार में कितनी बारूद है, कितना डाइनामाइट और यह कि उसे अणुबम का भेद मालूम है या नहीं। एक ज़माना था जब राज्य और पोप में शक्ति और सत्ता के लिए कशमकश चल रही थी, जब एकाध बार उसे अपने नगर से भागना भी पड़ा था, अनेकबार उसे राजाओं की कैद भी भुगतनी पड़ी थी जिनमें आख़िरी नेपोलियन की थी। मध्यकाल में वह एक शक्ति माना जाता था, राज्यों की दल-बन्दी में शामिल हो यूरोप में शक्ति संतुलन की नीति सम्हालता था और आज भी कम से कम कैथोलिक संसार के महान् साम्राज्य का वह एक मात्र स्वामी है। वास्तव में आज की दुनियां में उसे नंगी तलवारों की भी आवश्यकता है, बारूद-डाइनामाइट की भी, अणुबम की भी। फिर मैं इस विषय में क्या कह सकता हूं जिसके सभी देवता शस्त्र धारण करते हैं, देवियां तक, जिनके चार से बीस-बीस तक हाथ अचरज में डालने वाले शस्त्र धारण करते हैं।

सहसा कुछ फड़-फड़ होने से छत की ओर से नीचे नज़र खिंची तो देखा कि आधे के लगभग नर-नारी भीतर के कमरे में चले जा रहे हैं। आध घण्टा इसी तरह और बीता और बचे हुए लोग भी अन्दर चले। देर होती जा रही थी। डेढ़ बजे सिलोने के यहां लंच (दिन का भोजन) था और वहां देर से पहुँचना नहीं चाहता था यद्यपि उन्हें पता था कि मुझे आज पोप से मिलना है और यदि वह वैटिकन का रवैया जानते हैं तो देर की संभावना भी समझ सकते हैं। फिर भी मैं देर के कारण घबड़ा रहा था, कुछ खीझ भी रहा था।

रोम के साधु पोप की एक झलक सहसा मुझे अपने कमरे से मिली। वे एक के बाद दूसरे व्यक्ति के पास जाते, वह घुटने टेक देता, फिर उठा कर उससे पोप धीरे धीरे कुछ कहते। वह फिर घुटने टेक देता और 'हिज़-होलिनेस' उसके सिर पर उठे हाथों में कुछ रख देते, शायद रांगे का एक क्रूस। नारियां भी वहां अनेक थीं और शायद 'कन्फेशन' (पापस्वीकरण) के लिए आई थीं। अनेक तो अपनी बात कहते कहते टूट जातीं, रो पड़तीं और पोप सिर पर हाथ फेर धीरे से कुछ आशीर्वाद करता और आगे बढ़ जाता।

लगा अभी बड़ी देर होगी। कुछ देर और बैठा पर अब घबड़ाहट निरन्तर बढ़ती जा रही थी। घड़ी जो देखी तो सवा बज चुका था। अब मेरी झुंझलाहट का ठिकाना न था और मैंने पोप से बगैर मिले लौट जाना निश्चित कर लिया।

पास खड़े कर्मचारी से अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते मैंने अपना ब्रीफ़केस उठा लिया और चलने का रुख़ किया।

'क्या आप हिज़होलिनेस के द्वार से बिना मिले लौट जाएँगे', उसने आँखें फाड़ते हुए पूछा।

'खुदा के द्वार से, जनाब, अगर वक्त की पाबन्दी न हुई!'

इसी समय पोप का प्रसाद पाकर लोग भीतर के कमरे से मेरे कमरे की ओर लौटने लगे थे। अपने आश्चर्य से दबे मेरे अभाग्य को गुनते कर्मचारी ने कहा—'लीजिए अब आपका ही नम्बर है, तैयार हो जाइए।'

इतनी दूर आकर अब अवसर मिलने पर भी सदियों की इस अजीब सत्ता को बगैर देखे लौट जाना कुछ बुद्धिमानी न थी। मैंने ब्रीफ़केस फिर नीचे रख दिया और बुलाए जाने की प्रतीक्षा में खड़ा हो गया।

कर्मचारी, जो बराबर कुतूहलभरी दृष्टि से मुझे देख रहा था, बोला—'अब केवल पांच मिनट लगेंगे। हिज़ होलिनेस भीतर के कमरे में चले गए हैं। आपके सामने के कमरे में दाखिल होने के दो मिनट बाद ही पधारेंगे। बड़े व्यस्त हैं, थके भी।'

सही है, पोप संसार के व्यस्ततम व्यक्तियों में से है। पिछला १९५० का साल 'पवित्र वर्ष' रहा था जब रोम में संसार उमड़ पड़ा था और केवल ईसा के प्रतिनिधि उस नीतिज्ञ के दर्शनों के लिये। आज के साधारण दिन भी मैंने जो उसकी व्यस्तता देखी वह स्वयं कुछ कम न थी। घण्टों उसे पैरों पर नित्य इसी प्रकार खड़ा रहना होता है।

सामने के कमरे में घुसते ही कर्मचारी ने मुझे आगे बढ़ने का इशारा किया और मैं उसमें दाखिल होगया। कमरा ख़ाली था, बिल्कुल ख़ाली यद्यपि उसकी दीवारें और छत भी चमकीले चित्रों से भरी थीं। द्वार में रह-रह कर संतरी फिर जाता, एकाध कर्मचारी जब-तब कमरे के एक द्वार से दूसरे द्वार की ओर निकल जाते।

सहसा आने-जाने वालों के कपड़ों की फड़फड़ भी बन्द होगई जैसे सभी ने दम साध लिया हो। और यकायक धीरे-धीरे चलता पोप कमरे में घुसा।

पोप प्रायः ५ फुट ६ इंच ऊँचा, सफ़ेद चोग़ा, सफ़ेद पाजामा, सफ़ेद सिर से चिपकी टोपी। शान्त, गंभीर, दयालु दीखता, चमकती

आंखें। शिष्टाचार में मैं झुका।

"भारतीय हैं?"

"जी, पर अमेरिका, इंग्लैंड आदि से होता चला आरहा हूं।"

"हां, सो तो सेक्रेटरी के नोट से मालूम हुआ था।" बोलते-बोलते पीछे नोट के लिए सेक्रेटरी की ओर नज़र डाली। सेक्रेटरी कुछ बगल से आगे सरक आया पर पोप का अनिश्चय देख फिर पीछे हट गया, नितान्त पीछे।

"क्रिश्चियन हो!" पोप ने ही बात फिर शुरू की। मुझे किसी ने बता दिया था कि मिलने आकर भी मैं कुछ उस ईसा के प्रतिनिधि से नहीं पूछ सकता। कोई नहीं पूछ सकता। केवल उसके प्रश्नों का उत्तर देना होगा। उसी सिलसिले में शायद कुछ आध्यात्मिक तथ्य हाथ लग जाय। मैं भी इसी से अवसर की प्रतीक्षा में उनकी बात सुनता जा रहा था।

"बप्तिस्मा से नहीं।"

"बप्तिस्मा से नहीं? और कैसे?" स्पष्ट था कि वह अर्थ समझ गया है। उसकी भृकुटियों में भी कुछ बल पड़ गए थे।

"मैं क्रिश्चियन नहीं हूं।" मैंने धीरे से कहा।

"पवित्र बाइबिल पढ़ी है?"

"जी, कई बार, प्रायः छः बार, एक कवर से दूसरे कवर तक।"

"होली बाइबिल का कौन सा स्थल सबसे अधिक पसन्द आया?"

"बाबुल की क़ैद (बेबिलोनियन कैप्टिविटी)।"

"बाबुल की क़ैद! तुम्हारे गांधी को तो 'पर्वत का प्रवचन' (सर्मन ऑन दि माउण्ट) पसन्द था।"

"जी हाँ, वह तो मुझे भी पसन्द है और इज़रेल में मैं ठीक उस स्थान पर खड़ा हो चुका हूँ जहाँ गैलिली के समुद्र तट पर महात्मा ईसा ने अपना वह अद्भुत प्रवचन कहा था और जहाँ प्रायः चार सौ वर्ष बाद

रोमन सम्राट कॉन्स्टैन्टीन की माता ने एक गिरजा खड़ा कर दिया था। उस गिरजे की ज़मीन की पच्चीकारी आज भी कुछ बच रही है।" मैंने उत्तर में कहा और अपने लम्बे वक्तव्य की असंगतता से कुछ घबड़ाता-सा पोप की आंखों में देखा। उनमें तिरस्कार का भाव पढ़ा।

"नेबूख़दनेज़्ज़ार तुम्हें पसन्द है जिसने जुरूसलम के मन्दिर और नगर का ध्वंस किया?"

"नेबूख़दनेज़्ज़ार दूसरों की आज़ादी कुचलने वाला विजेता था, इससे मुझे नापसन्द है, पर उसकी क़ैद ने नबियों को बाइबिल का मूलाधार —पेन्टबुक (मूसा की पंच पुस्तक) दिया। फिर बाइबिल का यह नाम भी शायद बाबुल से निकला। और उन नबियों के साहस के क्या कहने जिन्होंने सरमायदारी पर पहली चोट की। वह बेलशज़्ज़ार भी जिसकी कमज़ोरी ने 'मेने मेने तेकेल उफ़ारसीन' का सार्थक पद दीवार पर लिखा और ईरानी फ़ौजों ने नबियों को छुड़ा दिया।" मैंने फिर एक बार उस जगत्पिता पोप को अपनी बात सुनने को मजबूर किया। मैंने ऊपर नहीं देखा क्योंकि उसकी आंखों की चमक बड़ी मजबूर करने वाली थी, और उसके दयालु चेहरे पर व्यंग की कुछ रेखाएं भी थीं। शायद उसका रोब मुझ पर हावी हो जाता, बोलने न देता।

"बाइबिल शब्द तुम कहते हो 'बाबुल' से निकला है? फिर क्या वह ग्रीक 'बिब्लस' से नहीं बना?" मेरा लेक्चर गले से किसी प्रकार उतारते उदार-चेष्टा बनते उसने पूछा।

"जी, मैं तो ऐसा ही समझता हूँ। संभवतः ग्रीकों का 'बिब्लस' भी बाबुल से ही मिला क्योंकि उस फ़िनीशी और इब्रानी वर्णमाला का आरंभ, जिससे ग्रीक वर्णमाला निकली, असीरी-बाबुली सुमेरी क्यूनीफ़ार्म (कीलों की सी लिखावट) से हुआ जिसके [illegible] पट्टिकाएं पुस्तक कहलाती थीं। जब ग्रीकों ने इब्रानी के ज़रिये बाबुली वर्णमाला ली तो

उसकी लिखावट की ईंट—पुस्तकों के आधार से बाबुल में लिखी जाने वाले बाइबिल के मूलाधार पंच पुस्तकों को बिब्लस या 'बाबुल' कहना क्या अजब है ! आखिर डोरियनों के पहले ग्रीस में पुस्तक भी तो नहीं थी। फिर डोरियनों के पास भी पुस्तक थी यह संदिग्ध है।"

"आर्क्यॉलोजिस्ट (पुराविद) हो ?" मेरी लम्बी व्याख्या पर बिना झुँझलाए पर उसे अपनी सूत्रता से व्यर्थ करते पोप ने पूछा।

"जी, आर्क्यॉलोजी का कुछ अध्ययन किया है।"

"मिलकर प्रसन्न हुआ।"

इस वाक्य से मैं घबड़ा गया क्योंकि जो पूछना चाहता था उसका अभी प्रसंग नहीं आया। स्वयं सीधा पूछ नहीं सकता था। घबड़ाया कि शायद इस वक्तव्य का अर्थ है इन्टरव्यू का अन्त !

"सुना है तुम देश-देश शान्ति के प्रचार में घूमते फिरे हो। यह भगवान का कार्य है, मैं प्रसन्न हूं।" पोप ने फिर कहा। और मेरी जान में जान आई।

"जी, इसलिए कि मतिमानों, मानवतावादियों, कलाकारों, लेखकों से मिल कर देखूँ युद्ध बन्द करने, शान्ति कायम करने और पेशेवर राजनीतिज्ञों से बचकर रहने का कुछ उपाय निकल आए।"

"हाँ, दुनिया की स्थिति कुछ अच्छी नहीं।" पोप ने स्वीकार किया।

मुझे कुछ उत्साह मिला, पहली बार, और मैंने पूछा—आपका जीवन शान्ति का है, इसी का आपका अनुशासन भी है। आपने निश्चय इस युद्धग्रस्त संसार में शान्ति स्थापित करने के ज़रियों पर विचार किया होगा।" मैंने अपने इस प्रश्न में युद्धग्रस्त के लिए war-mangled (वार-मैंगेल्ड) शब्द का प्रयोग किया था। पोप अंग्रेज़ी समझता है। अंग्रेज़ी में ही बातें भी होरही थीं। पर शायद 'वार मैंगेल्ड' का उच्चारण या अभिप्राय उसने नहीं समझा।

"बार मैंगेल्ड ?" उसने पूछा—

"जी बार-एक्लिप्स्ड, ईटन !"

"आ, हा ! बस एक उपाय है—क्रिश्चियन हो जाना !"

"पर, पवित्र पिता !" मैंने कुछ दृढ़ता और प्रगट व्यंग पूर्वक कहा, "पिछली दो सदियों से तो क्रिश्चियन ही खूनी लड़ाइयाँ लड़ रहे हैं। एशियाई तो उसमें जबरन खींच लिए जाते हैं। दूसरों की लड़ाइयाँ लड़ते रहते हैं। उनकी गुरबत उन्हें सब प्रकार के अपमान सह लेने को मजबूर करती है। वे तो ईसाइयों की ज़मीन पर ईसाइयों की हार जीत के लिये ईसाइयों की ही लड़ाइयां लड़ते रहे हैं। यह आप क्या कह रहे हैं ?" इस बार मैंने आपा कुछ खो दिया था। और भी शब्द प्रवाह कण्ठ में भर आया था पर मैंने अपने को रोका। मैं यह भी भूल गया कि पिछले वाक्य में मैं सीधा प्रश्न ही नहीं कर बैठा था वरन् पोप के विचार-आदेश पर टिप्पणी भी कर दी थी। यह कैथोलिक ईसाई का अक्षम्य अपराध होता। पीछे खड़े सैक्रेटरी ने दाँतों तले जीभ दबा ली।

"दि ग्रेस आफ़ गाड !" (इंशा अल्लाह ! भगवान की इच्छा !) संयत पोप ने धीरे से कहा।

इस वाक्य का अर्थ, यदि मैं सही समझा था, इन्टव्यूं का अन्त। मैंने विदा सूचक अभिवादन में सिर झुका दिया। पोप ने पीछे देखा। सेक्रेटरी ने कुछ हाथ में दिया। पोप ने उसे मेरी ओर बढ़ाया। पवित्र पिता के आशीर्वाद को ग्रहण करते मैंने विदा ली। बाद में देखा वह राँगे का क्रूस था।

घड़ी देखी दो बजने ही वाले थे ! सिलोने सपत्नीक प्रतीक्षा कर रहे होंगे—सोचता पोप के महलों से बाहर भागा ड्राइवर इन्तज़ार कर रहा था। मैंने हिदायत की—"भागो, तीर की तरह विया दि विला रिकोटी की ओर !"

: २२ :

सुकरात का देश

प्रायः उन सारे देशों की स्थिति तबाह है या अभी हाल तक तबाह रही है जिन्होंने कभी अतीत में संसार का नेतृत्व किया या था, जो आज अपने अतीत के नाम पर ज़िन्दा रहने या क़समें खाने के प्रयास करते हैं। इनमें शायद ग्रीस के बराबर गया-बीता राष्ट्र आज दूसरा नहीं है। अगर उससे कोई इस क्षेत्र में स्पर्धा कर सकता है तो वह केवल प्राचीन रोम का वर्तमान स्थानापन्न इटली है।

ग्रीस और इटली दोनों की राजनीति और संस्कृति ने नैतिकता का निम्नतम-तल छू लिया है। कवूर, मात्सिनी और गैरीबाल्डी ने इटली का पुनर्निर्माण किया, उसके बिखरे तन्तुओं को एकत्र कर उन्हों ने उसकी वर्त्तमान आकृति खड़ी की; ट्रेड यूनियन आन्दोलन जनता के

एथेन्स, 'एक्रोपोलिस'

सम्पर्क से मुसोलिनी के आतंकवाद के पहले की दशाब्दि में खूब फूला फला और लगा कि रूस की ही भाँति इटली में भी मजूर और सर्वहारा जनता का राज खड़ा हो जायगा परन्तु सोशलिस्ट पार्टी की निष्क्रियता और मुसोलिनी की फाशिस्ती क्रियात्मकता ने वह सम्भावना कुछ काल के लिए दबा दी। सोशलिस्ट दल का तो इतना दबदबा बढ़ा कि उन्होंने इतालियन सरकार को बिल्कुल बेकार कर दिया और यदि कोई दूसरा राजनीतिक दल होता तो स्वाभाविक ही उसका पहला काम अपनी सरकार बनाना होता। मगर वह दल दायित्व का भार न ले सका और नतीजा यह हुआ कि वहाँ फाशिस्ती सरकार बनी। एक ज़माने से पहले महासमर के बाद से ही इटली में भयानक निष्क्रियता का दबादब हो गया था। कुछ लोगों ने कला और साहित्य दोनों में 'फ्यूचरिस्ट' आन्दोलन का आरम्भ किया जो निरन्तर ज़ोर पकड़ता गया और अन्त में मुसोलिनी के फाशिस्ती रूप में संसार में खड़ा हुआ। फाशिस्त दल का इटली में उत्कर्ष वहाँ की सोशलिस्ट पार्टी की निष्क्रियता का ही परिणाम था। स्वयं मुसोलिनी पहले सोशलिस्ट और एक सोशलिस्ट पत्र का सम्पादक था। उसने उस निष्क्रियता के ऊपर उठ 'फ्यूचरिस्ट' वातावरण में फाशिस्तवाद की बुनियाद डाली और रोम की ओर उसने सहसा मार्च किया। फिर रोम और इटली पर कब्ज़ा कर उसने उस मानवता-विरोधी फाशिस्त सरकार का निर्माण किया जो जर्मन नात्सीवाद के साथ ही अन्त में धराशायी हुआ।

फाशिस्तवाद इटली में सर्वथा मर चुका है, यह कहना ग़लत होगा। हाँ उसने अपना चेहरा निश्चय बदल लिया है, और उसके अनेक-अनेक नायक आज 'क्रिश्चियन डेमोक्रेट' के परिवार में आज भी देखे जा सकते हैं। आज की सरकार, जिसने अमरीकी डालरों के ज़रिये अपना आवश्यक मताधिकार पाया, बहुत कुछ उसी फाशिस्ती भग्नावशेष पर खड़ी

है यद्यपि उसको तथाकथित अमरीकी जनतान्त्रिकता का पिष्ट-पोषण उपलब्ध है।

साँस्कृतिक चारुता, कलात्मक रुचि, साहित्यिक कृतीत्व, नैतिक आचार और राजनीतिक पटुता सब में इटली आज उतना ही दरिद्र है जितना भौतिक समृद्धि में। देश पिछले युद्ध की मार से चूर-चूर हो गया है और सामूहिक या वैयक्तिक नैतिकता आज वहाँ धूल चाट रही है। विशेष कर विदेशी के लिए वहाँ किसी पर विश्वास करना प्रायः असम्भव है। परन्तु यह स्थिति ग्रीस में जहाँ इटली के प्रति सर्वत्र घृणा का रुख़ है विशेषतः लक्षित होता है।

आज के ग्रीस में इटली की ही भाँति, शायद उससे भी अधिक, सब प्रकार की सुरुचि की कमी है, नैतिकता और विश्वास की भी। क्या होटल क्या दुकान, क्या गिर्जाघर, सर्वत्र विदेशी को नोच खसोट लेने की प्रवृत्ति है। चीजों की कीमत इतनी बढ़ गई है कि एथेन्स या दूसरे नगरों में रहना नितान्त कठिन हो गया है। सरकार रोज बन बिगड़ रही है, जनता का राज वहाँ होते-होते रह गया था। चर्चिल की सरकार ने जन-संघर्ष का दम गोलों से तोड़ दिया था और उस देश पर अपनी राजसत्तात्मक सरकार लाद दी थी।

गाँव संत्रस्त हैं, नगर प्रायः खण्डहर! पिछले युद्ध में जर्मनी के नात्सियों और इटली के फाशिस्तों ने उसकी इन्सानियत को कुचल डाला था, अंग्रेजी आश्वासनों के बावजूद भी। फलतः आज का साधारण ग्रीक नात्सी और फाशिस्तवाद की ओर पीठ करके भी अग्रेजी लोकाचार में विश्वास नहीं करता। वस्तुतः किसी भी प्रतिगामी अथवा प्रगतिशील आचरण में आज ग्रीस की निष्ठा भंग हो चुकी है। उसमें न किसी प्रकार का उत्साह है, न अपना भविष्य निर्माण करने की आशा। गाँव में किसान नंगे पाँव फटे चीथड़े पहने खेतों में फिरते हैं और देखने वालों

को आश्चर्य होता है कि क्या वे उस प्राचीन कर्मठ ग्रीक राष्ट्रीयता के वंशधर हैं जिसकी दाय पर यूरोप और पश्चिमी सभ्यता को आज भी गर्व है ।

प्राचीन ग्रीस ! प्राचीन ग्रीस दर्शन, स्वतन्त्रता और शक्ति का परिचायक माना जाता है । ग्रीक नगर-राज्यों को बराबर सदियों नागरिक स्वतन्त्रता का आदि संस्थापक और प्रतीक कहा गया है यद्यपि ऐसा कहने वालों ने उस असंख्य मानव समुदाय की अवहेलना कर दी जिसे एथेन्स आदि के प्राचीन श्रीमानों की शालीनता की रक्षा के लिये ही जीवित रखा जाता था । ग्रीस की प्राचीन संस्कृति श्रम की घृणा पर अवलम्बित थी जहाँ पत्नी पर्दे में थी, रखेलियाँ दार्शनिकों की गोद में और जहाँ डेमोस्थेनीज़, पेरिक्लीज़, सुकरात, अफ़लातून और अरस्तू के आँगन में भी गुलाम के बग़ैर काम न चलता था । जहाँ गुलाम नौकर था, रसोइया था, दार्शनिकों के बच्चों का अध्यापक था, खेतों का मजूर था और नगर का सन्त्री सिपाही था । उस देश की प्राचीन परम्परा, जिसका आज के पश्चिमी तथाकथित जनतन्त्रों में इतना बोलबाला है, गुलामी की नींव पर टिकी थी ।

आज का ग्रीस जो सब प्रकार से भू-लुण्ठित है अपने उसी प्राचीन आदर्श की ओर दूर से देखता है । परन्तु भाग्यवश यह निश्चय है कि वह उसका दूरस्थ स्वप्न मात्र सिद्ध होगा । आज का ग्रीस कंगाल है, कमज़ोर और सर्वथा निष्क्रिय है । अमरीकी सरकार का आश्वासन उसे चारों ओर से घेरे हुए है और वह इंग्लैण्ड के दायित्व से निकलकर अमेरिका के दायित्व में जा गिरा है । जन-सत्तात्मक प्रवृत्तियों का नेतृत्व जिस दल के हाथ में था उससे लगातार विदेशों के देशी कठपुतलियों ने लड़ाई लड़ी और अब उस देश की वर्तमान राजनीति में अपना कोई स्थान नहीं । एक अनिश्चित, अस्वस्थ, कृत्रिम, प्रतिगामी नेतृत्वाभास सेना के

हाथ में है जिसके कुछ जनरल ग्रीक हैं परन्तु अधिकतर जो सेना अंग्रेज़ी अफ़सरों और अमरीकी डालर द्वारा संचालित है।

एथेन्स नगर के बीचोंबीच प्राचीन एक्रोपोलिस का वीरान मस्तक ऊँचाई से नगर की ओर देखता है। सदियों उसने उस नगर का अधोधः पतन देखा है पर आज की स्थिति एक्रोपोलिस के उस भग्नावशेष में भी एक कम्पन उत्पन्न कर देती है। माराथान और थर्मापिली के पास के फैले मैदान जिनमें प्राचीन ग्रीकों के स्वराज्य प्रेम और पराक्रम की स्मृति सोती है, स्वाभाविक ही एथेन्स की वर्तमान निष्क्रियता से उदासीन हैं।

विदेशी, ऐसा विदेशी पर्यटक जिसे प्राचीन ग्रीस की महत्ता से तनिक भी संतोष है फिर-फिर कर ग्रीस के इतिहास की ओर देखता है और उसकी वर्तमान दयनीय स्थिति की ओर सोचने लगता है कि क्या संसार में कोई दूसरा भी ऐसा देश है जहाँ समय ने ऐसा पलटा लिया है जैसा इस अफ़लातून और अरस्तू के देश में?

ईरान की बढ़ती हुई सीमाओं में छठी शती इस्वी पूर्व में जब अन्य एशिया के पश्चिमी और यूरोप के पूर्वी देश समा गये थे तब ग्रीस के नन्हें राष्ट्रों ने उसे चुनौती दी थी, डेन्यूब से लौटी सेनाओं को अपनी वीरता और राष्ट्रशक्ति से अचरज में डाल दिया था। पर आज का ईरान आज के ग्रीस से कहीं ऊँचा है, कहीं जागरूक, कहीं प्रगतिशील। ग्रीस यूरोप का राष्ट्र है, पश्चिम की शक्ति का चाहे जितना भी उपेक्षणीय पर प्रतीक। किन्तु एशिया का कोई देश नहीं जो सतर्कता, नैतिकता और नवजीवन में ग्रीस से ऊँचा न हो। ग्रीस की आज की राजनीति में जो इंगलैंड और अमेरीका की दिलचस्पी है वह उस अभागे देश के कल्याण के लिए नहीं, वह अपने स्वार्थ के लिये है। १६वीं सदी में कुछ विवेक-शील स्वतंत्रताप्रिय अंग्रेज़ों ने तुर्की के विरुद्ध ग्रीस के पक्ष में आवाज़ उठायी थी, असाधारण रोमान्टिक बायरन ने अपना सर्वस्व उसी निमित्त

उत्सर्ग भी कर दिया था परन्तु जहाँ एक ओर इंग्लैण्ड, ग्रीस को तुर्की साम्राज्य के चंगुल से छुड़ाने का दम भरता था वहाँ वह रूस का तुर्की के विरुद्ध बढ़ना 'काज़ज़बेली' (लड़ाई के कारण) भी एलान करता था।

आश्चर्य की बात है कि १६वीं सदी में ग्रीस जितना सजग था उतना आज नहीं। तब कांग्रेस के भारतीय आन्दोलन की भाँति ग्रीस अपनी स्वतन्त्रता के स्वप्न देख रहा था। वह गुलाम था; वह एक ज़माने से गुलाम रहा था और उसकी प्रजा तुर्की साम्राज्य की चोटों से मरणोन्मुख हो चली थी। उसके प्रयत्नों में इंग्लैण्ड ने— इंग्लैण्ड की सरकार ने, उसकी कतिपय जनता ने—सहयोग का आश्वासन दिया परन्तु शीघ्र उस आश्वासन ने ग्रीस के प्राचीन भग्नावशेषों की लूट का रूप धारण किया और जैसे ही 'एल्गिन मार्बल्स' की पट्टिकाएँ एक्रोपोलिस की ऊँचाइयों से उतर कर ब्रिटिश म्यूज़ियम में लग गईं, इंग्लैंड का रुख बदल गया, उस के लिए 'पूर्वीय प्रश्न' (ईस्टर्न क्वेश्चन) का सन्तुलन अधिक आवश्यक हो गया। ग्रीस सरगर्मी से फिर भी अपनी आज़ादी की लड़ाई लड़ता रहा, प्रायः अकेले, यद्यपि यूरोप के अनेक स्वतन्त्रता प्रेमी, अनेक प्राचीन ग्रीस के प्रेमी उसकी लड़ाई में सक्रिय योग देते रहे। वस्तुतः वह लड़ाई यूरोप की ज़मीन पर उस काल अकेली न थी। फ्रान्सीसी राज्यक्रान्ति ने और उसके पहले अमेरिकन स्वतन्त्रता-युद्ध ने, और उसके भी पहले अट्ठारहवीं सदी के प्रगतिशील और क्रान्तिकारी विचारकों ने संसार के शोषकों के सामने एक चुनौती फेंक दी थी। नेपोलियन ने जब फ्रेंच राज्यक्रान्ति की आज़ाद प्रवृत्तियों पर अपना फ़ौलादी शिकंजा रखना चाहा तब स्वयं उसे भी मुँह की खानी पड़ी थी और उसके बाद ही शीघ्र उस मैटरनिक को भी जिसने आस्ट्रिया के साम्राज्यवाद के अनुकूल वियना कांग्रेस की शर्तें संवारी थीं। और तब जर्मनी में, हालैंड और बेल्जियम में, स्पेन और पुर्तगाल में, फ्रान्स और आस्ट्रिया में, बोसनिया-हर्ज़ेगोविना

में, रूमानिया-बलगेरिया में, चेकोस्लोवाकिया-हंगरी में, रूस और पोलैण्ड में, इटली और ग्रीस में, सर्वत्र आज़ादी की एक लहर दौड़ गई थी। इनमें कुछ देशों की आज़ादी का गला अपने ही देश वाले घोट रहे थे, कुछ के विदेशी, और दोनों के खिलाफ़ जनसत्ताक आन्दोलन सर्वत्र उठ खड़े हुए। ग्रीस राष्ट्रों के इस पिछले वर्ग में था जिस पर विदेशी शक्ति की सत्ता थी। ग्रीस लड़ा और खूब लड़ा। ऊँचे, ताक़तवर, क्रूर तुर्क सन्तरियों के सामने से जब ग्रीक युवक कमर पर हाथ रखे लापरवाही से राष्ट्रीय गान की सीटी बजाता गुज़रता तब इसकी परवाह न करता कि उसकी पीठ गोली से छिदती है या तुर्की संगीन से।

नतीजा वही हुआ जो होना था। तुर्की के सड़े साम्राज्य की जड़ें कब की हिल चुकी थीं, अब उसका विशाल आकार सहसा बैठ गया और ग्रीस स्वतन्त्र हो गया। सन् १८३० में ग्रीस ने जिस स्वतन्त्रता के 'प्रोटोकल' (सन्धि) पर हस्ताक्षर किये वह उस काल के सभी आज़ादी की लड़ाई लड़ने वाले बंधे राष्ट्रों के लिए एक उदाहरण सिद्ध हुआ। परन्तु ग्रीस आज उस 'प्रोटोकल' के भी पीछे है। १८३० के पहले के ग्रीस के बराबर खड़ा है यद्यपि तुर्की साम्राज्य के विरुद्ध जिस तेवर से वह प्रेरणा पाता था वह भी आज उसे उपलब्ध नहीं। तब का तुर्की साम्राज्य ग्रीस पर हावी होकर भी और इसी कारण उसको अपने पैरों खड़े करने को प्रेरित और मजबूत करता था, आज के ग्रीस के विजेता इंग्लैण्ड और अमेरिका उसे मूढ़ बना उसको चूस रहे हैं और ग्रीस मैस्मेरिज़म के शिकार की भाँति 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' के अनुरूप उनकी ओर अपने रक्षक की भांति देख रहा है।

एशिया के राष्ट्र जो कभी महान् थे और जो अपनी महत्ता खोकर मोह निद्रा में सोये आज जाग रहे हैं। उनकी निष्ठा, उनकी सक्रियता और उनके स्वप्न आज कर्मठ रूप धारण कर रहे हैं, उनकी ज़मीन पर

साम्राज्यवाद की चूलें हिल गई हैं और वह वहां अपने अन्तिम पंजों पर खड़ा है। पर ग्रीस नये सिरे से साम्राज्यवाद का शिकार हो रहा है। एक ज़माना था जब भूमध्य सागर के उत्तर और दक्षिण के तटों में बड़ा अन्तर था, गुणतः अन्तर था। उत्तर का तट प्रगति, प्रकाश और आज़ादी का प्रतीक था, दक्षिण का शोषण, अंधकार और गुलामी का। आज स्थिति बदल गई है और जहां ग्रीस और इटली आज निद्राग्रस्त हैं वहां मिस्र नई प्रेरणाओं के आश्वासन से अपनी नई लड़ाई लड़ने लगा है। साम्राज्य-वाद के अन्तिम क्षणों को भी वह दूभर बनाये दे रहा है। शीघ्र उसकी ज़मीन से अंग्रेज़ी सत्ता की बची जड़ें भी उखड़ जायंगी।

ग्रीस की ज़मीन आज उस सत्ता के पनपने के लिए विशेष उर्वरा सिद्ध हो रही है। उसके पत्र इंग्लैण्ड और अमेरिका के सौजन्य और कृपा का बखान करते नहीं थकते, ट्रूमन योजना और अमरीकन डालर आज उसकी आंखों में चमक रहे हैं और वह निरन्तर अपनापन उनके बदले खोता जा रहा है। पुनर्निर्माण के लिये उसे अमेरिका से काफ़ी डालर मिले हैं परन्तु इन डालरों का भी उपयोग देश को प्रायः उपलब्ध नहीं क्योंकि वह उन हाथों में है जो जनता के कल्याण से दूर न्यूयार्क और पेरिस की घिनौनी गलियों में लर उलीच रहे हैं। अभी हाल ग्रीस में हल्की आवाज़ उठी थी कि उन डालरों का क्या हुआ जिनको किसी ने एक योजना के नाम पर लिया था और जो व्यक्तिगत व्यवसाय में कहीं ख़र्च होते देखे गये थे? यह आवाज़ तब और ऊँची उठी जब ग्रीस के किंग जार्ज के नौका विहार के लिये लाखों डालरों में एक नाव ख़रीदी गई थी। उसका उत्तर किसी ने न दिया, अमेरिका ने भी नहीं यद्यपि अचेसन की सरकार ने छानबीन के नाम पर कुछ अनुकूल टिप्पणियाँ छाप दीं।

वही आवाज़, जो कभी सन् ४६-४७ में काफ़ी ज़ोरदार थी और जो

इधर नितान्त कमजोर पड़ गई थी और जो अब भी बहुत मजबूत नहीं फिर भी जो आवाज़ है और हल्की आवाज़ है, निरन्तर दम पकड़ती जा रही है। वह आवाज़ गांव की झोपड़ियों और नगरों के कारखानों से उठ रही है, जो दब नहीं सकती और जो ग्रीस का काया कल्प करके ही रहेगी।

: २३ :

पिरामिडों की छाया में

मिस्र जिसे बारी-बारी कितनों ने भोगा और जिसने संसार की सभ्यता में एक अपनी मंज़िल क़ायम की। उसकी मुट्ठी भर जनता ने रसायन में अपना सानी नहीं रखा और न ज्योमिति के प्रयोगों में, और उसके भाग्य विधाताओं ने न केवल उसका बल्कि सीमा पार की अनन्त जनता का भाग्य विधान किया।

पिरामिडों की छाया में सहस्राब्दियों पार की एक दुनिया की स्मृति मन पर छा जाती है। उस स्मृति में अनेक चित्र उठते और विलग होने लगते हैं। मरण और जागरण का वह प्रतीक मिस्र अपने पिरामिडों की छाया में फैला आज केवल अपनी उन्हीं स्मृतियों का धनी है जिनकी कोख से वह बार बार जन्मा है, जिनके अन्तराल में वह बार-बार खो गया है।

भगवतशरण

मरण और जागरण की मिस्र की दुनिया। मरण की, क्योंकि उसके प्राचीन इतिहास का सारा दौरान उसका सम्पूर्ण विस्तार जीने की लालसा से मृत्यु के साथ संघर्ष करने में लगा, मर कर भी जीने की लालसा इतनी बलवती हुई कि मरे शरीर को उन्होंने विकृत न होने देने की निरन्तर कोशिश की और उस कोशिश में वहाँ वाले सफल भी हुए। जागरण कि मिस्र की जनता ने अपने शोषक शासकों को अनेक बार मार भगाया, अनेक बार उनसे उन्होंने विद्रोह किया। अनेक बार उनके राजाओं ने अपनी सीमाएँ पार कर दजला-फ़रात की घाटियों में अपनी अति-मानवता का परिचय दिया, भूमध्य सागर के तटों तक अपनी राज्य लिप्सा प्रसारित की और फ़िलिस्तीन तथा साइनाई के पठारों पर अपने झण्डे खड़े किये।

पिरामिडों की याद खुफ़ू और खुफ़्रन की याद है, तूतन अत्तन और तूतन खामन की। इन पिरामिडों में जिनमें अनेक कुतुबों की ऊँचाइयाँ खोई हुई हैं, जिनमें अनेक लम्बे-चौड़े मन्दिरों के विस्तार लिपटे हैं, श्रमिकों की अनन्त काया सोयी हुई है, उनके हज़ारों-लाखों चट्टानों में जिनकी जोड़ों में दबी उनके निर्माताओं की लाशों की कराह आज भी पिरामिडों की बुलन्दियों पर साँय-साँय कर रही है, जिन पिरामिडों के अन्तराल में उन महाप्रभुओं के शरीर कभी अनन्त निद्रा में सोये थे।

जीवित संसार की विलासिता उसका अनन्त वैभव और उनका अमित भोग उन अतिकाय महाभागों को अभितृप्त न कर सका और उन्होंने उनकी परम्परा जीवन और मृत्यु के बीच खड़ी की, दोनों के बीच की अनन्त अतल खाई पर पुल बांधना चाहा! इन पिरामिडों का इतिहास रोम के कुलोसियम, पैरिस के बैस्टिल, चीन की दीवार से कहीं महत्वपूर्ण है, कहीं कुत्सित और भयानक, ऊर की उन भयानक कब्रों से भी भयावह जिनमें राजा और श्रीमान जीवन में तो अभागों से घिरे ही

रहे और मृत्यु में भी जिनका दामन न छोड़ा, ज़हर के घूँट पिला जिनको उन्होंने संसार पार की यात्रा में अपने सहगमन के लिए मजबूर किया।

जीवन की लालसा, जीवन में भोगे भोगों की आसक्ति इतनी प्रबल हो उठी कि मिस्र के पुरोहितों ने, जो वहाँ के राजा भी थे, उन रासायनिक द्रव्यों की खोज की जो मरे शरीर को विकृत होने से बचा रखें। पुरोहित राजा का रूप धारण करता जा रहा था, राजा स्वयं साधारण महत्व की परिधि से उठकर जनता और देश दोनों पर छा चला था। उसकी झोंपड़ी अब बड़े मकान का आकार धारण करने लगी थी। इसी से उसकी नयी संज्ञा भी पड़ी—'बड़े मकान में रहने-वाला' 'फ़ैरो'। पुरोहित ने खोज लिया उन रासायनिक द्रव्यों को जिनसे उसने शवों को हज़ारों वर्ष जीवित रखा, साथ ही भेद भरी उस चित्र लिपि को जन्म दिया जो स्वयं कल्पित भगवान की सत्ता का पुजारी, विधायक और पार्थिव प्रतिनिधि बनाने में उसका सहायक हुआ, जिस चित्र लिपि से पिरामिडों की दीवारें भरी हुई हैं।

गीज़ा के पिरामिडों की छाया में संसार की अनजानी समृद्धि एकत्र हुई और जिन विशाल भवनों ने उनको अपनी काया में सुरक्षित किया उनके निर्माण में लाखों बलि हो गये। बाजुओं पर तौलकर लाखों ने चट्टानें सैकड़ों फ़ीट आसमान में पहुँचाईं और उन चट्टानों की चोट से स्वयं उनके कण-कण बिखर गये। ये मजूर दजला-फ़रात की घाटियों से आये थे, फ़िलिस्तीन से, साइनाई से, क्रीट और मिकीनी से, मोरक्को एबीसीनिया से। फ़ैरो ने पूछा—'काम में शिथिलता क्यों हो रही है, पिरामिड की ऊँचाई जल्द क्यों नहीं उठ रही है?' उत्तर मिला—'ग़ुलामों के परिवार हैं। और उन परिवारों की उन्हें चिन्ता है, उनका मन बटा हुआ है।' फ़ैरो ने हुकम दिया—'ग़ुलामों को उनके परिवारों से हटा दो, वे अपने घर न लौटें।' कुछ दिनों बाद फ़ैरो ने फिर पूछा—'काम में शिथिलता क्यों

हो रही है ? पिरामिड की ऊँचाई जल्द क्यों नहीं उठ रही है ?' उत्तर मिला — 'गुलामों के परिवार हैं,उन परिवारों में छोटे बच्चे हैं, उनकी याद उन्हें बर-बस अपनी ओर खींचती है;उनका मन बँट जाता है ।' फ़रो ने हुक्म दिया, 'उन बच्चों को नील नदी में डुबो दो ।' अभागे गुलामों के एक लाख बच्चे नील नदी में डुबो दिये गये । पिरामिड उठ चले और मृत्यु की नींव पर मरण का जीवन सुरक्षित करने खड़े हुए, विशाल, भयकारक ।

लुक्सर का वह विशाल पिरामिड जिसने तूतनखामन की बेइन्तहा दौलत निगल ली । तूतनखामन के पिता तूतनअत्तन ने अनन्त अनन्त देवताओं की परम्पराओं को तोड़कर एक अकेले व्यापक सूर्य की कल्पना की । उसकी अर्चना अपने देश में प्रतिष्ठित की, उसी प्रकार जैसे यहूदियों ने फ़िलिस्तीन में जेहोवा की अभिसृष्टि की, जैसे बाद में हिन्दुओं ने अपने व्यापक ब्रह्म को सिरजा । उसी तूतनअत्तन का बेटा तूतनखामन जब मरा तब उसकी इच्छा के अनुसार लुक्सर का पिरामिड सोने की राशि से भर दिया गया । सोने की दीवार, सोने का परकोटा, सोने का ताबूत, सोने का कवच, सोने का चेहरा और उसके भीतर मिट्टी का पुतला जिसमें न तो उस सोने का भार वहन करने का बल था न उसका मूल्य आंकने की मेधा थी । दजला और फ़रात की अन्न उगलने वाली घाटी ने, एशिया-माइनर की स्थान स्थान की उर्वर भूमि ने, दक्षिण-उत्तर की मिस्र की ज़मीन ने अपने अध्यवसाय, निरन्तर के श्रम, पसीने और लहू से वह सोना उगला था जिसका उपयोग जीवन के लिए मुनासिब न समझा गया, मृत्यु के लिए अनिवार्य !

एक के बाद एक बाईस कुलों ने मिस्र पर राज किया, बाईस कुल जो एक के बाद एक उठते-गिरते रहे और जीवन में ही मरण की उपासना करते रहे । उनके बाद बाबुली आये, फिर ईरानी, फिर ग्रीक, फिर रोमन, फिर ईरानी, फिर अरब और फिर फिरंगी । किसी ने उस देश को सोखने

और तबाह करने में चूक न की। मिस्र फिर भी मर न सका।

बाबुली हम्मुराबी ने दजला-फ़रात के आधार से उठ कर इस्रायली विस्तार को हड़प लिया और मिस्र को रौंद डाला। यह पुरानी बात है आज से कोई चार हज़ार साल पुरानी। मिस्र के रैमेसेज़ ने हम्मुराबी का बदला लिया, दजला के किनारे अपने विजय-स्तम्भ खड़े कर। ख़ल्दी नबूख़दनेज़्ज़ार फिर दजला-फ़रात के आधार से उठा और उसने भी आतंक की छाया मिस्र पर डाली। फिर दारा और ख़यार्ष ने उसे अपने साये में लिया और अन्त में ग्रीकों ने। सिकन्दर की तलवार मिस्र में बहुत न चली क्योंकि मिस्री तब तलवार के शौकीन न थे और मकदूनिया के नेज़ों के सामने वे सहम गये। फिर तो सिकन्दरिया की नींव पड़ी। सिकन्दरिया जिसका आलोक-स्तम्भ संसार के आश्चर्यों में था और जो सदियों समुद्रगामी पोतों को राह दिखाता रहा।

सिकन्दर के निधन के बाद उसके सरदार तालेमी ने मिस्र का राज भोगा, उसी तालेमी ने जिसके पिता ने सिकन्दर की प्रेयसी अन्तियोक की वारांगना उस ताया को व्याहा था, जिसने ईरानी सम्राटों के संचय और शालीनता से समृद्ध पुस्तकों से भरे परसिपोलिस के महलों में आग लगा दी थी।

ग्रीकों का शासन विदेशी था; मिस्रियों को अंगीकार न था, पर बेबस मिस्री उस शासन के शिकार हो गए और ग्रीकों के शासनाधिकार को बना रखने में कुछ मिस्री श्रीमानों ने कम उत्साह न दिखाया। उनके विरुद्ध अवरोध भी हुए, विद्रोह भी, पर तालेमी का ग्रीक परिवार मिस्री संस्कृति की छाया में जमा बैठा रहा। ग्रीक संस्कृति के बदले उसने मिस्र की संस्कृति को वरा और वहां की परम्परा के अनुसार उस ग्रीक राजकुल में भी भाई-बहन के परस्पर विवाह की प्रथा प्रचलित हुई। तालेमी के बाद तालेमी ने अपनी बहिन को व्याहा और इतिहास-प्रसिद्ध क्लियोपेत्रा

ने दो-दो बार अपने भाइयों को।

क्लियोपेत्रा जिसका इतिहास मानव इतिहास का एक रोमाँचक प्रकरण है, जिसका आकर्षण एक के बाद एक, अनेक रोमन जनरलों की समाधि बन गया। क्लियोपेत्रा, जिसकी नाक के सौन्दर्य के लिए उस काल की दुनिया में अनेक महासमर हुए, जिसके जादू पर रीझ कर रोमन जनरल एन्तनी ने इसरायल और जरूसलेम जीतकर उसे भेंट कर दिया था, जिसके रूप के सम्मोहन ने उस रोम के महा-सैनिक एन्तनी को समर से विमुख हो भागने पर मजबूर कर दिया था जिसकी पीठ दुश्मनों ने कभी न देखी थी और जिसके फलस्वरूप क्लियोपेत्रा के सिकन्दरिया के महलों में उस बाँके लड़ाके ने घुटनों पर अपनी हारी तलवार तोड़कर आत्महत्या कर ली थी। क्लियोपेत्रा जिसने पहले पाम्पेयी को मार डाला, फिर जो एन्तनी के निधन का कारण बनी और जिसने उन दोनों के बीच अपने पिता की उम्र वाले जूलियस सीज़र को युग भर बरा और भोगा, जिसने रोम में पहुँच कर साम्राज्य के उस नगर पर जो अपना जादू डाला तो सारा रोम उसे देखने सीज़र के प्रासाद में उमड़ पड़ा। क्लियोपेत्रा लिखती है कि उसे देखने आने वालों की अटूट धारा में दो व्यक्ति ऐसे भी आए जो निरे लड़के थे, प्रायः सत्रह वर्ष के, पर जिन्होंने तुरंत बाद संसार व्यापी कीर्ति कमायी, एग्रिप्पा और ओक्टेवियस। ओक्टेवियस, सीज़र की बहिन का पोता, जगत-प्रसिद्ध आगस्तस हुआ और एग्रिप्पा उस आगस्तस का विजयी सेनापति। क्लियो पेत्रा लिखती है कि ओक्टे-वियस ने जहाँ उसकी ओर क्षोभ और उपेक्षा भरी दृष्टि से देखा एग्रिप्पा निरन्तर अपनी आँखें उसके अर्ध-आवृत स्तनों पर गड़ाये रहा। वही क्लियोपेत्रा जो अनेक राजदूतों के साथ अपनी विविध भाषाओं में एक साथ परामर्श करती थी, जो भारत से जाने वाले गरम मसालों और मोतियों से भरे जहाज़ों को खड़े खरीद लेती थी, जो मिस्र की भेद भरी,

रानी थी और जिसने रोम के शासकों के विजय-प्रदर्शनों में जीत की वस्तु बनने से नाग के चुम्बन से मर जाना बेहतर समझा, इन पिरामिडों की छाया में अपनी स्मृति छोड़ गयी। मिस्र का अपना एक जादू है जिसकी नीलिमा भूमध्य सागर की नीलिमा से अधिक गहरी है, ऊपर छाये आकाश की नीलिमा से कहीं गहरी, कहीं अधिक आकर्षक।

क्लियोपेत्रा के बाद उस देश से ग्रीकों का शासन तो उठ गया परन्तु शासन स्वदेश में फिर नहीं लौटा। मिस्र रोमन साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया, धनी प्रान्त जिसका सोना मेडीटरेनियन पार निरन्तर रोम में, रोम के विजेता सेनापतियों, श्रीमानों अभिजात कुलियों के प्रासादों में बरसता रहा, जो रोम के अन्तर्कुलीय संघर्षकाल में लड़ाकों की शरण बना रहा, और जो उनकी हार जीत के अनुसार अपना दायित्व निरन्तर बदलता रहा। मिस्र अब तक अपना जीवन कब का समाप्त कर चुका था और अपने पिरामिडों में सोने वाले शवों की ही भांति मरण की अवधि पूरी कर रहा था।

बाबुली गये तो ख़ल्दी आये, ग्रीक गये तो रोमन। ईरानियों से पहले, काफ़ी पहले, जब मीडी आर्यों ने ईरान पर अधिकार किया था और दराथवौष, कम्बुजीय और क्षयार्ष की सेनाओं ने डेन्यूब और नीपर के तटों तथा ग्रीक नगर-राज्यों पर अपने आक्रमण की छाया डाली थी तभी मिस्र भी एक बार उनकी छत्र-छाया तले आहत हो पड़ा था। ग्रीकों और रोमनों के शासन के बाद फिर ईरान ने जब विजय का इतिहास लिखना एशिया में शुरू किया तब ईरान में सस्सानियों का राज्य था। उनके राजा खुस्रो ने संस्कृत के 'पंचतंत्र' की कहानियों का पहला विदेशी पहलवी में अनुवाद कराया, उसी खुस्रो ने, जिसके उसी नाम के वंशज ने हर्ष वर्धन से मैत्री कर अजन्ता के चित्रों में अंकित हो अमरता पायी, मिस्र को जीता और उस पर ईरानी सम्राटों की ही भाँति कुछ काल

शासन किया। उसी खुस्रो ने जब अरब के उस भयानक प्रकाश मुहम्मद के पत्र की अवहेलना की तब वह अरबों की चोट से सपरिवार नष्ट हो गया और अरबों ने न केवल ईरान पर बल्कि इस्राइल रौंदते मिस्र पर भी अधिकार कर लिया।

मिस्र फिर अरबों का देश बना। उस देश की जनता आज कोप्टों से कहीं अधिक संख्या में अरब है। तुर्की और ईरानी शासकों ने जब अरब साम्राज्य की प्रान्तीय बागडोरें सम्भाली तब पिरामिडों का वह देश उनकी महत्वाकांक्षा का शिकार हुआ। मामलुक लड़ाके फिर उस देश पर क़ाबिज़ हुए और घूम-फिर कर फिर अरब। जब एशिया में गुलामों की शक्ति अपनी वैयक्तिक चेतना से जगी और हिन्दुस्तान से समरकन्द, खुरासान, ईरान, फ़िलिस्तीन आदि देशों पर उनकी हुकूमत जमी तब मिस्र भी उनकी ताक़त का आधार बना। मिस्र की प्रख्यात रानी शुजुरुद्दूर ने यूरोपीय क्रूसेडों के युद्ध में ईसाई बादशाहों को बार-बार हराकर न केवल मिस्र और इस्लाम की नाक रखी वरन् इंग्लैण्ड के प्रख्यातनामा 'सिंहमना' (दि लायन हार्टेड) रिचार्ड को बन्दी कर लिया। मिस्र के इतिहास में शुजुरुद्दूर की कथा सोने के अक्षरों में लिखी जायगी।

फिर नेपोलियन और अंग्रेज़, अंग्रेज़ और फ़्रान्सीसी। फ़्रान्सीसी राज्यक्रांति का पितृ-हन्ता शिशु बनकर नेपोलियन उठा और यूरोप में अपनी तलवार से कीर्ति लिख मेडिटरेनियन लांघ मिस्र पहुँचा। उसके इन्जीनियरों ने प्रसिद्ध 'रोसेटा स्टोन' प्राप्त किया जिसकी लिखावटों ने मिस्री प्राचीन चित्र-लिपि का जादू खोलकर रख दिया। परन्तु नेपोलियन मिस्री लिपि को पढ़ने मिस्र नहीं गया था। वह पूरब की राह खोलने गया था जिधर से वह भारत पर आक्रमण कर न केवल वहाँ से अंग्रेज़ सत्ता उठा देने बल्कि उसे अपने अधिकार में करने गया था और इस सम्बन्ध में उसने मराठों के साथ, विशेषकर गायकवाड़ से, अपना सम्बन्ध भी

स्थापित कर लिया था। नेलसन उसके स्वप्नों के लिये राहु बन गया और नेपोलियन को मिस्र की ज़मीन छोड़ इस्रायल के रास्ते मुट्ठी भर जवानों के साथ विफल-मनोरथ लौटना पड़ा। इस्रायल के प्रसिद्ध दुर्ग एकर को राह में जीतने की फ्रेन्च विजेता ने हरचन्द कोशिश की पर उसे मुँह की खानी पड़ी। उसी तुर्की दुर्ग के प्राचीरों के नीचे जिन पर भूमध्य सागर की लहरें टकरा-टकरा कर टूटती हैं जब मैं खड़ा हुआ तब मुझे स्वरक्षा में दृढ़ता से संघर्ष करने वाले तुर्कों और अरबों के पुरुषार्थ का स्मरण हुआ। मिस्र विजित और विगत हो चुका था। वह फ्रान्सीसियों और अंग्रेज़ों के बीच गेंद की तरह उछाला जा रहा था। पर पश्चिमी एशिया के अरब अब भी जहाँ तहाँ दोनों से लोहा ले रहे थे।

मिस्र फ़िरंगियों के बीच कानूनी रूप से पट्टा लिखा जाने लगा और उसकी अपनी बुनियाद प्रायः मिट चली। ज़ग्लुल ने अरबों और कोप्टों को एकत्र कर आज़ादी की लड़ाई शुरू की और फ़िरंगियों से नये सिरे से लड़ाई शुरू की। यह लड़ाई अब मिस्र की ज़मीन के लिए उसके हमलावरों की लड़ाई न थी, उस ज़मीन के बाशिन्दों की लड़ाई थी। मुमकिन न था कि किसी विदेशी सत्ता के पैर वहाँ टिक पाते और फ़िरंगी जड़ें वहाँ से उखड़ चलीं।

स्वेज़ नहर का निर्माण फ्रान्सीसियों ने किया, अपने और अंग्रेज़ी धन की मदद से। फिर मिस्री शेयर भी डिज़रेली ने फ्रान्सीसियों को अलग कर ख़रीद लिए और जहाँ राजनीति की रस्सी ढीली हो चली थी वहाँ अर्थ की रज्जु ने कुछ काल फिर भी मिस्र को अपने कब्ज़े में बनाये रखने की कुछ काल कोशिश की। मिस्री देखते रहे कि किस तरह स्वेज़ की नहर से पूरब और पश्चिम जोड़े जा रहे हैं, अनेक नेताओं ने सही सोचा कि न सही आज, कल ही सही पर ज़रूर एक दिन स्वेज़ अपना होगा जब फ़िरंगियों की जड़ उस बालू की ज़मीन से उखड़ जायगी जहाँ

अरब और बद्दू ही पनप सकता है और जहाँ बालू की ज़मीन के बावजूद भी मिस्री ही उस पर चट्टानों का अम्बर खड़ा कर सकता है।

काहिरः और सिकन्दरिया की गलियों में पेरिस की शराब बही, और अरबी गुमराह छैले अपना ऐश्वर्य, अपना पौरुष वहाँ लुटाते रहे पर सर्वहारा अरबों ने, मिस्र की लुटी जनता ने आखिर स्वेज़ पर हमला किया। आज वहां जंग जारी है जिसमें एक ओर तो आधुनिक विज्ञान के सम्भार से भरी अंग्रेज़ी फ़ौजें चोट कर रही हैं, दूसरी ओर मिस्री जनता निहत्थी गलियों के मोड़ों पर खड़ी गोलाबारी को बेकार कर रही है। सरकार जो पाशाओं की है, जनता की नहीं है, यद्यपि अपने कारणों से स्वेज़ के इक़रारनामे को रद्द कर चुकी है और अपने ही कारणों से यह लड़ाई लड़ रही है, आखिर अपने कारणों से हथियार नहीं डाल पायगी क्योंकि इन्सानियत की वह मर्दानगी आज स्वेज़ के किनारे खड़ी है जो निहत्थी लड़ती है, नेज़ों से नहीं, और जिसके मुक़ाबिले तोप और बम-बाज़ बेकार हो जाते हैं। पोर्ट सैयद और, स्वेज़ की गलियों में लगी आग जो क़ाहिरः और सिकन्दरिया की बुर्जियों पर छा चुकी है, सूदान की ज़मीन की ओर भी अब उसका रुख़ फिर चुका है। और यद्यपि फ़ारूक़ ने अपने को मिस्र और सूदान का बादशाह एलान कर दिया है, सूदानी अपनी लड़ाई आप लड़ेंगे क्योंकि उन्हें न तो विदेशी अंग्रेज़ों का साया मन्ज़ूर है और न अपने पड़ोसी मिस्री पाशाओं का ही मन्ज़ूर होगा। सूदान की उम्मा पार्टी कमर कस कर मैदान में उतर आई है और आज वह सब कुछ करने को तैयार है जो ज़ग्लुल ने कभी मिस्र के लिए किया था और उसकी यह लड़ाई आज़ादी की प्राप्ति तक निश्चय जारी रहेगी।

: २४ :

पाशाओं का देश

प्राचीन पिरामिडों की छाया में पाशाओं का देश खड़ा है। आज वह मिस्र कहलाता है, अरबों का मिस्र। कभी वह ईजिप्त कहलाता था, ग्रीकों का ईजिप्त।

भूमध्यसागर के दक्षिणी तट के पतले लम्बे मिस्र के उस देश में जो नील-नद की घाटी में दक्खिन की ओर फैला हुआ है और जहाँ किसान साल में अन्न की दो फसलें काट लेता है, आज पशाओं का राज है। पाशा—ज़मींदार, जनरल, मालिक, शासक। पाशा शब्द शायद तुर्की है। कम से कम इसका इस्तेमाल लगातार तुर्की शासन में हुआ है। तुर्की अमीरों ने कभी तुर्की का विशाल साम्राज्य स्थापित किया था जिसका एक सिरा मध्य-एशिया को छूता था, दूसरा वियना को, तीसरा दक्षिण-

मध्य रूस को और चौथा भूमध्यसागर को। उसी तुर्की की 'जैनीसरी' सेनाओं का संचालन तुर्की अमीरों ने किया था जो पाशा कहलाते थे। यही पाशा नये साम्रज्य के प्रान्तों के शासक हुए और जब तुर्की का दबदबा मिस्र पर भी पड़ा तब मिस्र का शासन विधान और उसका सामाजिक रूप बहुत कुछ तुर्की के आदर्श से अनुप्राणित हुआ। उसके समाज और शासन के नेता भी, उसके अमीर-उमरा भी, पाशा कहलाने लगे।

इन्हीं पाशाओं का देश यह मिस्र है। और सूदान भी। मिस्र पाशाओं का देश है जनता का नहीं। जनता को देखकर कोई कह नहीं सकता कि उसके व्यक्तियों में कोई जीवन है, कोई वैयक्तिक चेतना है, कोई सामूहिक कर्तृत्व है, कोई अहंकार और गर्व है। इटली ग़रीब है, ग्रीस की ग़रीबी भी कुछ कम भयानक नहीं और पूर्व, मध्य तथा सुदूर पूर्व के तो कंगालपन के कहने ही क्या! पर जो ग़रीबी मिस्र की जनता पर हावी है वह शायद ही कहीं और दिखाई पड़े। धनी और निर्धन में इतनी विषमता किसी देश में नहीं जितनी मिस्र में है। लम्बा कुर्ता, एक पायजामा, शायद यही उनके नंगेपन को ढकने के साधन हैं जिन्हें मिस्री कहते हैं।

काहिरः और सिकन्दरिया जाने वाले मुसाफ़िर कभी यह गुमान भी नहीं कर सकते कि उनकी आकाश चुम्बी इमारतों के पास ही ऐसे गाँव भी हैं जिनके मकान बालू के टीलों से अलग नहीं किये जा सकते। जब आप रेल पर बैठ काहिरः से सिकन्दरिया जाते हैं तब अनेक गाँव राह में मिलते हैं जिनके घरों की ऊँचाई बित्तों से नापी जा सकती है जिनके दरवाज़े सुराखों-से लगते हैं, जिनमें झुक कर, काफी झुककर, वह अरबी इन्सान दाख़िल होता है जो मिस्र की दुनिया को ही नहीं बाहर की दुनिया को भी खाने के लिए गेहूँ और पहनने के लिए रुई देता है।

स्वयं वह ग़रीब नंगा भी है भूखा भी, और इनके ऊपर उस पर पाशाओं का ज़ोर-ज़ुल्म हावी है, उसकी ज़मीन पर सल्तनते बरतानिया का क़ब्ज़ा है।

उसी मुल्क में कोप्ट भी रहते हैं, कोप्ट जिनके पुरखों ने पिरामिडों के महान् आश्चर्य खड़े किये थे जिनमें उन्होंने सोने की दीवारें खड़ी की थीं और हज़ारों 'ममियों' को—लाशों को—अपने रसायन की खोज से सहस्राब्दियों गलने न दिया था। इनके गाँव भी अरबों की भाँति गीज़ा में, सक्कारा में, लक्सर में फैले हुए हैं और दोनों, कोप्ट और अरब, आज ग़रीबी के, निरक्षरता के शोषण के शिकार हैं। अनेक खेतों में ट्रैक्टर चलते हैं, नगरों में कल कारखानों की घड़घड़-हड़हड़ आकाश गुँजा रही है, समुन्दर और नील के जल पर जहाज़ दौड़ रहे हैं, क़ाहिरः और सिकन्दरिया में मोटरें दौड़ रही हैं, होटलों में शराब ढल रही है, जुए के दाँव फेंके जा रहे हैं, आकाश में जहाज़ उड़ रहे हैं, पर यह उनके नहीं, उन कोप्टों और अरबों के नहीं, उनके आकाओं के हैं, पाशाओं के, किंग फ़ारूक़ के और उसकी हाल की ब्याही बीवी के जिनके मिस्र के महल और खलिहान भी हैं, पिरामिड का सोना और गाँवों की झोंपड़ियाँ भी, धारा सभाएँ और कानून भी, सेना और पुलीस भी।

उच्च मध्यवर्ग और उनसे ऊपर के पूंजीवादी मिस्री विधायकों को जो कोई देखे तो उनके रंग के अभाव में नहीं कह सकता कि उनका आवास पिकेडिली, शांज़ेलीज़े या पार्क स्ट्रीट में नहीं। उनकी नारियां पेरिस के बने कपड़े पहनती हैं, फ्राक और स्कर्ट पहनती हैं जैसे उनके नर सूट पहनते हैं। अगर किसी प्रकार का वहां जनान्दोलन है तो वह इन्हीं नारियों के अध्यवसाय से है जिसे पाशा हमदर्दी से नहीं देखते। नारियों के अनेक आन्दोलन उस देश में चले हैं, चल रहे हैं। अभी कुछ ही दिन हुए कि बारह सौ नारियों ने अपने अधिकारों के लिए मिस्री पार्ल-

मेन्ट पर सहसा आक्रमण कर उसका सिंहद्वार तोड़ दिया था। संगीनें उठीं पर उनकी नोकें ग़द्दारों के तेवरों से सहम कर झुक गयीं।

परन्तु यह आन्दोलन उच्च मध्यवर्ग के हैं। उनके चोचले होते हुए भी बहरहाल हैं ये अधिकारों की मांगें क्योंकि यद्यपि इन नारियों को अमेरिकन यूनीवर्सिटी की छाया प्राप्य है, पेरिस का अनुकूल वातावरण भी लब्ध है, कटे बालों की शैली भी, यूरोपीय वेशभूषा भी, पर निश्चय उन्हें देश में कोई अधिकार प्राप्त नहीं, न तो धारा सभाओं में और न विशेपकर जायदाद में ही। सरकारी नौकरियों में भी उनको कोई दख़ल नहीं और वोट लेने-देने का अधिकार तो क़तई नहीं। और जब यूरोप की नारियों से होड़ लेने वाली इन उच्च वर्गीया महिलाओं का यह हाल है फिर ग़रीबी और मज़हब के ज़ुल्म की मारी उन निन्यानवे फ़ी सदी नारियों के क्या कहने जो पर्दे के भीतर रहती हैं और जिन्होंने आजतक सूरज का मुँह तक नहीं देखा। फिर भी निश्चय मिस्र का मध्य वर्गीय नारी-आन्दोलन जिस मात्रा में अपना कल्याण करेगा उसी मात्रा में, कम से कम कानूनतः इन पर्दे की शिकार ग़रीबों का भी करेगा।

आज जो स्वेज़ नहर के तट पर अंग्रेज़ों से जंग मचा हुआ है वह मिस्र की ग़रीब जनता की आज़ादी की पुकार है। १६३६ का सन्धि-पत्र जो मिस्री पार्लमेन्ट ने रद्द किया है वह तो निश्चय वहां के धनी वर्ग का अपने लाभ का परिचायक है (यद्यपि विदेशी सेना का अस्तित्व किसी स्थिति में किसी देश की ज़मीन पर बर्दाश्त नहीं किया जा सकता) परन्तु लड़ाई जो आज वहाँ चल रही है वह पाशाओं की लड़ाई नहीं मिस्री ग़रीब जनता की लड़ाई है जिसने विदेशियों से अपने मुल्क को आर्थिक रूप से भी आज़ाद कर लेने पर कमर बाँध ली है। मिस्र में आज खाने को अन्न नहीं, पहनने को कपड़ा नहीं, लड़ने को हथियार नहीं पर वहाँ की जनता अपना अंगद चरण रोप स्वेज़ के इलाके में जम गयी है और सन्

१९३६ का इकरारनामा रद्द करके ही रहेगी।

मिस्र की सरकार पाशाओं की दुनिया है और उसने सोचा था कि स्वेज़ से अंग्रेज़ों को हटाना कुछ मुश्किल न होगा पर चाल आड़ी आयी। अंग्रेज़ों ने अपनी पैराशूट सेनाएँ स्वेज़ की ज़मीन पर उतार दीं और जंगी रुख अख्तियार किया। मिस्री सरकार स्वेज़ पर अधिकार करना चाहती है पर अपनी स्थिति को बगैर ख़तरे में डाले। क्या कोई मुश्किल कभी आसान हुई है? पर मिस्र की गरीब जनता के लिए स्वेज़ पर अधिकार जीवन की आन बन गयी है और वह उसे लेकर रहेगी चाहे पाशाओं की सरकार उसका साथ दे या न दे। उसके लिए स्वेज़ आज़ादी का प्रतीक बन गया है। वैसे उसकी आय से भला उसका कौनसा सम्बन्ध है जब तक कि उस मुल्क की बुनियादी हस्तियां उलट न दी जाँय और जनता अपने अधिकारों को पहचान कर जीत न ले?

जनता की इस स्वेज़ सम्बन्धी मांग में क़ाहिरः और सिकन्दरिया के विश्वविद्यालयों के छात्र भी शामिल हैं। वे भी उपलब्ध हथियार लेकर स्वेज़ के तट पर उस समुद्री नगर की सड़कों पर उतर गये हैं। उनकी सरकार जनता है और उनकी मांगें पाशाओं की सरकार के ऊपर उठ गयी हैं। उनका नेतृत्व इस समय जनता का कल्याण करेगा यद्यपि सर्वहारा जनता में स्वयं अपने सर्वहारा नेताओं की कमी नहीं। कुर्बानियां हो रही हैं, नहर के आस पास बम फट रहे हैं, लाशें गिर रही हैं, पर आज़ादी की आवाज़ बुलन्द है।

उसी आवाज़ में एक हल्की गूंज उस की भी सुन पड़ रही है जो पाशाओं की दुनिया को भी मिटा देना चाहती है, मिस्र में भी सूदान में भी, और फ्रान्सीसियों के मोरक्को में भी। लिबिया अभी अभी स्वतन्त्र हुआ है, यद्यपि अपने कारणों से इतना नहीं जितना विदेशी शोषक शासकों की पारस्परिक कशमकश के कारण। फिर भी लिबिया की स्वदेशी

यद्यपि मरभुखी और कठपुतली, सरकार स्थानीय सरकार है और उसका मिस्र के पास ही कायाकल्प हो जाना स्वयं मिस्र के लिए कुछ कम आशा की बात नहीं। उत्साह मिस्री जनता में इसी लिए इधर और बढ़ चला है और यद्यपि पाशाओं की सरकार की दृढ़ता शिथिल हो सकती है, उसके रथ के चक्कों के नीचे पिसने वाली जनता अब सचेत होकर अपने पैरों खड़ी हो चली है। क्या यह सम्भव नहीं कि शीघ्र ही मिस्र पर नया दिन चमके और जनता अपना उद्धार विदेश के शत्रुओं से भी कर ले और स्वदेश के शत्रुओं से भी—पाशाओं की सरकार से!

: २५ :

पर्वत का प्रवचन

इज़रेल । जरूसेलम—बेथेलहेम—गिलगोथ—समर्या-गैलिली । फैले मैदान, पथरीले कंकड़ीले मैदान, ज़मीन की पसलियों के से । बालू के लम्बे उठते-गिरते टीलों से । समुन्दर की लहरों की सी एक के बाद एक उठती-गिरती एक से एक लगी पहाड़ों की श्रेणियाँ जिनके पीछे से आज का सतर्क यहूदी दुश्मन के बमबाज़ों पर नज़र रखता है ।

सूखी ऊसर ज़मीन जो दजला-फ़रात के द्वाब के निवासी इब्राहिम को कभी अच्छी लगी थी, इतनी अच्छी कि उसने उसे अपनी प्रजा के लिये स्वप्न का देश माना और जहाँ उसकी सन्तति मिस्र की मार से जर्जर मूसा का दामन पकड़े साइनाई लाँघ जा बसी थी—मूसा स्वयं यद्यपि उनमें न था ।

भगवतशरण

वही इज़रेल का देश, हज़रत ईसा का वतन, जैतूनों से ढका, इब्राहिम की सन्तानों से भरा, उन गोरी-चिट्टी, बादामी—जैतूनी—गेहुँए रंग की संतानों से भरा जो इब्रानी—अरबी—यिद्दीश—जर्मन—फ्रेंच—अंग्रेज़ी—स्पेनी—पोलिश—रूसी और जाने कौन-कौन सी ज़बानें बोलती हैं।

हैफ़ा से एकर तक की ज़मीन छिछली घाटी है जो उठती-उठती नज़रथ की ऊँचाइयों को छू लेती है; फिर कपरनौम की ऊँचाइयों को जो समुन्दर से लगा है, गैलिली के समुन्दर से। गैलिली का जलप्रसार समुन्दर कहलाता है पर समझ नहीं आता उसे झील कहें या समुन्दर। छूता वह भूतल के अतलतल को है। मृत-सागर (डेड-सी) का धरातल संसार के सागर तलों में सब से नीचा है, गैलिली का शायद उससे भी, कम से कम उतना तो ज़रूर।

जेबुलोन और नेफ्थलिम होता उनकी सीमा पर कपरनौम जा पहुँचा, गैलिली के तट पर। गैलिली का तट जिसकी दूसरी ओर जार्डन का पवित्र नद है जहाँ आज खड़ा होकर सीरियन की सीधी-सीधी गोलियों का शिकार बनना होता है।

पर मैं सुरक्षित था उस रोमन कैथोलिक चर्च की छाया में जो उसी गैलिली के तट पर खड़ा है, जहाँ पास ही आज से प्रायः दो हज़ार साल पहले हज़रत ईसा ने अपना इतिहास-प्रसिद्ध 'पर्वत का प्रवचन' कहा था। वहाँ उसके स्मारक में रोमन सम्राट् कान्स्टैन्टीन की माता ने एक गिरजा बनवा दिया था जिसकी फ़र्श की पच्चीकारी जगह-जगह आज भी सुरक्षित है।

वहीं मैं खड़ा हुआ। वहीं जहाँ के लिए महात्मा के पीछे लोग गैलिली से, देकोपोलिस—जरूसेलम से, जूडिया—जार्डन से चल पड़े थे। और जैसे ही मैं वहाँ खड़ा हुआ मेरे रोंगटे खड़े हो गए। मैंने जैसे गैलिली की गहराइयों से उठती पहाड़ों की चोटियों को लाँघती आसमान

को भरती आवाज़ सुनी—'प्रायश्चित करो (अब भी पछताओ)! स्वर्ग का राज सन्निकट है!'

'धन्य हैं कंगाल : क्योंकि स्वर्ग के राज के हक़दार वे हैं।' चोटियों ने प्रतिध्वनि की।

'धन्य हैं मातमज़दा : क्योंकि सान्त्वना का साया उन्हीं पर पड़ेगा।' गैलिली की धाराओं ने दुहराया।

'धन्य हैं विनम्र : क्योंकि पृथ्वी की विरासत उनकी होगी।' मैंने सुना।

'धन्य हैं धर्म के लिए भूख और प्यास सहने वाले : क्योंकि उनकी दुनियाँ भरे-पुरेगी।'

'धन्य हैं रहमदिल : क्योंकि उन पर रहमत बरसेगी।'

इसी आशा के सहारे मनुष्य आज भी जी रहा है, जीता जा रहा है। स्मृति धुँधली हो चली थी। बाइबिल निकाल ली। सन्त मैथ्यू ५—

'धन्य हैं पाकदिल : वे खुदा को देखेंगे।'

'धन्य हैं शांति के रक्षक : वे निश्चय खुदा की सन्तति कहलाएँगे।'

बार-बार यह आवाज़ गूँजने लगी, भीतर भी बाहर भी—'धन्य हैं शाँति के रक्षक!' मन बरबस पर्वत मालाओं को लाँघ समुन्दर पार की दुनियाँ पर छा गया जहाँ शांति का नाम लेने वाले कठघरों के पीछे हैं—हावर्ड फ़ास्ट, अल्वा बेस्सी, रिंग लार्डनर, सैमुएल ओर्नित्स!

तिलमिला गया। यह खुदा की रहमत है! खुदा की रहमत या शैतान का क़हर नाज़िल है? फिर सुना—

'जो धर्म के लिए, कर्तव्य के लिए, कुरबानियाँ करते हैं, अत्याचार झेलते हैं, स्वर्ग का राज निश्चय उनका है! कुर्बानियाँ बेकार नहीं जाने की। स्वर्ग का राज जो 'पृथ्वी पर स्वर्ग का राज' है कुर्बानियों की नींव

पर खड़ा होगा, स्वर्ग का राज जो मज़लूमों का है, ज़मीन के दावेदारों का।

'खुशियाँ मनाओ : क्योंकि स्वर्ग के राज में तुम्हारा पुरस्कार महान है : क्योंकि तुम्हारे पहले के नबियों पर भी जुल्म ऐसे ही हुए थे !

'तुम ज़मीन के नमक हो............!'

'तुम जगत के प्रकाश हो। वह नगर जो गिरि शिखर पर खड़ा है छिप नहीं सकता।'

'अपने आलोक से दुनियाँ को रोशन कर दो.........'

'यह न समझो कि मैं क़ानून का नाश करने आया हूँ या नबियों का नाश करने; नहीं, मैं तो उनके कलाम को पूरा करने आया हूँ।......... क़ानून की एक मात्रा न खोएगी जब तक आसमान और ज़मीन क़ायम है...........।

"प्राचीनों ने कहा है—'तू हत्या नहीं करेगा वरन् क़यामत के रोज़ जवाब देना होगा'— पर मैं तो कहता हूँ जो अपने भाई से अकारण नाराज़ है उसे भी क़यामत के रोज़ जवाब देना होगा.........इस लिये यदि तू वेदी के लिए हवि लेकर आया है, भाई से नाराज़ होकर, तो लौट जा, पहले भाई से मेल करले तब हवि वेदी पर डाल।......इसी तरह शत्रु से भी......दोज़ख़ की आग से बच, क़यामत के ख़तरे से बच !"

मनसा-वाचा-कर्मणा। इंजील मानव स्पर्श से छूटकर हवा में उठ गई। युधिष्ठिर का रथ ज़मीन से हाथ भर ऊँचा उठ गया है।

"तुमने सुना है—'ज़ना न कर' पर मैं तो कहता हूँ कि जिसने नारी पर हसरत भरी निगाह डाली उसने ज़ना कर लिया अपने दिल में।"

स्मृतियों के मैथुनों की परम्परा मानस में उठ आई, 'दृश्य' का दायित्व 'स्पर्श' से किसी मात्रा में कम नहीं।

'यदि तेरी दाहिनी आँख अनीति बरते उसे फोड़ डाल, निकाल कर

फेंक दे। सारे शरीर के नरक की ज्वाला में जलने से एक अंग को खोकर अपाहिज हो रहना अच्छा है।'

"कहा गया है कि 'जो अपनी बीवी छोड़ देता है वह उसे तलाक़-नामा लिख दे' पर मैं कहता हूँ जो अपनी बीवी छोड़ देता है वह उससे ज़ना कराता है और जो उस तलाक़ दी हुई को ब्याहता है ज़ना करता है।"

आवाज़ जैसे तीखी होती जारही थी, पहाड़ों से टकराती आती हवा की भाँति। उस निर्जन का कोना-कोना मसीह की आवाज़ से भर रहा था, वीरान पहाड़ियों का अन्तराल उस निर्भीक गिरा से गूँज रहा था, उस सूनी दुनियाँ का कन-कन इस शब्द-राशि से आबाद हो रहा था। पहली बार निर्भीक मानव इन्सान की हैसियत से बोल रहा था। नहीं, नहीं, ईसाइया पहले बोल चुका था। बाबुल की कैद से नबूख़दनेज़्ज़ार के कठ-घरों से, बेलशज़्ज़ार की भूरी निनवे की कारा की दीवारों को छेदकर कैदियों की आवाज़ उठी थी—जो इन्सान की इन्सान के लिए गुमराह इन्सान के विरुद्ध पहली आवाज़ थी, कड़कती क्रोध भरी। और अब यह ईसा की आवाज़ थी, उनसे भी ऊँची, न केवल क्रोध की, बल्कि मुहब्बत में सनी, बर्दाश्त की बुनियाद—

"...'आँख के बदले आँख, दाँत के बदले दाँत'—पर मैं कहता हूँ—अगर कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे बायाँ भी उसके आगे कर दो। . कोई तुम्हारे कोट के लिए नालिश करे, अपना चोग़ा भी उतार कर कोट के साथ ही उसके हवाले कर दो।" वामदेव—रामकृष्ण—गाँधी।

"कलाम है—'पड़ोसी को प्यार करो, दुश्मन से नफ़रत।' न, मैं कहता हूँ—शत्रु से प्रेम करो, शाप के बदले आशीर्वाद दो, घृणा करने वालों का भला करो, ज़ुल्म करने वालों के लिए दुआ करो।"

"...दूसरों के साथ इन्साफ़ करो जैसा अपने साथ चाहते हो...दूसरों

की आँख की फूली निकालने के पहले अपना माँडा निकाल लो...धोखे-बाज़ पैग़म्बरों से बचो। वे भेड़ की खाल में ख़ूँख़ार भेड़िए हैं, उनसे ख़बरदार हो!"

आवाज़ उठती-गिरती रही—जैसे गैलिली की शान्त धाराएँ। देर तक जैतूनों में जैसे उसकी प्रतिध्वनि होती रही। पहाड़ों की सोई कतारों में जैसे एक लहर हिली। दूर तक फैला बियाबाँ सिहर उठा। 'भेड़ की खाल में ख़ूँख़ार भेड़िए!' मध्य-पूर्व सोता रहा है, सच्चे-झूठे दोनों पैग़म्बर उसे जगा रहे हैं।

इलहाम का रवैया बदलता जा रहा है, ख़ल्क़ की आवाज़ ख़ुदा की आवाज़ हुई जा रही है, बहिश्त का राज ज़मीन पर उतरता आ रहा है। बहिश्त का राज, जो सरमायादारी के पायों पर नहीं मज़लूम की विरासत पर खड़ा होगा। क्योंकि उस राज में श्रीमानों का प्रवेश उसी प्रकार असम्भव होगा जिस प्रकार 'सुई की सुराख़ से ऊँट का निकल जाना!'